शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास: वस्तु और शिल्प

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की
पी–एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

निर्देशिका:

Kusum Gupta

डॉ० कुसुम गुप्ता
रीडर हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,
झाँसी

शोधार्थिनी:

समिता देवी

(श्रीमती) समिता देवी

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी
2007

डॉ० कुसुम गुप्ता
रीडर हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,
झाँसी
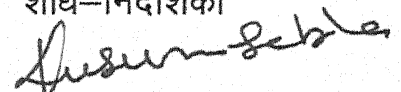
निवास–
399/6, सी0पी0 मिशन
कम्पाउण्ड झाँसी।
दूरभाष–(0510)2444225

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोध छात्रा श्रीमती समिता देवी ने निर्धारित अवधि तक उपस्थित रहकर पी–एच.डी. (उपाधि) के लिए **"शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासः वस्तु और शिल्प"** विषय पर मेरे निर्देशन में शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है। इन्होंने विश्वविद्यालय, झाँसी की शोध परिनियमावली के समस्त उपबन्धों की पूर्ति की है, साथ ही यह इनका सर्वथा मौलिक कार्य है।

मैं मूल्यांकन हेतु इस शोध–प्रबन्ध को विश्वविद्यालय के शोध विशेषज्ञों के समक्ष परीक्षार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करती हूँ तथा शोध छात्रा के ज्योतिर्मय भविष्य की कामना करती हूँ।

दिनांक 9-7-07

शोध–निर्देशिका
Kusum Gupta
डॉ0 कुसुम गुप्ता

प्राक्कथन

हिन्दी के आधुनिक कथा–साहित्य में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास और कहानियाँ अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं क्योंकि इसमें आजादी के पूर्व की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण हैं। इसके साथ ही आजादी के बाद के यथार्थ परिवेश के बहुआयामी चित्र उभरे हैं। इस समस्त अध्ययन में डॉ0 सिंह द्वारा ग्रहण किय गए, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक सन्दर्भो के गहन गर्भित विषय को शोध का विषय बनाया गया है, इसके साथ कथाकार की मातृभूमि काशी नगरी के आस–पास होने के कारण समाज, संस्कृति की गहन पहचान व भोजपुरी संस्कृति में व्याप्त भयानकता, अमानवीयता और यात्रंणा को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी हैं और स्पष्टतः यह सिद्ध कर दिया गया है कि कथाकार डॉ0 सिंह ने जिए और भोगे हुए जीवन सत्य को तथा स्वतंत्रता के बाद बदली हुयी परिस्थितियों के यथार्थ को अपने कथा–साहित्य में उभारा हैं और वर्तमान युग की नवीन परिस्थितियों को दृष्टिगत कर रचना प्रक्रिया में परम्परागत स्थूल निकषो को अस्वीकार कर नवीन प्रयोग धार्मिता के स्वर बुलन्द किये गये है।

1. इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय हिन्दी के मौलिक उपन्यास व उपन्यास की परिभाषा, विकास–क्रम और डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व व कृतित्व व उपन्यासों का परिचय कराया गया है।

2. द्वितीय अध्याय में उपन्यास रचना की समकालीन परिस्थितियाँ व कथावस्तु, कथानक में वस्तु–संगति, कथानक में इतिहास और कल्पना की स्थिति को उल्लेखित किया गया हैं।

3. तृतीय अध्याय में चरित्र–चित्रण, प्रमुख पुरूष पात्र, प्रमुख नारी पात्र व चरित्रांकन शिल्प का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया हैं।

4. चतुर्थ अध्याय में उपन्यासों की कथोपकथन योजना पर विशेष रूप से बल दिया गया है, जिसमें कथोपकथन शिल्प, कथोपकथन के प्रकार, कथोपकथन की नियोजना व कथोपकथन कौशल का चित्रण किया गया हैं।

5. पंचम अध्याय में डॉ0 सिंह के उपन्यासों में देशकाल, वातावरण, पात्रों का निजी परिवेश एवं मनःस्थिति का बिंब–प्रतिबिंब भाव को दर्शाया गया हैं।

6. षष्ठ अध्याय में शैली–विधान का चित्रण किया गया है जिसमें उपन्यासों में शैलीगत विभिन्नताएँ, शैली वेशिष्ट्य, शैली–रूप एवं शैली शिल्प प्रमुख हैं।

7. सप्तम् अध्याय में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है।

8. अष्ठम अध्याय को उपसंहार का स्वरूप प्रदान किया गया है।

शोधार्थिनी

(श्रीमती) समिता देवी

आभार

शोध हेतु विषय के चयन से लेकर सम्पन्न कार्य की आनन्दात्मिका परिसमाप्ति में अनेक घटकों का योगदान समाहित होता हैं, अतः शोधार्थिनी के रूप में मेरा यह अवश्य करणीय है कि मैं उन सभी के प्रति उसी प्रकार आभार ज्ञापित करुँ जैसे कि सर्वप्रथम मैं अपनी शोध निर्देशिका डॉ0 कुसुम गुप्ता, रीडर (हिन्दी) बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी के प्रति उपकृत हूँ, जिन्होंने संबंधित विषय के चयन में अपना योगदान किया और मुझे मानो मौन–प्रेरणा दी कि मैं अपनी भारत भूमि में उत्पन्न कथाकार के कथा–साहित्य को हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत करुँ और मैं डॉ0 शंकर शरण तिवारी, पूर्व रीडर हिन्दी विभाग ललितपुर के प्रति भी उपकृत हूँ।

शोध कार्य में अच्छे पुस्तकालय एवं सज्जन और उदार पुस्तकालयाध्यक्ष की अनिवार्यता के समक्ष प्रश्न चिन्ह उपस्थित करने का साहस कोई भी विचारशील और सत्यनिष्ठ व्यक्ति नहीं करता हैं। इस अभाव पूर्ति को एक तरफ तो श्री राकेश पाठक, पुस्तकालयाध्यक्ष राजकीय जिला पुस्तकालय झाँसी ने की तो दूसरी ओर बुन्देलखण्ड महाविद्यालय के पुस्तकालय से भी मुझे सहायता मिली जिनके प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इसके साथ मैं राकेश वर्मा को भी आभार व्यक्त करना चाहूँगी जिनका इस शोध कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग रहा।

प्रस्तुत शोध–ग्रंथ मैं अपने ससुर श्री अशोक कुमार सचान की चिर ऋणी रहूँगी जिनकी प्रेरणा व प्रेम भरे आशीर्वाद ने मेरे लिये कदम–कदम पर उत्साहवर्धन कर इस मुकाम तक पहुँचाया है। मैं अपने पति महोदय श्री अभय सचान के प्रति हृदय से ऋणी हूँ, जिनके सहयोग से शोध कार्य सकुशल सम्पन्न हुआ।

शोधार्थिनी

श्रीमती समिता देवी

अनुक्रमणिका

शीर्षक – शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासः वस्तु और शिल्प

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

उपन्यास-विधा और शिवप्रसाद सिंह

१. उपन्यास : अर्थ, स्वरूप, परिभाषा

२. हिन्दी उपन्यास का क्रम और उसमें शिव प्रसाद सिंह का स्थान

३. वस्तु और शिल्प की अवधारणा

४. शिव प्रसाद सिंह का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उनके उपन्यासों का परिचय

५. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय

सिंह के उपन्यासों का वस्तुविधान

1. उपन्यास अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

उपन्यास–अर्थ

उपन्यास शब्द संस्कृत के 'उपन्यस्त' से बना है जिसका अर्थ है 'सामने रखना'। मानव जीवन समाज या इतिहास के यथार्थ सत्य को सम्वाद एवं दृश्यात्मक, घटनाक्रमों के चित्रण के रूप में सामने रखना 'उपन्यास' हैं

उपन्यास शब्द संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयोग मिलता है और यह शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार सिद्ध भी किया जा सकता है। पर इसका प्रयोग किसी कथा विधा के लिए संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार–
"उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति उप + नि + अस"......[1] से अच् प्रत्यय जोड़कर की जा सकती है अर्थात् अस् धातु से पहले उप तथा नि उपसर्ग और बाद में अच् प्रत्यय जोड़कर उपन्यास शब्द बनता हैं।"

इसका शाब्दिक अर्थ तो समीप पहुँचना है, रखना एवं बैठना है। संस्कृत साहित्य में इसका अर्थ आनन्दित करने वाला, विचार अभिव्यक्ति और कथन हैं। उपन्यास लेखन की प्रेरणा हिन्दी में अंग्रेजी साहित्य से आई है–

क्रोस के अनुसार
"उपन्यास से अभिप्राय उस गद्यात्मक अल्पकथा से है जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण हो।"

अर्नेस्ट ई0 ब्रेकर के अनुसार

''उपन्यास को हम गद्यमय कल्पित आख्यान के माध्यम से की गई जीवन की व्याख्या कह सकते है।''

डॉ0 श्याम सुन्दर दास के अनुसार

''उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।''

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र के अनुसार

''मानस–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके मूल रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व माना जाता है।''

उपन्यास–स्वरूप

आधुनिक साहित्य की विधाओं में उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वरूप और प्रभाव दोनों ही दृष्टियों में उपन्यास समकालीन जीवन का पर्याय बन गया है।

डॉ0 श्याम सुन्दर दास ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए कहते हैं–''मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा उपन्यास हैं।''

''कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य का यथार्थ जीवन उपन्यासों की विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।''

उपन्यास कार्यकारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेंचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक, काल्पनिक घटनाओं के द्वारा मानव के सत्य का रचनात्मक रूप से उदघाटन किया गया है।''

वास्तव में विस्तार और रोचकता दो ऐसे तत्व है, जिनके कारण उपन्यास अन्य विधाओं की तुलना में अधिक उपयोगी विधा है।

उपन्यास–परिभाषा

उपन्यास की व्युत्पत्ति मूलक परिभाषा इस तरह की जाती है, "उप" = समीप, 'न्यास' = पास रखी हुई वस्तु रखना। अर्थात उपन्यास ऐसी कृति को कहेंगे जो हमें जीवन के निकट प्रतीत हो। 'न्यास' शब्द के रसना अर्थ से स्पष्ट है, उपन्यास उस कृति को कहेंगे जिसके द्वारा लेखक जीवन के बारे में अपने भाव, विचार पाठक के पास रखना हैं, जीवन का कथात्मक रूप पास रखने वाली कृति उपन्यास है।

"किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढ़ंग से उपस्थिति करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला कहा है।"......[2]

* * *

"कुछ लोग अंग्रेजी 'नावेल' का उद्‌भव भी संस्कृत कथा–साहित्य–परम्परा से मानते हैं।"........[3]

* * *

"यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिल्कुल बेमेल नहीं कहा जा सकता।"........[4]

* * *

"आधुनिक उपन्यास को भारतीय संस्कृत कथा साहित्य की परम्परा से सम्बद्ध स्वीकार करना सत्य की उपेक्षा करना हैं।"........[5]

* * *

अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान 'न्यू इण्टर नेशनल डिक्सनरी' के लेखक वेबस्टर के शब्दों में–

"एक सुनिश्चित आकार की काल्पनिक गद्य कथा जिसमें एक कथा के अन्तर्गत वास्तविक जीवन की उद्‌भावना करने वाले चरित्रों और क्रिया–कलापों का चित्रण किया जाता है।"........[6]

प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक राल्स फॉक्स ने लिखा है।

"The Novel is not merely fictional prose, it is the prose of man's life, the first at tempt to take the whole man and given him expression."......7

* * *

अंग्रेजी की प्रसिद्ध विदुषी क्लारा रीव ने उपन्यास को इस प्रकार परिभाषित किया–

" The Novel is a picture of real life and manner of times in which it is written. The novel gives a familiar relations of such things as pass everyday before our eyes such as may happen to our friends or to and the perfection of it is to present every scene in so easy and natural a manner and to make then appear so probable as to deceive us into persuations (at least while we are reading) that all is real until we are affected by joy or distresses of persons in the story as if they were our own."....8

* * *

जे0बी0 पस्टिल ने परिभाषित किया है

" It is a narrative in prose treating chiefly of imaginary characters and events. It is a large, mirror of life and has a far greater range than any other form of literature.............We may regard fiction as a narrative pure and simple, or as a picture of manners or as an exhibition of character or as the vehicle of certain philosophy of life."....9

* * *

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र ने उपन्यास की परिभाषा इस तरह से की है–"मै उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।".....10

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी अपने शब्दों में कहते है–

"समाज जो रूप पकड़ रहा है जिसके भिन्न–भिन्न वर्गो में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही है उपन्यास उनका स्पष्टीकरण ही नहीं करते आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न कर सकते है। किसी जन

समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिन्त्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी–कभी विस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यासों का काम है।''......[11]

❋ ❋ ❋

बाबू गुलाबराय कहते है–

''उपन्यास कार्यकारण–श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षकृत अधिक विस्तार तथा पेचींदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य रक्षात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।''......[12]

❋ ❋ ❋

विचारों और समस्याओं को उपन्यास में प्रमुख स्थान देते हुए यशपाल जी कहते है–

''विचारों को उपन्यास में प्रधानता देनी चाहिए और समस्याओं के विश्लेषण को प्रोत्साहित करना चाहिए।''........[13]

❋ ❋ ❋

शिव नारायण श्रीवास्तव जी कहते है–

''कहानियों का विकसित रूप उपन्यास है।''......[14]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सत्येन्द्र लिखते है–

''उपन्यास को नए युग की नई अभिव्यक्ति का रूप माना जाता है।''

2. हिन्दी उपन्यास का विकास क्रम और उसमें शिव प्रसाद सिंह का स्थान

हिन्दी उपन्यास का विकास-क्रम

हिन्दी उपन्यास का वास्तविक विकास भारतेन्दु युग से प्रारंभ होता है। यद्यपि इसके पूर्व ऐसी कई धाराएँ प्रचलित थी, जिन्हें विद्वानों ने उपन्यास के अन्तर्गत रखा है। हिन्दी उपन्यासों की परम्परा का सम्बन्ध संस्कृति के उपन्यास 'कादम्बरी' और 'दशकुमार चरित' से जोड़ा गया है, कुछ विद्वान सूफी प्रेमाख्यान काव्यों से औपन्यासिक परम्परा जोड़ते हैं। जहाँ तक हिन्दी के प्रथम उपन्यास का सम्बन्ध है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्री निवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है। श्रंद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (1977) को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना गया है।

'परीक्षा गुरू' में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की मध्यवर्ग की बुराईयों में जकडें एक व्यापारी का चित्रण किया गया है, यह उपन्यास मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन का प्रतिनिधि उपन्यास है।

बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892) नामक उपन्यासों में बिटिश प्रभाव के विपरीत भारतीय आदर्शो को चित्रित किया है।

राधाकृष्ण दास के उपन्यास 'निस्सहाय हिन्दू' में राष्ट्रीय एकता का तत्व प्रधान है। इसमें दो मित्रों द्वारा गोवध के विरूद्ध आन्दोलन का चित्रण किया है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाट' और 'अधखिले फूल' नामक उपन्यासों में अनमोल विवाह के दुष्परिणाम और ग्रामीण जनता के अन्धविश्वास का चित्रण किया है।

तिलस्मी उपन्यासों के अन्तर्गत बाबू देवकीनंदन खत्री (सन् 1861–1913) कृत 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' हरे कृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में चमत्कार प्रदर्शन, कौतूहल वृद्धि, प्रेम प्रसंग का सरल और प्रवाहमय वर्णन किया गया है।

जासूसी उपन्यासों के अन्तर्गत गोपालराम गहमरी कृत, 'अद्‌भुत लाश' और गुप्तचर उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में रहस्य और रोमांच की प्रधानता है। ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' रोमानी उपन्यास है। प्रगाढ़ प्रेमानुभूति और सामाजिक रूढ़ियों का उपन्यास है, गहरी करूणा और दया अंकित है।

विषय वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों में भारतेन्दु युग के उपन्यास एक प्रथा परम्परा का प्रारम्भ करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस काल में सामाजिक उपन्यासों की अधिकता रही है। मानवीय प्रेम के विविध पक्षों का भावनात्मक चित्र खींचने में इस युग के उपन्यासकारों को विशेष सफलता मिली हैं।

द्विवेदी युग में मुख्य रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी आदि प्रकार के उपन्यास लिखे गये। सामाजिक उपन्यासों में लज्जाराम शर्मा का 'आदर्श दम्पति' 'बिगड़े का सुधार' और 'नव समाज' अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'अधखिला फूल' और राधिकामण प्रसाद सिंह का 'वनजीवन' विशेष रूप से चर्चित है इन उपन्यासों में सुधारवादी जीवन दर्शन का आरोपण है।

हिन्दू संस्कृति के अनुरूप जीवन मूल्य इस काल के उपन्यासों में मिलते है। ऐतिहासिक, उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी का 'तारावाक्षत्रकुल कमलिनी' 'सुल्ताना रजिया बेगम' तथा 'मल्लिका देवी' गंगा प्रसाद गुप्त का 'नूरजहाँ', जयरामदास गुप्त कृत 'कश्मीर पतन', 'चाँदबीबी' आदि महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

तिलस्मी उपन्यासों में देवकीनन्दन खत्री कृत 'काजर की कोठरी', 'अनूठी बेगम' तथा 'भूतनाथ' हरेकृष्ण जौहर कृत 'मायामहल', 'कमल कुमारी' तथा भयानक खून तथा किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'तिलस्मी शीशमहल' उल्लेखनीय है। जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी कृत 'सरकटी लाश', 'चक्करदार चोरी', 'जासूस की भूल' जासूसी पर महत्वपूर्ण उपन्यास है। एक नई बात यह हुई है कि इस युग में मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त अनुदित उपन्यास खूब लिखे गये। विषय वस्तु में वह विस्तार नहीं दिखाई देता है जैसा प्रेमचन्द्र युग में दिखाई पड़ती है।

प्रेमचन्द्र युग में हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा मिली। केवल विषयवस्तु की विविधता की दृष्टि से अपितु शिल्प पक्ष की प्रौढ़ता की दृष्टि से प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास साहित्य का स्वर्णकाल हैं, इस युग के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द्र, जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भर नाथ शर्मा, कौशिक, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, जैनेन्द्र आदि उपन्यासकारों के नाम महत्वपूर्ण है।

प्रेमचन्द्र ने सेवासदन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान, मंगलसूत्र आदि उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ के विविध पक्षों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द्र के पूर्व उपन्यास शिक्षा, उपदेश अथवा मनोरंजन के लिए रखे जाते थे। परन्तु प्रेमचन्द्र के लिए उपन्यास सृजनात्मक एवं रचनात्मक विधा थी। प्रेमचन्द्र हिन्दी साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के प्रणेता थे। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था। विविध सामाजिक समस्याओं, दहेज प्रथा, शोषण की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, रूढ़ियों और पाखण्डों की समस्या का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में गम्भीरता पूर्वक किया हैं।

इसी काल में जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' 'तितली' और 'इरावती' की रचना की। सामाजिक यथार्थवाद प्रसाद जी के उपन्यासों की विषय वस्तु हैं। उनके उपन्यासों की भाषा अत्यन्त मोहक और भावपूर्ण है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक' ने अपने दो उपन्यास 'माँ' और 'भिखारिणी' में आदर्श और यथार्थवाद के तनाव को व्यंजित किया है। माँ के लिए पुत्र के प्रति वास्तविक और गोद लेने वाली माँ के व्यवहार को तुलनात्मक दृष्टि से आँकने का प्रयास किया है। 'भिखारिणी' नामक प्रेमकथा में रामनाथ नामक एक धनी युवक भिखारी नन्दु और उसकी युवा पुत्री जस्सों को अपने यहाँ शरण देता है। रामनाथ और जस्सो की प्रेमकथा के रूप में उपन्यास की कथावस्तु विकसित होती है।

चंडी प्रसाद शर्मा 'हृदयेंश' ने 'मनोरमा और मंगलप्रभात' नामक उपन्यासों की रचना की। इनमें भारत के सांस्कृतिक मूल्यों की जीवन्तता पर बल दिया गया। इन उपन्यासों की नैतिक पृष्ठभूमि आदर्शवादी साँचे से जुड़ने के कारण गम्भीर बन जाती है। शिवपूजन सहाय कृत 'देहाती दुनिया' में सामाजिक यथार्थ को नये सिरे से रेखांकित किया गया है। देहाती दुनिया का गाँव भारत का एक प्रतिनिधि गाँव है।

सियारामशरण गुप्त द्वारा रचित उपन्यासों में 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' चर्चित रहे है। वृन्दावन लाल वर्मा, एक ऐतिहासिक उपन्यासकार थे। उन्होंने 'मृगनयनी', 'झाँसी की रानी', 'गढ़ कुड़ार', आदि उपन्यासों के माध्यम से इतिहास के झंझावत के बीच कथा उत्पन्न करने की सफल चेष्टा की, प्रेमचन्द्र का युग उपन्यासों के रचनात्मक विकास का युग है। इस समय के रचनाकारों ने एक नयी कथा भाषा का निर्माण किया।

सामाजिक जागरूकता, प्रगतिशीलता, मानवीय सहानुभूति इस काल के उपन्यासों की मुख्य विशेषताएँ है। प्रेमचन्द्र के उपरान्त हिन्दी उपन्यासों की कई धाराएँ प्रचलित हो जाती है। विशेष रूप से सामाजिक व्यक्तिवादी सामाजवादी, ऐतिहासिक और मनोविश्लेषणात्मक कोटि के उपन्यास रचे गये है। जैनेन्द्र, भगवती प्रसाद बाजपेयी, उपेन्द्रनाथ, अश्क, कमलेश्वर, भगवती चरण वर्मा, रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, नरेन्द्र कोहली और श्री लाल शुक्ल जैसे रचनाकारों ने हिन्दी उपन्यास परम्परा को समृद्ध बनाया है।

जैनेन्द्र कुमार ने 'परख' 'सुनीता' 'त्यागपत्र' और कल्याणी आदि उपन्यासों के माध्यम से मानव चरित्र का एक नया संसार रचा। संस्कार और नैतिकता का द्वन्द्व उनके उपन्यासों की उल्लेखनीय विशेषता है। 'परख' में उन्होंने विधवा को केन्द्र में रखकर उसके जीवन में घटित विरोधाभासों और तनावों का चित्रण किया है। हिंसा और अहिंसा का द्वन्द्व सुनीता का केन्द्रीय कथ्य है। सुनीता हरि प्रसन्न की हिंसा का उत्तर अहिंसा से देती है। विवाह और स्वेच्छाकार प्रेम और घृणा, व्यक्ति और समाज, जीवन और जगत की विविध समस्याओं को जैनेन्द्र गाँधीवादी और मनोविश्लेषणवाद का पुट देकर हल करने का प्रयत्न करते हैं।

डॉ० इलाचन्द्र जोशी के अनुसार मुख्य रूप में--घृणामयी, 'जहाज का पंक्षी' 'मुक्तिपथ' 'सुबह के भूले' तथा 'सन्यासी' नामक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की है। जोशी जी के उपन्यासों के नायक आत्मरति, दम्भ और कुंठाओं के शिकार है। वे एक स्वाभाविक जीवन नहीं जीते तथा प्रतिक्रिया स्वरूप विक्षिप्त व्यवहार करते है।

अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' अपने--अपने अजनवी आदि उपन्यासों की रचना की है। विशेषरूप से 'शेखर एक जीवनी' एक विशिष्ट उपन्यास है। शेखर और शशि के सम्बन्धों के माध्यम से अज्ञेय मानव अस्तित्व की स्वतन्त्रता की

समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। अज्ञेय के उपन्यास मानवीय संवेदना की तरलता के मूल में प्रेम और पीड़ा के चरम अनुभव से सम्बद्ध है। विशेष रूप से अस्तित्ववादी दर्शन और मनोविश्लेषणवाद के उपयुक्त संदर्भ प्रदान करने में उन्हें सफलता मिली है।

प्रेमचन्द्रोत्तर युग के सामाजिक उपन्यासों में पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र' द्वारा रचित 'चन्द्र हसीनो के खुतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी' आदि।

सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला' कृत 'अप्सरा' 'अलका' 'प्रभावती' 'निरूपमा' भगवती चरणवर्मा द्वारा रचित 'चित्रलेखा' 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते' 'भूले–बिसरे चित्र' 'सामर्थ्य और सीमा' 'सीधी सस्ती बातें' उपेन्द्र नाथ 'अश्क' कृत 'गिरती दीवारे' 'गर्म राख' 'बड़ी बड़ी आँखे' 'शहर में घूमता आइना' विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'आवारा मसीहा' 'स्वप्नमयी और दर्पण का व्यक्ति'। अमृतलाल नागर कृत, 'बूँद और समुद्र' 'शतरंज के मोहरे' 'अमृत और विष' 'नाच्यौं बहुत गोपाल' 'मानस का हंस' 'खंजन नयन' प्रमुख है। इस प्रकार के उपन्यासों में सामाजिक जीवन की समस्याएँ अन्तर्विरोध और विषमता प्रकट हुई है। प्रगतिवादी उपन्यासों में साम्राज्यवाद विरोधी चेतना प्रकट हुई है।

राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़े उपन्यासकार है, इनमें यशपाल द्वारा रचित 'देशद्रोही' 'दिव्या पार्टी' 'दादा कामरेड' " मनुष्य के रूप' 'झूठासच'

नागर्जुन कृत 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नयी पौध', 'बाबा वटेसरनाथ' रांगेय राधव कृत 'विषादमठ' 'घरौंदे', कब तक पुकारूँ, 'धरती मेरा घर' भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा रचित 'मशाल', 'गंगामइया', 'सती मइया का चौरा' कालिन्दी भीष्म कृत 'कड़ियाँ', 'तमस' और 'बसन्ती' प्रमुख उपन्यास है। प्रगतिवादी उपन्यासकारों में

व्यक्तिगत पारिवारिक प्रमुख उपन्यास हैं। प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों के प्रति गहन प्रतिबद्ध दृष्टि अपनायी। स्वतन्त्रता के उपरांत हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप निरंतर बदलता रहा हैं। विशेष रूप से आधुनिकता बोध उपन्यासों की परंपरा प्रारम्भ हुई।

मोहन राकेश रचित 'अंधेर बंद कमरे में' 'न आने वाला कल' निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' राजकमल रचित 'डाक बंगला' गंगा प्रसाद विमल कृत 'अपने से अलग' नरेश मेहता कृत 'यह पथ बंधु था' महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

इन उपन्यासों में आस्थाहीन व्यर्थ अजनबीपन और आत्मनिर्वासन आदि आधुनिक जीवन मूल्यों के रूप में उभरे है। समकालीन पीढ़ी में शिवानी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्बदा, मृणाल पाण्डेय, राजकुमार भ्रमर, ममता कालिया, रमेशचन्द्र शाह, पंकज विष्ट गोविन्द मिश्र, गिरिराज किशोर आदि सशक्त हस्ताक्षर है। इन्होंने समकालीन जीवन में विसंगतियों के अनुभव कर उससे गहराई से जुड़कर देखा और समझा है।

इस कारण उनकी जीवन विषयक दृष्टि में प्रमाणिकता विद्यमान है।

पंकज विष्ट का उपन्यास, 'लेकिन दरवाजा' पहाड़ से दिल्ली में बसे कलाकारों और बुद्धिजीवियों पर केन्द्रित है। अब्दुल विसमिल्लाह का 'झीनी– बीनी चदरिया' बनारस के साड़ी बुनकरों के शोषण और अभावों की अतरंग झाँकी प्रस्तुत करता है।

रमेशचन्द्र शाह की रचना, 'किस्सा गुलाम में' एक वापसी की चिन्ता को व्यक्त किया है। 'आज का उपन्यास' जीवन के संघर्षो का प्रतीक है। आजादी के बाद के काल को मोह भंग के बाद संक्रमण का समय कहा गया है।

आधुनिक मूल्यहीनता, अकेलापन, पलायन, यौन स्वच्छन्दता आदि प्रवृत्तियों से हिन्दी उपन्यासों का रचना संसार किसी प्रभावी विषय–वस्तु का अविष्कार नहीं कर सकता है। यद्यपि यथार्थ के स्तर पर जो समकालीन मानव नियति है उस सन्दर्भ में इन उपन्यासों को निश्चय विश्वसनीय स्वीकार किया जा सकता है।

गोविन्द मिश्र की 'लाल पीली जमीन' में शहरी जीवन के यथार्थ और मनुष्यत्व की समस्याओं का मिश्रण है। अमृतलाल नागर के 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में भंगी जीवन की सामाजिक आर्थिक विसंगतियों का प्रकटीकरण है।

जगदीश चन्द्र ने 'धरती धन न अपना' नामक उपन्यास में समकालीन गाँवों के जीवन में आते हुए बदलावों को विवेचित किया है। इस काल के आँचलों में ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य के नष्ट होने की व्यथा, गहरी टीस के साथ व्यंजित है। महिला कथा के लेखन के माध्यम से स्त्री मुक्ति और दलित मुक्ति कथा लेखन के माध्यम से दलित के प्रश्न का दृढ़तापूर्वक व्यंजित किया जाता है। इधर के महत्वपूर्ण उपन्यासों में रामदेव राधिका मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' कृष्णासोवती कृत 'मित्रों मरजानी' प्रभाखेतान का 'छिन्न मस्ता' सुषमा मनिन्द्रा का 'मीरा' मृणाल पाण्डेय का 'पटरंगपुर पुराण' अलका सरावगी का 'कालि कथा वाया बाइ पास' मैत्रीय पुष्पा कृत 'अलमा कबूतरी' विनोद कुमार शुक्ल कृत 'दीवार में खिड़की रहती थी' कमलकांत त्रिपाठी कृत, 'पाहीधर' गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया' विवेकी राय का 'सोना माटी' विभूति नारायण राय का 'शहर में कर्फ्यू' आदि उल्लेखनीय है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है, कि हिन्दी उपन्यास मानवीय नियति से जूझते हुए आज की समस्या के समाधान के लिए संघर्षरत है। डॉ0 सिंह का पहला उपन्यास 'अगल–अलग वैतरणी', 'नीला चाँद' की सबको प्राप्त सुलभ ज्योति किरण विधाधर देव का सपना उनके मन का सपना था।

अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए शिव प्रसाद सिंह लिखते है–

अराजकता में डूबा, निराशा, दिशाहीनता में मेरा देश मुझे पुकारने लगे। मुझे इतना भी आत्मविश्वास नहीं था कि मैं एक दशक के अन्तराल के बाद फिर रचना कर सकूँगा। पर नीला चाँद तो मन के भीतर इस तरह झिलमिला रहा था कि मै उसे बिना बाँधे बेचैन था। मैने अपनी जिन्दगी में बीस साल के रचना काल में भी ऐसा होते नहीं देखा।

मै कलम लेकर बैठता और वेदना का सरोवर अचानक उमड़ पड़ता। शायद बहुत बेचैन आन्तरिकता को खोलने और बिलगाने के लिये मुझे वर्तमान के ओर छोर विहीन समाधानों की जरूरत नहीं थी। मै समाज विखण्डन का कथाकार कभी नहीं था। जैसे प्रेमचन्द्र में हो या न हो कि उनकी परम्परा को पूजने वालों में हूँ। मैं व्यक्ति विखण्डन के भीतर से गुजरने वाला कथाकार हूँ, पर मुझे आधुनिकता की भरपूर जीवनी शक्ति प्राप्त है। मेरे भीतर एक आहत व्यक्ति था, एक कर्तव्यमूढ़ राष्ट्र था, एक अतिवादी छोटो पर औसत से ज्यादा खिचती रबड़ के टुकड़े जैसी मानवता थी, जिसका टूटना देख रहा था, जिसे मैं जिजीविषा से मिलाना चाहता था, अपना सब कुछ सारी अस्मिता विश्व मानव के हेतु निछावर कर देना चाहता था।

डॉ० शिव प्रसाद सिंह का स्थान

"हिन्दी" के साठोत्तर उपन्यासकारों में मूर्धन्य उपन्यासकार शिव प्रसाद सिंह जहाँ अपने उपन्यासों में एकाधिक प्रकार के शिल्प प्रयोगों को लेकर उपस्थित होते है, उनको अन्तर पाठीय शिल्प का बहुत ज्ञान था। आप को अन्तर पाठीय शिल्प का कलाकार एवं रचनाकार कहा जाता है।"......[15]

उन्होंने अपनी योग्यता के द्वारा उद्देश्यता और साभिप्रायता को अच्छी तरह उजागर किया हैं। हिन्दी में कुछ और रचनाकारों के अन्तर पाठीय शिल्प का प्रयोग किया। परन्तु कुछ पाठकों एवं आलोचकों ने इसे ट्रेस पासिंग माना है और इसका विरोध किया है तथा इसे दूसरों के घर से होकर अपने लिए रास्ता निकालने जैसा अपकार तक माना है। वस्तुतः अन्तर–पाठीयता सर्जना एवं एक कौशल हैं, एक तकनीक है, एक शिल्प है, शिल्प से उपन्यासकार की सार्थकता एवं बौद्धिकता की गहराई को नापा जाता है। शिल्प प्रत्येक उपन्यासकार की अलग–अलग होती है।

अन्तर पाठीयता शब्द अंग्रेजी के ''इन्टर टेक्स्चुरूलिटी'' का हिन्दी अनुवाद है उसका अर्थ है, किसी पहेली की या उसमें पहले से रचित पाठांशों को फिर से प्रयुक्त करने से ग्रहण किया जाता है।''........[16]

अन्तरपाठीयता को विजातीय तत्व, विस्थलीय तत्व, (फोरनवॉडी) निवेशन उद्धरण और साहित्यिक उद्धरण जैसे कई अन्य नामों से पुकारा जाता है। पश्चिमी विचारधारा के अन्तर्गत साठोत्तर दशक में फ्रांसीसी संरचना विचारधारा के अन्तर्गत साठोतर दशक में फ्रांसीसी संरचना वादियों ने अन्तर पाठीयता की अवधारणा पर विचार किया हैं इसकी मूल प्रस्ताविका और स्थापिका फ्रांस की जूलिया कृस्तिवा को माना जाता है। इस अवधारणा के मूल में किसी कृति के सफल सार्थक होने की स्थिति उसके पूर्ववर्ती लेखन की कतरनों के जरिये सिद्ध की जाती हैं। डॉ0 शीताशुं के अनुसार पाठीयता वह शिल्पगत कौशल है, जिसके जरिये रचनाकार पूर्व पाठांशों को पुनः सर्जित करता है, सभ्य अथवा वैषभ्य के द्वारा नया अर्थ भरता है, इस प्रकार साहित्य के बीच एक तारतम्य बन जाता है। अन्तर पाठीयता एक विशिष्ट शैली विशेषज्ञों के चिन्तन का विषय है।

"अन्तर पाठीयता शैली वैज्ञानिक आलोचना के विभिन्न अभिकरणों में स्वरूपित होती हैं। इस सम्बन्ध में शीतांशु का मत है कि उपन्यास में अन्तर पाठीयता विचलन और विपथन दोनों ही रूपों में संरचित हो सकती है।"......17

"अन्तर पाठीयता को सात कोटियों में विभाजित कर सकते है।"

1. भाव हरण (प्लेगिआरिजम)
2. अनुकूलन (एडेप्शन)
3. पुर्नकथन (रेटेलिग्ज)
4. विदुपिका (पैरोडीज)
5. प्रत्यालोचनात्मक (क्रिटिसिज्म)
6. संशोधन (रिवीजंस)
7. विस्तारण (एक्सपैशन्ज) कहा जाता हैं।"

शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों में अन्तरपाठीयता शिल्प का प्रयोग प्रमुख रूप से भावहरण एवं पुनर्कथन के रूप में हुआ। "अलग–अलग वैतरणी" में लोकगीत एवं लोक कथाओं की अन्तर पाठीयता जो आधार भाषा पर कलात्मक स्तर पर उपस्थित हुई है, जो कि अंचलविशेष के संस्पर्श की संजीवता को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुई है।

"गली आगे मुड़ती है" में उत्कृष्टि अन्तरपाठीयता शिल्प का श्रोत संस्कृत, बंगला एवं आधार भाषा हिन्दी का रहा है।

'गली आगे मुड़ती है' में हरिश्चन्द्र की परीक्षा की पौराणिक कथा, राजा रिपुंजय द्वारा पृथ्वी का शासन संभालने का वृतान्त, पंच गंगा सम्बन्धी आख्यान, काशीराज के कटहे घोड़े की कहानी का पाठांश भावहरण मूलक अन्तर पाठीयता है, जो प्राचीन संस्कृत भाषा साहित्य से ग्रहण किये गये है।

हरिश्चन्द्र की परीक्षा का कथांश हरिश्चन्द्र घाट (दश्वामेद्य घाट) में इन लाशों के जलने में फैली भयानक बदबू के बावजूद लोगों के आकर्षक तत्व को उद्घाटित करता हैं, इसके दो कारण स्पष्ट होते हैं, एक है गंगा जिसमें सारी गन्दगी को जज्व करके स्वच्छ और पवित्र रहने का चमत्कार है, और दूसरा है, हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा जिसमें अनपढ़ से अनपढ़ व्यक्ति को भी सत्य की अद्भुत दृढ़ता के अमानवीय कार्यो के प्रति सहज श्रद्धा से भर देता है, राजा रिपुंन्जय द्वारा पृथ्वी का शासन संभालने का वृत्तान्त विश्वेश्वर मन्दिर में सांयकालीन आरती के दौरान पढ़े जाने वाले श्लोक के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित वहाँ के परिवेश को साक्षात रूप से उजागर करता है, पंच गंगा का पौराणिक आख्यान पंच गंगा पर पाँच नदियों के मिथिहास को मुखर करती है काशीराज के कटहे घोड़े की कहानी की अन्तर पाठीयता का प्रयोग रमेन्द्र के अस्वाभाविक एवं अस्थिर चरित्र को उभारने के लिए किया गया है।

पुनर्कथन मूलक अन्तर पाठीयता के अन्तर्गत कलात्मक एवं लोकात्मक दोनों रूप शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास में प्रयुक्त हुये है–

" कबिरा गरब न कीजिये इस जीवन की आस। टेसू फूले चार दिन खंखर भये पलास"........[19]

जैसे कबीर वाणी की प्रोक्ति विचलन पर आश्रित समान्तर स्तर उपन्यास में उपस्थित होती हैं लेखक इसे "प्रभातीघायल" के रूप में प्रस्तुत कर करैता गाँव के दर्द एवं उसके विचित्र से निरर्थकता के बोध भरे परिवेश की तीव्र अनुभूति करता है।

"नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ, सांसतिकरि पुनि करहिं पसाऊ"........[20]

यह तुलसी के कथन को अन्तर पाठीयता करैता गाँव के जमींदार और करैता की प्रजा के सम्बन्धों की विवेचना करती हैं। वाराणसी जैसी नगरीय जीवन के निराश और निरर्थक पक्ष का बोध कराने के लिए लेखक तुलसी दास के जीवन के निःस्वफक्कड़पन का विश्लेषण कर विचलित प्रोक्ति को प्रस्तुत करता है।

शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास में फिल्मी गीतों की अन्तर पाठीयता भी उत्सृजित हुई है जैसे दो बदन, प्यार की आग में जल गये, इस चमेली के मंडवे तले तथा चन्द्रमा की चाँदनी से भी नरम और रवि के भाल से भी ज्यादा गर्म। वह नहीं कुछ केवल प्यार है, प्यार–प्यार–प्यार...... फिल्मी गीतांशो की ये विचलन से, कौशल से, उपस्थित अन्तर पाठीय प्रोक्तियाँ रामानन्द के अर्न्तमन और प्यार पाने की आकुलता और दर्द का अहसास कराने में साभिप्राय भूमिका निभाती है।

"शिव प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास, 'अलग–अलग वैतरणी' में आधुनिकता बोध की सन्निविष्ट करने की कोशिश की है। इसमें उस परिवेश का चित्रण है, जिसमें नये–पुराने मूल्यों, नयी पुरानी पीढ़ी भिन्न भिन्न वर्गो और जातियों की टकराहट मे सारे मूल्य गड्ड मड्ड हो जाते हैं, "प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी वैतरणी से घिर जाता है, गा चह पार जतन बहु हेरा, पावत नाव न बोहित बेरा, वैतरणी को पार न करने का मतलब है 'नरक'.......[21]

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने लोक गीतों के अन्तर–पाठीयता का संयोजन सुन्दर ढ़ंग से किया है। उनके "अँखिया से लोखा गिरत हुई है ना। उनके गज मोती अंचल भिजत होई है ना, फूल परिजतवा झरत होई हैं ना। लरकियाँ के नेहिया टूटत होइ है ना।"

यह लोक गीतात्मक अन्तर पाठीय शिल्प विचलित प्रोक्ति 'अलग–अलग वैतरणी' में समान्तर स्तर पर उभरती है, उपन्यासकार इसके सहारे करैता गाँव में प्रचलित

राजमती एवं दैपाल की प्रेम भरी दुःखद दास्तान को मुखर करता है। बीसू धोबी की अलाप की काँपती आवाज दिलो में दर्द की धुमड़न बनकर बरसने लगती हैं। इस गीत की कड़िया विपिन और पुष्पा के विछोह के दर्द को पुनः उभारती है। करैता के लोगों के अन्धविश्वास को अभिव्यक्त करने के लिए लेखन इस लोकगीत का अन्तर पाठीय रूप में प्रयोग करता है।

कजरा कइ धन बिरवा अकुवन फुलगनि हरबा, इस लोकात्मक अन्तर–पाठीयता का सन्दर्भ केबड़ार से जोड़ा हुआ है। करैता गाँव में अन्धविश्वास एवं प्रकृति प्रेमी भी हैं।

बीसू धोबी के अलाप की काँपती आवाज में दिलों में दर्द की घुमड़न बनकर बरसने लगती है। इस गीत की कड़ियां बिपिन और पुष्पा के विछोह के सन्दर्भ में उक्त दर्द पुनः उभारती है। करैता के लोगों में अन्धविश्वासों को अभिव्यक्त करने के लिए लेखक इस लोकगीत का अन्तर पाठीय के रूप करने में प्रयोग करता है।

"कजरा कह धन बिरवा, अंगुवना फूल। गरवा कह मनि हरवा, उपजै सूल"......[22]

इस लोकात्मक अन्तर–पाठीयता का सन्दर्भ केवड़ार से जुड़ा हुआ है। करैता के लोगों का विश्वास है कि रात में टहनी–टहनी में चमकीले साँप झूलते है। उनकी साँसों से केवड़े के फूल अधखिले ही मुरझा जाते हैं। शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यासों में अन्तर पाठीय गीत बनारस जीवन की संस्कृति में गुजरात–लोकोत्सव, 'गरवा' में प्रसंग को सॅम्पुष्ट करती हैं, जिसमें गुजराती संस्कृति का परिचय प्रस्तुत करने में साभिप्रायतः सिद्ध करते हैं।

"शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों में अन्तर भाषायी अन्तर–पाठीयता का भी साभिप्राय नियोजन हुआ है, अन्तर पाठीयता प्रमुख रूप से संस्कृत, बंगला, उर्दू से गृहीत हैं"......[23]

'गली आगे मुड़ती है' में कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से गृहीत राजनीति सम्बन्ध अन्तर–पाठीयता राजनीतिक व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारने के लिए उद्धत की गयीं है।

"राजशास्त्र भवद्रे गौरं सारिकायवंदन शुभम्।
अंक्ष सूत्रं फलयं विभ्रदन्नाहंर कमण्डलुम।।........[24]

सामांतरित स्तर पर आधारित 'शुतःशेष' की अन्तर पाठीयता रामानन्द को वर्तमान स्थिति को सार्थक करने में प्रस्तुत होती है।

"कतमस्यांमृताता मनामहें यास देवस्य नाम।।
को तो अदितये पुनर्दाब्यितंर च दृशेय मातेस्य।"

इसमें मूल में पिता के द्वारा उपेक्षित होने की अनुभूति के साथ शुतःशेष को अपनी विवक्ष के साथ जुड़ती है। शुनः शेष अजिर्णाति का यह सन्दर्भ रामानन्द की आत्मा में सोते शुनः शेष को झकझोर कर जगा देता है।

"उपन्यासकार निम्न फिल्मी बंग्ला गीत के अन्तर पाठीय प्रयोग के माध्यम से बनारस के दुर्गापूजा के उत्सव के परिवेश मुखर करते हुए उल्लास में डूबे शहर के धीरे–धीरे प्राणहीन होने की व्यथा को उभारता है। शुनो बन्धु शुनो प्राणहीन एइ शहरेर इतिकथा। इंटर पंजरे लेखा दु'खेर अति ब्यथा। जयन्ती के सात्विक सौन्दर्य के सन्दर्भ में उसके व्यक्तित्व वैशिष्ट्य की विशेषता उभारने के लिए बंगला अन्तर पाठीयता का संयोजन करता है, सुधामये दुग्धातार देख्वो तारे पापक्ष्ये हय"।........[25]

उर्दू अन्तर – पाठीयता "अलग–अलग वैतरणी" खलील चाचा के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुई है। जैसे "हासिल से हाथ धो बैठे ऐ आरजू खिरामी" दिल जोशो गिरिया में

डूबी हुई असामी, वक्त ने कर दिया है खुदफरामोश। अपना भी मुन्तजिर तेरे इन्तजार में ये सभी विचलित प्रोक्ति पर आधारित उर्दू शायरी के अन्तर पाठीय तथा मेहरवाँ हो के बुला लो मुझे चाहो जिस वक्त। मै गया वक्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ, खलील चाचा के होने वाले अन्याय, उसके खोखले आदर्शवाद एवं अन्ततः उसके आदर्शवादी के ढह जाने और परिस्थितियों से समझौता करने के प्रसंगों को प्रमाणित रूप से प्रस्तुत कर लेखक महोदय साभिप्रायी भूमिका निभाते है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यासों में सर्वप्रथम नटों की जीवनचर्या पर सूक्ष्म एवं गम्भीर दृष्टिपात किया है। इनके अंतर प्रेमचन्द्र की परम्परा का अनुधावन करते हुए बुजुर्आ संस्कृति के मूल्यों एवं सीमाओं का उपस्थापन किया है। यहीं पर विराम न लेकर नारी की करूणावस्था व दुर्वस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, बनारस जैसे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक नगर की लोक संस्कृति, परम्पराओं, मान्यताओं आदि का प्रभावी विवेचन किया है। इस प्रकार इन प्रायः अछूते सन्दर्भो का स्पर्श करने के कारण वे आधुनिक कथा शिल्पी के रूप में ख्यातनामा हो गये है।

3. वस्तु और शिल्प की अवधारणा

हिन्दी उपन्यास को मध्यम वर्गीय नवीन चेतना के महाकाव्य का नाम भी दिया गया है। आशय है कि आज हमारे समाज में सर्वाधिक जागरूक और बौद्धिक रूप में सक्रिय मध्य वर्ग है। उसके निकट युग को चित्रित करने और इसकी समस्याओं को हृदयगम्य करने का माध्यम, साहित्य में उपन्यास विधा है। इसका महाकाव्य जैसा विस्तार है और इसमें युग को समझने की सामर्थ्य है। यह जीवन को यथार्थपरक दृष्टि से देखता है, और चरित्र के माध्यम से पात्रों के रूप में मनुष्य को अधिकाधिक समझने का प्रयत्न करता है। भारत में अंग्रेजी शासन जमने के उपरान्त समाज में उच्च और निम्न वर्गो के बीच मध्य वर्ग का उदय हुआ। इसकी आय बीच के स्तर की थी। इसमें कार्यालयों के कर्मचारी और साधारण व्यवसायी लोग थे। इसका शिक्षित होना आवश्यक था। इसका प्रमुख आश्रय इनकी बुद्धि बल था।

"पूँजीवादी व्यवस्था ने समूचे समाज को तीन भागों में विभाजित किया।"

1. बुर्जुआ
2. मध्यवर्ग (मिडिल क्लास)
3. निम्नवर्ग

मध्यमवर्ग सामान्तवाद व्यवस्था में नहीं पाया जाता हैं, क्योंकि उस समय जमींदार और किसान का सीधा सम्बन्ध था, किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया कि एक मध्य वर्ग की आवश्यकता हुई, जो इस जटिल व्यवस्था के संगठन सूत्र को संभाल सकें। इस वर्ग में नौकरी पेशा, क्लर्क, और साधारण लोग आते थे। मध्य वर्ग वृद्धि प्रदान करने वाला वर्ग रहा है। सामाजिक क्रान्ति के प्रायः समस्त विचारों का सृजन मध्यम वर्ग में ही होता है। मध्यम वर्ग में दो भाग है उच्च वर्ग और निम्न वर्ग"........[26]

हमारा मध्यम वर्ग बहुत विस्तार ले चुका है इसका कार्य क्षेत्र फैला है और इस तीव्र परिवर्तन शील युग में इसके जीवन में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक नारी पुरूष व सैक्स सम्बन्धी अनेकानेक भावनाओं ने जन्म दियाहै। ये समस्यायें निरन्तर विचारणीय बनी रहती है। फोन, टी0वी0, इन्टरनेट आदि तीव्र संचार होने पर भी प्रधान रूप से इस युग में भी बड़ी संख्या में लोग साहित्य से जुड़े है उनका यह जुड़ाव साहित्य के लेखन व अध्ययन दोनों की दृष्टि से है उपन्यास के लेखन में अधिकतर मध्यम वर्ग का योगदान है वह अपनी समझ और संवेदनशीलता से लेखन कर रहा है। यहां तक कि किसान और मजदूर पर जो लिखा गया है। वह किन्हीं अपवादों को छोड़कर मध्यम वर्गीय लेखकों को हैं।

मुंशी प्रेमचन्द्र ने गहरी दृष्टि से किसान को देखा है। वे मध्यवर्ग के थे। यशपाल, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी तथा शिव प्रसाद सिंह आदि लेखक मध्यमवर्गीय है, जिन्होंने सर्वहारा वर्ग को विशेष सहानुभूति दी है। नागार्जुन, वृन्दावन लाल वर्मा तथा शिव प्रसाद सिंह ऐसे अनेक उपन्यासकार किसानी जीवन में संयुक्त रहे है, और उसे निकटता से देखकर उन्होंने लिखा है। फिर भी वे मध्यम वर्गीय समाज और चेतना के खासे भागीदार रहे है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है।

नये या आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का बार–बार क्रम आता हैं आधुनिक का अर्थ लाक्षणिक हैं। आधुनिक वह दृष्टिकोण हैं, मध्य कालीन नहीं, पारम्परिक, नया और स्वतन्त्र या आत्मनिर्भर है। मध्यकालीन दृष्टि के अनुसार मनुष्य काल धारा का निश्चेष्ट अंग बनकर उसका अनुसरण मात्र करता था। वह परम्परा का अनुयायी था, और भावानुकूल होकर उसी पर न्यौछावर होता था। अब नव युग के विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि से विकास में 'क्यों' और 'कैसे' के निरन्तर उठते प्रश्न चिन्हों में जीवन को समझने का उसे आलोचनात्मक बोध दिया है। आधुनिक व्यक्ति ईश्वर, परम्परा आदि। प्रचलित मान्यताओं को यथावत ओढ़ नहीं लेता, इन पर उनकी पैनी

दृष्टि रहती है। यह दृष्टि उधार ली हुई नहीं अपितु आत्मवलोकन एवं आत्ममंथन की देन होती है।

वह जीवन का गहराई से देखता है और उसकी संगति और सन्दर्भ में उसकी अस्तित्व की सार्थकता खोजता है। उसकी बौद्धिकता व आत्म विश्वास ने उसे भावुकता से छुड़ाया है उसे नियति का नहीं अपनी इच्छा शक्ति का भरोसा है, वह निकट परिस्थितियों का सामना स्थिर मन से गम्भीरता पूर्वक करता है। ऐसे अवसर पर उसमें न विद्रोह होता न निरीहता। स्पष्ट है यथार्थ जीवन की संकीर्ण और कंकरीली गली से गुजर कर अपना जीवन धारण करना पड़ता है। मनचाहा बहुत कम मिलना आवेग, आवेश में न बहकर अर्न्तमुखी होकर उसे अनुभव के चिन्तन से धीरे धीरे आत्म निर्णय पर आना होता है। हर मनुष्य को अपना पथ स्वयं खोजना पड़ता है। जीवन का अन्वय करके इसके अभाव के बीच से ही उसे अपना मार्ग सूझ पायेगा, दुर्भाग्य मनुष्य की अन्तिम नियति नहीं हैं। अन्तिम नियति है, होना और वह यों नहीं हो जाता है जीवन की यन्त्रणा व्यक्ति को तपाती है, तब उसकी दिशाये खुलती हैं।

संघर्ष का मित्र है, बिना संघर्ष के जीवन अधूरा और अपूर्ण है, संघर्ष करके मानव जीवन का सही लक्ष्य प्राप्त करता है। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अपने वसीयतनामा में अपनी दृष्टि स्पष्ट की है। पूर्व प्रचलित धर्म सम्बन्धी परिपाटियों में वे रूढ़िवादिता की गन्ध पाने के कारण उन्हें ओढ़ते नहीं, उन्हें वे सन्देह और शंका की दृष्टि से सहज त्यागते चलते है, वे गंगा तट पर बसे इलाहाबाद के निवासी है गंगा की मिट्टी में खेले है, और उससे प्राप्त अन्न जल से उनका शरीर पला है। इसलिये गंगा को वे अपनी माँ कहते है। यहाँ वे धार्मिक विश्वास की किसी रूढ़ि से प्रभावित होकर वे गंगा को महत्व नहीं देते, अपितु अपने विवेक द्वारा उसकी देन को स्वीकार कर उसके आगे सिर झुकाते है यही उनकी दृष्टि की आधुनिकता है।

गंगा भारत की संस्कृति और सभ्यता है, गंगा में भारतीय लोगों की गहरी आस्था है गंगा वास्तव में बहुत गहरी और गम्भीर हैं।

डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार साहित्य के सन्दर्भ में जीवन के सन्दर्भ की भांति आधुनिकता का महत्व हैं। साहित्य के लिए वर्तमान की परिपूर्ण चेतना आवश्यक हैं, किन्तु भूत भविष्यत् वह छिन्न नहीं रह सकती है। आधुनिकता का अर्थ व्यापक और गत्यात्मक ही मानना चाहिए। युग बोध, परम्परा का संशोधन, जीवन के वैविध्य की स्पृहा अपने पर्यावरण के माध्यम से आत्म सिद्धि, विकास की आकांक्षा आदि उसके सही लक्षण है। विघटन अगति, निराशा और अवसाद में ही युग का यथार्थ बोध नहीं है। अगति आदि जो जीवन के लक्षण नहीं है। आधुनिक के लक्षण कैसे हो सकते हैं।

आधुनिकता की चेतना साहित्य सृजन में जितनी प्रच्छन्न और अनन्त व्याप्त होंगी, उतनी उपयोगी होगी। फिर भी यह विधि जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का साधन रहेगी। सच्चें अर्थ में मूल्य 'जीवन लक्ष्य' नहीं बन सकते।

आधुनिकता की चुनौती को हर उपन्यासकार ने अपने धरातल पर स्वीकार किया है। इसलिए आज के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प के विकास में विविधता तथा विभिन्नता है टूटन बिखराव, आत्म विश्वास, आत्मग्लानि, नये मूल्यों की खोज, पुराने मूल्यों का बोध, विद्रोह, आक्रोश आरक्षित भाव, विसंगति, मोह भंग, विघटन, विकृति, खण्डित होने की अनुभूति करने, इससे उबरने की इस प्रक्रिया से मूल्यहीनता की गंध तो आ सकती है लेकिन मूल्य मूढ़ता की नहीं। आधुनिकता जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। वर्तमान समय में आधुनिकता जीवन की संस्कृति और सभ्यता का हिस्सा बन गया है।

उपन्यासों के प्रकारों को उनकी संरचना बनावट व शिल्प के आधार पर सुनिश्चित किया जा सकता है।

घटना प्रधान उपन्यास

इस प्रकार के उपन्यासों में घटनाओं का बाहुल्य रहता है। घटना से तात्पर्य है, कार्य का होना। यह ऐसा कार्य है, जिसके कर्ता के चारित्रिक कारणों का उल्लेख नहीं किया जा सकता। ऐसे प्रायः हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास है जैसे 'तिलस्मी' 'जासूसी' आदि रहस्य प्रधान उपन्यास है इनकी कथा को प्रस्तुत करने के लिए किस्सागोई की शैली का प्रयोग होता है।

नाटकीय उपन्यास

इसमें पात्रों का चयन घटनाओं के जन्म का कारण बनता है, और घटनाओं से पात्रों का चरित्र उत्तरोत्तर खुलता चला जाता है। हिन्दी उपन्यास को घटना प्रधानता से मुक्त कर प्रेमचन्द्र ने नाटकीय उपन्यास का विकास किया। नाटकीय उपन्यास का शिल्प अधिक तर्क सम्भव, सुविधा गम्य तथा रोचक होने के कारण अधिकतर उपन्यासकारों द्वारा अपनाया जाता है। इन्हें सामाजिक उपन्यास भी कहा जाता है। नाटकीय व सामाजिक उपन्यास जब किसी अंचल विशेष के जीवन पर केन्द्रित होता है। तो उसे आंचलिक उपन्यास कहते हैं। आंचलिक उपन्यासों की भी अपनी लोकप्रियता रही है। इन उपन्यासों ने समाज को सही प्रेरणा दी है।

चरित्र प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास

चरित्र प्रधान उपन्यास घटना–प्रधानता व घटना चरित्र के समन्वय को न अपनाकर पात्रों के मानसिक पक्ष का ही चित्रण करता है। इस प्रकार उपन्यासों का उद्‌भव हिन्दी में जैनेन्द कुमार तथा अज्ञेय के हाथों हुआ इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों जैसे, संन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित, जिप्सी, आदि में

कथा प्रस्तुत करने के लिए चरित्र प्रधान उपन्यास का शिल्प न अपनाकर नाटकीय उपन्यास का शिल्प अपनाया है अर्थात वे कथा प्रस्तुत करते समय पात्रों के चरित्र घटनाओं के परस्पर घात प्रतिघात का क्रम बनाये रखते हैं। केवल पात्रों की मनोदशा को जैनेन्द्र व अज्ञेय की भाँति चित्रण करने में संलग्न नहीं करते है, तात्पर्य है, इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों का विषय मनौवैज्ञानिक है किन्तु उनका शिल्प नाटकीय हैं।

इस प्रकार शिल्प की दृष्टि से तीन प्रकार के उपन्यास घटना, प्रधान, नाटकीय तथा चरित्र प्रधान आगे चलकर नाटकीय उपन्यास के विषय के आधार पर तीन प्रमुख प्रकार हुए, सामाजिक, आंचलिक, ऐतिहासिक, बहुत से विद्वान वर्ण्य विषय के आधार पर राजनीतिक, समाजवादी, व्यक्तित्व वादी एवं समाजवाद, दर्शन प्रधान जैसे प्रकार से उपन्यासों का वर्गीकरण किया है। नाटकीय उपन्यासों का शिल्प मूल होता हैं, और सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत उक्त सभी विचारधाराएँ समाविष्ट हो जाती है।

ऐतिहासिक उपन्यास

इतिहास मानव जीवन परम्परा के अध्ययन और स्पष्टीकरण में सहायक है। इसके विकास के अन्तर्गत विगत और वर्तमान की पारस्पारिक क्रिया परिलक्षित होती है, इतिहास का अध्ययन निरन्तर गतिशील है और पुर्नविचार की सम्भावना निहित रहती हैं। समाज और राष्ट्र का अध्ययन हैं। व्यक्ति का महत्व उसकी दृष्टि के केवल एक कण के रूप में हैं। व्यक्ति जब सामाजिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता हैं, तभी केवल इतना ही, इतिहास को स्वतन्त्र रूप से ग्राह्य है। आज का वर्तमान कल का इतिहास बन जाता है इतिहास में रोचकता और तथ्यपरकता स्पष्ट नजर आती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी रचना में इन सभी प्रवृत्तियों को सहज भाव से ग्रहण करता है, अपनी रूचि और प्रतिभा के अनुसार उनका उपयोग करता है। इतिहास, मुख्य रूप से उसके लिए रस सृष्टि का अचूक साधन है, या उसके द्वारा पाठक के चित्त को एकाग्र कर लेता हैं। साथ ही वह इतिहास के आश्रय द्वारा अपने वृत्त तथा कथ्य की प्रमाणिकता प्रदान करता है, और रचना को भरपूर ऐतिहासिक रंग देकर उसे वर्तमान के लिए अधिकाधिक ग्राह्य बनाता है, तथा कथ्य को युग विशेष की परिधि से उठाकर सार्वकालिक मानवीय सत्य का रूप देने का प्रयत्न करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक तथ्यों का अध्ययन उसकी कला का सद्राण बनता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार प्रमुख रूप से सत्यकेतु विद्यालंकारका 'चाणक्य' वृन्दावन लाल वर्मा के, 'झाँसी की रानी' 'अहिल्याबाई' उपन्यास तथा अमृतलाल नागर का 'शतरंज के मोहरे' भी उल्लेखनीय है।

4. शिव प्रसाद सिंह का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उनके उपन्यासों का परिचय

शिव प्रसाद सिंह का व्यक्तित्व

प्रख्यात कथाकार और विचारक डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त सन् 1928 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के जलालपुरा (जमानियाँ) ग्राम के एक सम्भ्रन्त कृषक परिवार में हुआ था। जलालपुर ग्राम कहने को वाराणसी जनपद में है, परन्तु वह गाजीपुर जनपद की सीमा से एकदम लगा हुआ है, और पड़ौसी प्रसिद्ध कस्बा जमानियाँ गाजीपुर जिले में पड़ता है। "कालात् क्रिया विभाज्यतें आकाशत्कर्ष भूतयः"

भर्तृहरि के इस कथन के अनुसार क्रियाशील जीवन का आधार काल एवं सिद्ध वस्तु का आश्रय स्थान होता है। इसी को हम व्यक्तित्व विकास में कालकृत एवं स्थानकृत उपलब्धि कह सकते हैं। जमानियाँ क्षेत्र के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के क्षोम एवं विद्रोह से भरे हुए परिवेश के कारण यह कहा जा सकता है कि डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व में भी काल एवं स्थान का योगदान है, अर्थात न तो वे किसी अमीर पिता की सन्तान ही है न परिवार से किसी प्रकार का साहित्यिक आध्यात्मिक, कलात्मक और काव्यात्मक संस्कार भी उन्हें दाय के रूप में मिला, फिर भी पिता श्री चन्द्रिका प्रसाद सिंह और माता श्रीमती कुमारी देवी ने परम्परागत संस्कार शील संयुक्त हिन्दू परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति ऐसी अवश्य थी, जिससे बालक शिवप्रसाद सिंह का अपने प्रारम्भिक जीवन में किसी बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा तो भी परिवार के टूटने के साथ ही शिक्षा में निरंतर आर्थिक बाँधायें आती रही। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व में स्पष्टता और गम्भीरता स्पष्ट रूप से झलकती थी उनका जीवन उच्चकोटि का था।

" शैक्षणिक प्रगति के समय आर्थिक बाधायें आती रही इन्टर से एम0ए0 करने के बीच कई बार पढ़ाई छूटते छूटते बची आपको चन्देल वाराहों ने अपनी कीर्ति का ध्वजा गाड़ने वाले बाबू शिवटहल सिंह के पौत्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनके पास तीन–तीन मौजों में छावनियाँ और जिनकी खूंटी पर चालीस बैल और दर्जनों गाय, भैंस बंधी रहती थीं।"......[27]

बालक शिवप्रसाद सिंह की शिक्षा दीक्षा का प्रारम्भ जलालपुर पोस्ट जमानियां गाजीपुर की प्राईमारी पाठशाला में हुआ और मिडिल स्कूल की परीक्षा (बरहनी) के मिडिल स्कूल में 1942 में उत्त्तीण की थी, बचपन से ही वह कुशाग्र बुद्धि के दिखाई देते रहे और अध्ययन में आपकी विशेष रूचि रहीं। परिणामतः इन्होंने 1947 यू0पी0 बोर्ड की हाईस्कूल परीक्षा गणित, बीजगणित, संस्कृत और इतिहास में विशेष योग्यता के साथ प्रथम श्रेणी में तथा 1949 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा सुप्रसिद्ध शिक्षण संस्था उदय प्रताप कालेज वाराणसी से संस्कृत एवं तर्कशास्त्र में विशेष योग्यता के साथ प्रथम श्रेणी में उत्त्तीण की, इसी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी0ए0 कक्षा मे प्रवेश लिया। यहाँ इनकी प्रतिभा एवं लग्न से प्रभावित होकर तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री केशव प्रसाद मिश्र ने इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। मेहनती एवं कर्तव्यनिष्ठ थे, इन्होंने यहीं से साहित्य के प्रति अनुराग और अभिरूचि में वृद्धि प्राप्त की, यद्यपि 1951 में बी0ए0 की परीक्षा में द्वितीय श्रेणी प्राप्त हो सकी।

फिर हिन्दी साहित्य और दर्शनशास्त्र में प्रतिष्ठा के साथ परीक्षार्थियों की योग्यता क्रम सूची में इनका पाँचवा स्थान रहा। 1951 में हिन्दी साहित्य विषय लेकर एम0ए0 में प्रवेश लिया और 1953 में परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के साथ ही योग्यता क्रम में प्रथम स्थान पाकर शीर्षस्थ भी रहें, तत्पश्चात विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विशेष छात्रवृत्ति प्राप्त की, 1957 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

से पीएच0डी0 की उपाधि "विद्यापति और अवहट्ट भाषा" में लघु प्रबन्ध लिखकर प्रशंसा अर्जित की।

शिव प्रसाद सिंह कुशाग्र बुद्धि और तेजस्वी होने के कारण 1956 में आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त कर लिया गया। 1967 में रीडर के पद को अलंकृत कर रहे थे। आप प्रोफेसर और अध्यापक के रूप में भी पर्याप्त सफल रहें। विद्यार्थियों में आप लोकप्रिय थे और वे आदर के साथ सम्मान पूर्वक आपके व्यापक एवं गम्भीर अध्ययन, वाग्मिता तथा स्पष्ट एवं सरल प्रस्तुतीकरण के प्रशंसक थे। उनके पांडित्य और गम्भीरता को व्यक्तित्व का प्रभाव स्नातक, स्नातकोत्तर एवं शोध छात्र एवं छात्राओं पर पड़ता था। वह एक योग्य शोध निर्देशक के रूप में जाने जाते थे, उन्होंने शोध निर्देशक के रूप में एक विशेष ख्याति अर्जित की थी।

उनके अधीन शोधार्थियों की भीड़ लगी रहती थीं, सभी शोध छात्र विभिन्न प्रकार की सलाह और अपनी जिज्ञासाओं की प्रवृत्ति को स्पष्टीकरण करने के लिए आते थे, व्यापक अध्ययन, उदार व्यक्तित्व एवं सहयोगी प्रवृत्ति के कारण दूर–दूर से शिक्षा विभाग से जुड़े हुये लोग मिलते थे। उनके अनुसार शिक्षक और विद्यार्थी का सम्बन्ध शीत के ठिठुरते व्यक्ति, प्रज्वलित अग्नि से सम्बन्ध जैसा हैं।

"अग्नि के बिल्कुल समीप जाने में जल जाने का खतरा है, तो आवश्यकता से अधिक दूरी रखने पर अप्रभावित रह जाने की निरर्थकता है।"......[28]

समृद्ध जमींदार बाबू शिवटहल सिंह के पौत्र और चन्द्रिका प्रसाद सिंह के सुपुत्र डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के दो भाई थे, इनके अनुज का नाम शंभू प्रसाद सिंह जो कि गाँव में खेती बाड़ी का काम देखते थे। माँ श्रीमती कुमारी देवी गम्भीर प्रशान्त और

ग्रामीण संस्कृति की धनी थी, सनातन नारी परम्परा की स्नेहशील ममता और संस्कार की मूर्ति थी। इनमें अभिजात कुल बधू के साथ उत्तरदायित्व बोध भी था।

"शिव प्रसाद सिंह जी के व्यक्तित्व पर पिता से अधिक माँ की छाप और छाया भी है, इनके उपन्यास और कहानियों में अनेक नारी चरित्रों में भी इनकी झलक आसानी से देखी जा सकती है।"........[29]

पत्नी के रूप में श्रीमती धर्मा को पाकर निश्चय ही शिवप्रसाद जी सौभाग्यशाली थे। आप न तो अधिक पढ़ी लिखी थी, और न ही साहित्य या किसी अन्य ललित कला के प्रति आपको विशेष रूचि थी। आधुनिकता के चकाचौंध से दूर नागरिकता की कृत्रिमता से बेखबर, सहजता, सरलता और सादगी में लिपटी कर्मठता की देवी श्रीमती धर्मा सचमुच लेखक के लिए एक वरदान है तथा उनके एक पुत्र नरेन्द्र सिंह है, ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय में रिसर्च साइंटिस्ट है तथा निवास स्थान गुरूधाम कालौनी वाराणसी में स्थित है।

"पक्का गेहूंआ रंग, भरा हुआ क्लीन शेव चेहरा, तीखी नाक, बड़ी–बड़ी आँखें औसत कद के ऐसे व्यक्ति को दूर से देखकर ही पहचाना जा सकता था। शिव प्रसाद सिंह जी के नायक की परिकल्पना उनके व्यक्तित्व में गम्भीरता के साथ उदान्त और ललित का मोह भी स्पष्ट झलकता था।"........[30]

संकेत दिखलाई पड़ते थे आपके चेहरे के दो प्रमुख आकर्षण है जो पहली नजर में ही मन को बरबस बाँध लेते थे, तथा दूसरी उनकी भृकुटि की कमनीय वक्रता, जिसे देखते ही दोहावली, का दोहा स्तरण हो जाता है।

मुकुर निरखि मुख राम भ्रू गनत गुनहिदै दोष।
तुलसी से सठ सेवकन्हि, लखि जनि परहिं सरोष।।........[31]

गुरू गम्भीर स्वभाव और कम बातें करना आपके व्यक्तित्व की विशेषताएँ है, कि लोगों की यह आम शिकायत हैं, अर्न्तमुखी व्यक्तित्व के आदमी थे सामाजिक कम है।

"मैं अपने से किसी पर खुलता नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव है जब तक कोई बातचीत शुरू नहीं करता मैं चुप ही रहता हूँ शायद इसलिए लोग मुझे गैर मिलनसार मानतें हैं।".......32

वह एकान्तप्रिय, भीड़ और समूह को न पसंद करने वाले तथा आत्मकेन्द्रित स्वभाव के थे, वह अपने अध्यापकीय और साहित्य जीवन में इन्होंने एकान्तवास की सजा खूब झेली है। इनका समक्य अधिकतम् स्त्री व पुरूष कोई भी ऐसा बहुत घनिष्ट मित्र नहीं है, जिससे ये अपने मन की सारी बाते कह सके, मैं एकदम कटा हुआ आदमी हूँ। यह उनकी स्वीकारोक्ति है।

शिवप्रसाद जी का ऐसा स्वभाव था कि किसी भी आगुन्तक को बड़ी बड़ी आँखों से कुछ देर तक एकटक देखते रहते थे। बातचीत के समय भी कहीं सिलसिला खत्म होने पर ऐसी टकटकी लगाकर निर्निमेष दृष्टि से निहारने लगते, जैसे सामने वालों की आँखों में कुछ तलाश रहे हों, अनजान नव आगन्तुक को अटपटा भी लग सकता हैं और इससे एकदम सहम भी सकता है, अध्ययन के क्षेत्र में आप जितने गम्भीर है अध्यापन के क्षेत्र में उतने ही गम्भीर, 'मडमडिमापन' आपकों वहीं कतई पसन्द नहीं था। क्रोध आता तो था बहुत कम, लेकिन जब आता था तो बहुत सीमाओं को पार तक कर जाता था। सब मिलाकर एक संवेदन शील व्यक्तित्व ही उजागर होता है सहृदयता बाहर से दिखावटी भले ही न हो पर है अवश्य।

शिवप्रसाद जी के बाहरी व्यक्तित्व पर सादगी की छाप और इनके शरीर पर किसी ने ऐसी साज सज्जा नहीं देखी जिससे अमीरी अथवा प्रदर्शन की बू आती हो। धोती कुर्ता आपके प्रिय वस्त्र थे, परन्तु स्वच्छता और शुभ्रता के साथ संभ्रान्त सुरूचिपूर्णता इनके परिधान की अनिवार्यता थी। घर पर अधिकतर चारखाने की लुंगी और आधी बाँह की गंजी (बंडी) पहनते गले में रूद्राक्ष की माला और दाहिनी बाँह में ताबीज धारण करते थे। कभी कभी यह बनारसी पंडा जैसे दिखलाई पड़ते थे, परन्तु पंडो की धूर्तता पाखण्ड और पोंगा पंथी के खिलाफ इनके तेजोदीप्त प्रखर व्यक्ति में सरलता और सादगी के साथ प्रतिभा ओज और तेज का प्रस्फुटन ही नजर आता था उनके निवास स्थान पर पहुंचने पर सादगी सरलता और सह्रदयता के संकेत स्पष्ट दिखलाई पड़ते थे, उनके जीवन में त्याग, सच्चाई और विवेक प्रमुख गुण थे। उन्हें एकान्त प्रियता अधिक पसन्द थी।

डॉ० शिव प्रसाद सिंह का पढ़ने लिखने उठने बैठने का एक ही कमरा था इसमें नाश्ता गपशप सब चलता था। कमरे में एक बड़ी सी चौकी थी आधी किताबों से भरी रहती थी आधी में स्याही के कभी–कभी कत्थे के दाग लगी चादर पड़ी रहती थीं। यही साहित्यकार के सृजन करने का संसार था। कभी न फूलों के गुलदस्ते सजाए, न चिकने कागज की खोज की, न खुशबू के लिए कोई सरंजाम किया, हां खालिस गर्मी, बरसात और तेज सर्दी के लिये हमेशा कमरा 'स्वागतम' की प्रतीक्षा करता रहता था। इसी कमरे में छात्र, अतिथि मिलने के लिए आते तथा प्रेमी पाठक भी आते थे। इस कमरे में सहज भाव से गले में माला डाले लुंगी और बंडी में बैठे डॉ० साहब नव आगुन्तक से मुलाकात करते थे, जीवन में ग्रामीण परिवेश की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती थीं। साहित्य, सृजन, चिन्तन, अध्ययन से लेकर घर गृहस्थी के प्रबंध में हर प्रकार की बातें शोध एवं छात्राओं को निर्देश उसी कमरे में बैठकर दिया करते थे। उन्होंने उसी कमरे में बैठकर साहित्य साधना की तथा दूसरों को मार्ग दर्शन दिया वहां लगभग आधे दर्जन फाउन्टेन पेनों से भरा डिब्बा, रबर पेन्सिलें ब्लैड आदि के पात्र, मोटी, मोटी पुस्तकें समाचार पत्र फाइलें पाण्डुलिपियाँ

पत्रों के बण्डल सभी हाथ की पहुंच के अन्तर्गत थे। उसी कमरे में साहित्यिक संसार समाया हुआ था, चौकी पर पड़ा कालीन इस बात का साक्षी है, कि लेखक पुराने जमींदार परिवार से आया है, तथा उसका संस्कार कहीं न कहीं अवशिष्ट है चौकी के पश्चिम और दक्षिण में खुलने वाली खिड़कियां प्रायः बन्द रहती है बाहर की तरफ कई प्रकार के फूल लगे हुए हैं जो उनके मकान को सुशोभित औंर अलंकृत करते है कमरे की विभिन्न रैकों में किताबें भरी हुई है। यहीं बैठकर सार्म, कामू, और काफ्का को पढ़ा जाता था, इन्हीं आध्यात्मिक प्रभावों से पूर्ण सविधि पूजा कोणों के बीच विद्रोह रचा जाता था, वहीं भारतीय परिवेश का विद्रोह।

शिव प्रसाद सिंह जी के कमरे में कई प्रकार के चित्र लगे हुए है जिनमें श्री अरविन्द और माता जी का छोटा रंगीन चित्र लगा है, एक बारात की शोभा का लोक पर आधारित दीवार पर चित्र लगा है, उसके ठीक सामने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का चित्र टंगा हुआ है। इसके अलावा लोहिया, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का भी चित्र है, जो भी ड्राइंग रूप की भव्यता और आकर्षण का नवीनीकरण करते हैं, निराला और द्विवेदीजी शिवप्रसाद सिंह के आदर्श थे।

"चित्रों से लगाव होना मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विधान है। चित्र एक संदेश देते है। रूसी कहानीकार चेरव का रंगीन तेल चित्र भी लगा हैं।"........[33]

आपकी अभिरूचि में सर्वप्रथम या पुस्तकें पढ़ना पुस्तकालय में बैठकर चिन्तन करना तथा नये व पुराने किसी भी लेखक का साहित्य पढ़कर स्वाध्याय का विषय बनाना पाश्चात्य और आधुनिक दोनों प्रकार के साहित्य और साहित्यकारों के प्रति आस्था और अनुराग रखना उनकी विशेषता थी।

आपकी साहित्यिक समीक्षा में इनके प्रौढ़ सम्यक् एवं विस्तृत अध्ययन का प्रतिफल विद्यमान था। साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि विषयों में भी शिवप्रसाद जी की गहरी अभिरूचि रहीं। आध्यात्म एवं दर्शन में गहरा लगाव होने के कारण श्री अरविन्द एवं आचार्य रजनीश और अस्तित्ववाद की पुस्तकों का गहरा अध्ययन किया तथा उत्तर योगी श्री अरविन्द एवं आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद जैसे उच्च स्तरीय पुस्तकों का प्रणयन भी किया था। इन्हें लिखने पढ़ने के लिए सन्नाटा और एकान्त चाहिए कभी–कभी तो सारी रात अध्ययन करते और लिखते गुजर जाती।

"अलग अलग वैतरणी" के लेखन के समय कई कई बार लिखने में ही सारी रात गुजार देते थे, इसी का परिणाम था सुबह देर तक सोना उनकी आदत सी बन चुकी थी। जो साहित्यिक परम्परा के मेल में भले ही हो, अपने सुप्रभात के लिए सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक नगरी काशी की परम्परा के अनुकूल नहीं है।

अध्ययन के अलावा गंगा के किनारे टहलना, घाटों पर चुपचाप बैठना, बागवानी करना और भ्रमण करना ये उनके प्रमुख शौक थे। बनारसी ढ़ंग से पान खाने का शौक ए–आदत थी, बैठक में तख्त पर बैठते थे, और विशुद्ध बनारसी रंग पान रखकर इत्मीनान से बैठते थे।

राजनीति क्षेत्र में शिवप्रसाद सिंह का लगाव लोहिया जी से था पर साहित्य से जुड़ जाने के कारण कहानी, निबन्ध और उपन्यासों से राजनीति की कुंठित विचारधाराओं के मुखौटों को उतारने में अपनी सार्थकता मानते थे।

वह राजनीति पर विभिन्न प्रकार की छींटाकसी करके अपनी प्रखरता और पांडित्य का प्रतिनिधित्व करते थे। जो साहित्यिक वाक्यांश के मेल में कही हो अपने सुभ्रान्त के लिए प्रसिद्ध नगरी काशी की परम्परा के अनुकूल नहीं है। आपको देखने के

लिए कैसा वातावरण पसन्द है। इसके उत्तर में ये कहते थे कि आपका मतलब अगर बाहरी वातावरण से है यानि झील, पहाड़, नदी, समुद्र के निकट आदि तो वह कभी हुआ नहीं। यदि वातावरण का मतलब कोई ऐसी चीज होना है जो समान आदमी के पास नहीं होता तो कहना हो कि वह वातावरण मुझे नहीं मिला।

बस एक वातावरण है फूल की तरह खिलखिलाते, लड़ते झगड़ते उदास और गीत गाते हजारों विद्यार्थियों के बीच रहने का सुख दर्शन और चिन्तन के क्षेत्र में भी श्री अरविन्द और अस्तित्ववाद ने इन्हें प्रभावित किया था। अरविन्द दर्शन के आकर्षण को स्वीकारते हुये कहते है–" मैं विश्वास करता हूँ कि, मानव की यात्रा निरन्तर उर्ध्वगामी रही हैं। अरविन्द ने मुझे एक ऐसे लोक का दर्शन कराया जिसमें एकान्तवाद का सार्थक सुझाव दिया। इसके पहले ये अस्तित्ववाद से बहुत प्रभावित थे, अरविन्द दर्शन को कभी मैने साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं देखा और न मैं किसी सम्प्रदाय का अंग हूँ मेरे लिए एक चिन्तक के रूप में संग्रणीय हैं।"......34

अस्तित्ववाद का प्रयोग उन्होंने अपने जीवन में व्यक्तिगत व सैद्धान्तिक दृष्टि से किया है। उनके जीवन का दृष्टिकोण अस्तित्ववाद और एकान्तवाद का प्रचार–प्रसार करना और जीवन में उसके महत्व को समझना। एकान्तवाद से जीवन में शान्ति मिलती है, अस्तित्ववाद भारतीय मन या चिन्तन के लिए जीवन में आवश्यक है। मृत्यु से वह डरता नहीं वह जीवन के संघर्षो की सच्चाई पर खरा उतरता है, अस्तित्ववाद के द्वारा मनुष्य ईश्वर और मानवीय रिश्तों का अवलोकन करता है।

वर्तमान जीवन में वैज्ञानिक अविष्कारों के द्वारा मनुष्य ने एकान्तवाद और अस्तित्ववाद के स्थान पर भौतिकवादिता को अपनाया है। भौतिकवाद के कारण मानवीय मूल्यों का अस्तित्व मिटा हैं। भौतिकवादी जीवन में मनुष्य अधिक विषय भोगी, विलासी तथा धन लोलुपता जैसी क्रियाओं में समाहित हो गया है। आज के

युग में अस्तित्ववाद की ओर देखता है तो भौतिकवाद से परे हो जाता है। भौतिकवाद जीवन में अधिकतर बनावटीपन और कृत्रिमता की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है।

शिव प्रसाद सिंह का कृतित्व

साहित्य के सन्दर्भ में प्रतिभा और अभ्यास का प्रश्न बहुत पुराना है। साहित्यकार की साहित्यक, प्रतिभा जन्मजात होती है, तथा लेखन का अभ्यास भी उसे योग्य बनाता है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह जी का कहना है कि प्रतिभा ही एक ऐसी शक्ति है, जो किसी न किसी अनुपात में मनुष्य मात्र को उपलब्ध होती है। वह कुछ लोगों के भीतर बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों और वातावरण के कारण लेखक अचानक प्रबुद्ध और सक्रिय हो जाती परन्तु मात्र प्रतिभा ही साहित्य रचना के लिए पर्याप्त नहीं है लेखक के लिए अनवरत श्रम की भी आवश्यकता हैं, तभी प्रतिभा की पूर्ण क्षमता का विकास हो सकता है, रचना करते वक्त उसके प्रति जो मोह उपजता है, उसे तोड़ते रहना चाहिए। राष्ट्र के उत्थान और पतन में साहित्य के योगदान परउनके विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं।

"साहित्यकार समाज को पतित होने से रोकता है वह अपनी क्षमता के अनुसार मरी कौमों को जीवित और सक्रिय बनाता है, समाज को पतित होने से रोकता है, अपने व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण कर परिवेश और समाज का दस्तावेज प्रस्तुत करता है।"......[35]

आधुनिक साहित्य में प्रतिबद्धता की बात प्रायः उठायी जाती है–

डॉ० बच्चन सिंह के शब्दों में "यदि अतीत के लेखन और नवलेखन में कोई विभाजन रेखा खीचीं जा सकती है, तो वह प्रतिबद्धता की होगीं।"......[36]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी प्रतिबद्धता और पक्षकर्ता को अलग करते हुए मानते है कि प्रतिबद्धता का प्रश्नउनके लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं हो जो किसी निश्चित पार्टी, राजनीति या व्यवस्था से प्रतिबद्ध है, प्रतिबद्धता का प्रश्न केवल उन लेखकों के लिए है जो लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य में पूर्ण आस्था रखते है और मानव स्थिति से सम्बन्धित हर समस्या को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखना चाहते है। शिवप्रसाद सिंह ने प्रतिबद्धता को प्रत्येक लेखक के उत्तरदायित्व से विदीर्ण इस नये राष्ट्र का आत्मपरीक्षण मात्र मानते है और कहते है कि, ''बाहर से आक्रान्त और भीतर से विदर्प इस नये राष्ट्र को साहित्यकारों के लिए प्रतिबद्धता काप्रश्न आत्मविश्वास और आस्था का प्रश्न हैं यदि किसी देश का बुद्धिजीवी वर्ग ही समाज की समस्याओं से उदासीन होकर बैठा रहेगा तो फिर सामान्य जन के लिए रास्ता ही क्या होगा।''.....[37]

शिव प्रसाद सिंह मनुष्य के प्रतिबद्ध है उनकी कहानियों और उपन्यासों में व्यक्ति की संवेदना की बारीकी के साथ चित्रण और सजीव पात्रों की सृष्टि की गयी है। आज समाजिक प्रतिबद्धता का नाश और युगीन प्रासंगिकता की बातें बहुत सुनाई पड़ती है, पर समाजिकता प्रतिबद्धता केवल नारे की चीज नहीं होनी चाहिए।

''समाज के दलित, शोषित, पीड़ित वर्ग के प्रति सही दृष्टि जीवन से सीधे उद्भव होती है, वशर्ते आपकी दृष्टि मानव नियति को सही ढ़ंग से सहानुभूतिपूर्वक समझने में कतराती न हो''......[38]

नारी हर रूप में श्रेष्ठ होती हे जो खून को दूध में बदल सकती है। इसे प्रकृति ने श्रेष्ठ बनाया है। पर आज की हिन्दुस्तानी नारी शताब्दियों से अधंतमस् में इस तरह डूबी हुई है, कि वह अपनी शक्ति और साधना को भूल गई है। मैने अनपढ़ गँवार और अति सामान्य कहीं जाने वाली नारी का तेजोदीप्त देखा है, मैं नारी कमजोरियों

से वर्णकथा होने का पूरा प्रयत्न करता हूँ। मैं सिमोन द बोउवा के सेकेण्ड शैक्स का प्रसंसक रहा हूँ।

इसलिए नारी चित्रों के बारे में मुझे जितनी पाठकीय समझदारी मिली पुरूष चित्रों के विषय में नहीं। "नारी को अलग–अलग सत्ता मानकर नहीं समाज की क्रिया शक्ति मानकर उसके बारे में विचार करता हूँ।"......39

साहित्य में नारी का स्वरूप विषय पर लेखक ने अपने विचारों को व्यक्त कियाइनके अनुसार कोई चीज न अश्लीन होती है न अश्लील, या तो वह सहीं ढ़ंग से प्रस्तुत की गयी होती है, या गलत ढ़ंग से आज नारी केवल प्रदर्शन की वस्तु होके रह गयी है।

"वीमेन लिव" जैसे आन्दोलन निरर्थक हो के रह गये हैं इस भौतिकवादी लिव में नारी थी। "लाइट हाउस" और "ब्लू लाइट" का आनन्द लेने लगी है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने विदेशी ज्ञान–विज्ञान और आधुनिक विचारधाराओं से सम्बन्ध जोड़कर साहित्यिक रचनाओं का निर्माण किया, उनमें ग्राम कथा आंचलिक कथा, उपन्यास, कहानियों तथा बहुत संस्मरण को भी लिखकर समाज में श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की।

डॉ० शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों का परिचय

1. अलग–अलग वैतरणी'

शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण जीवन का चित्रण किया हैं प्रेमचन्द्र के बाद ग्रामीण जीवन का चित्रण करने वाले सफल कथाकारों और उपन्यासकारों में शिव प्रसाद सिंह अगली पंक्ति में आते है। अपने इस वृहद उपन्यास में उत्तर प्रदेश के

करैता गाँव को समस्त भारतीय गाँवों के प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण करके अत्यन्त यथार्थवादी एवं विचारोंत्तेजक चित्रण प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता आई जमींदारी टूटी। करैता के किसानों को लगा कि दिन फिरेंगे। मगर क्या हुआ? अलग अलग वैतरणी। अलग अलग नर्क। जिसे निर्मित हैं, भूतपूर्व जमींदारी ने धर्म तथा समाज के पुराने ठेकेदारों ने समाज भ्रष्ट सरकारी ओहदेदारों ने और वैतरणी में जूझ और छटपटा रही है गाँव की प्रगति शील नई पीढ़ी।

"अलग-अलग वैतरणी" गाँव के पटवारी मुंशी हरनारायण लाला कहा करते कि पतिला नाचिरागी मौजा हैं। अलग-अलग वैतरणी में शिव प्रसाद सिंह ने जमींदारी प्रथा को उजागर किया है तथा गरीब समुदाय गांव की जमींदारी प्रथा के द्वारा आजादी के पूर्व पिस रहा था। जमींदारों और धर्म के ठेकेदारों ने पूरे समाज को खोखला कर दिया उनके अत्याचारों का वर्णन मुंशी प्रेमचन्द्र जी ने अपने उपन्यासों के द्वारा आजादी के पूर्व भारत का चित्रण किया।

शिव प्रसाद सिंह ने "अलग अलग वैतरणी" में समाज की नारकीय स्थिति का चित्रण का अभिव्यक्ति की। अलग अलग वैतारणी उपन्यास का प्रकाशन सन् 1967 ई० में हुआ था। अलग अलग वैतरणी में सामाजिक ढ़ाँचा जो अभिजात वर्ग द्वारा शोषित किया गया तथा बड़े वर्ग ने छोटी वर्ग और सामान्य लोगों का शोषण किया।

"अलग-अलग वैतरणी" में लोक संस्कृति और लोक भाषा का चित्रण किया है, उन्होंने, आत्म विस्तार किया, इसी तरह से भगवती चरण वर्मा क`उपन्यासों में जिसमें से "भूले बिसरे चित्र" श्री उपेन्द्र नाथ अश्क के एकांकी नाटक किसकी बात में अवधी की माधुरी का बिखरा वैभव मिलता है, इसी प्रकार के उपन्यास "आधा गाँव" की भाषा भोजपुरी उर्दू, ही मुख्यतः है जिस प्रकार से अलग-अलग वैतरणी में खड़ी बोली को सुधड़ भोजपुरिया मोड़ दिया गया है उसे बनारसीपन

की चासनी में ऐसे ढाला गया है कि मन पर उसकी मिठास बैठती जाती है इस ढलान की दशा स्वाभाविक है, उन्होंने ग्राम्य संस्कृति और सभ्यता का वर्णन किया हैं ग्राम जीवन की महत्व पूर्ण इकाई होती है।

2. नीला चाँद

नीला चाँद उपन्यास शिवप्रसाद सिंह का द्वितीय उपन्यास का संस्करण हैं, इसी उपन्यास के कारण उनको तीन प्रख्यात पुरस्कार सम्मान मिले 1991 में "साहित्य अकादमी" पुरस्कार, 1992 में "शारदा सम्मान" और 1993 में "व्यास सम्मान" प्राप्त हुये, 'नीला चाँद' के द्वारा उन्होंने सारे समाज को संदेश दिया, रोटी का गोल टुकड़ा चाहिए अवश्य में व जीने के लिए पर क्या पेट भरने पर ऐसा जीना मानव की अभीप्सा को पूरी तरह बाँध सकेगा? सर्वदा के लिए नहीं, रोटी के अलावा मानव का मन और मांगेगा कौन देगा वह संदेश? कौन दिखायेगा अमावस्या की रात में उपेक्षित पड़े नीला चाँद का जहर मनुष्य को सहज प्राप्त है? सिर्फ नीला चाँद जो न तो धर्मोपदेश है न ही अखबार का एक पन्ना और कुछ खोजें नीला चाँद के द्वारा।

"नीला चाँद" आक्रोश पर लिखा हुआ उपन्यास है, इस उपन्यास में शिवप्रसाद सिंह ने ऐतिहासिक घटनाओं को भी लिया हैं, जिनका सम्बन्ध कलचुरी से हैं, जिसने देव वर्मा चन्देल की हत्या की तथा "जुझौती" का वर्णन किया हैं। जिसे वर्तमान में 'बुन्देलखण्ड' कहा जाता हैं। गाहड़वाल के पिता गंगेदत्त के अरबों और आरोहियों को बताया, लक्ष्मीकर्ण ने अपने पिता की तरह गाहड़वालों को मामूली सामन्त मानकार हमेशा दबाये रखा उस समय की काशी का वर्णन है, यानि ईस्वी 1060 की।

"नीला चाँद" के द्वारा शिवप्रसाद सिंह ने विभिन्न काशी के व्यवसायी जातियों के बारे में वर्णन किया, जैसे कुम्हार, नापित, बढ़ई, सुनार और मणिहारों तथा

उन्होंने मध्यकालीन काशी की स्थिति को खोलकर आँखों के सामने उजागर किया इसके अतिरिक्त गंगा की स्थिति जिसमें कि आदमियों और पशुओं के शव सड़ते हैं।

"नीला चाँद" काशी की सामाजिकता, एवं व्यापारिकता पर विचार प्रस्तुत किये, उन्होंने इस उपन्यास में जीवन व्यापक मूल्यों को अर्थ युग से जोड़कर काशी की व्यापारिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला। नीला चाँद में विभिन्न गुण दोष की विवेचना की। उन्होंने तीन पक्षों को उभारा– अ. सैद्धान्तिक पक्ष ब. व्यापारिक पक्ष स. ऐतिहासिक पक्ष।

उन्होंने ऊपरी विचारों में काशी के ऐतिहासिक तत्वों को अलंकरण करके एक समन्वय कर आपस में जोड़ा, सम्प्रदायवाद और धार्मिक उन्माद का भी स्पष्टीकरण किया हैं, तार्किकता एवं अभिव्यंजना के सौष्ठव पर उसकी प्रमाणिकता को रखा।

३. मंजूशिमा

"मंजूशिमा" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का तीसरा संस्करण है, असम्भव को सम्भव करने के लिए शिव प्रसाद सिंह ने इस उपन्यास के द्वारा पिता और पुत्री की भावनाओं को बताया है। पिता अपनी पुत्री को मृत्यु मुख से बचाने के लिए पिता की करूणा, पुत्री के अदम्य साहस को व्यक्त किया।

शिव प्रसाद सिंह ने मन और मस्तिष्क को "मंजूशिमा" के द्वारा झकझोर देने वाले विचारों को व्यक्त किया है। आज का समाज अपने सभी अच्छे और बुरे रूपों में।

"हमसे अच्छी तो फरिश्तों की बसर क्या होगी
गम की रोनक जो इधर हैं उधर क्या होंगी।
जो पूछते है वे कि हुये क्यों जो खिले थे गुंचे
खिल चुके है भला उनकी खबर क्या होगी।"

'मंजूशिमा' में पिता और पुत्री के धर्म का चित्रण किया है। पिता का कर्तव्य है कि पुत्री को धर्म और कर्म के बारे में वास्तविक ज्ञान देना। कर्म के द्वारा जीवन के सही मूल्यों का निर्माण होता है, सुख और दुख का संगम है, दुख क बाद जो सुख का रस होता है वह तो अद्‌भुत हो जाता है। संतृप्त व्यक्ति के लिए धूप के बाद तरू की छाया कितनी सुखकारी लगती है।

"दुख ही जीवन कथा रही क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं,
हो इसी कर्म पर वज्रपात यदि धर्म रहे नत सदा माथ,
इस पथ पर मेरे कार्य सकल हो भ्रष्ट शीत के शत दल,
कन्ये गत कर्मो का अपर्णकर करता मैं तेरा तर्पण।"

जीवन में विरलो के भाग्यों में दुख से छिटककर सुख की यूटोपिका नसीब होती है, जीवन में कभी सुख आता है, तो कभी दुःख। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे महान साहित्यकारों की विधाओं के द्वारा सुख और दुःख का परिचय कराया दुःख जीवन से अधिक होता है, और सुख कम दुःख से ही जीवन में त्याग और श्रद्धा पैदा होती हैं

"वेदना से कहा कि साथ छोड़ दो तुम मेरा,
में हँसी और बोली ऐसा इरादा नहीं मेरा?
सच यह कितनी खुशी भरी संगिनी है,
ममता से भरी अनमोल रागिनी है।"

"मंजूशिमा" डॉ0 सिंह की एक अनुपम कृति है जिसमें कि पिता ने अपनी पुत्री के लिए उत्तरदायित्व और समाजिक पराकाष्ठा के मापदण्डों को ऊपर उठाया जिसमें कि पुत्री के प्रति सार्थकता और मानवीयता को रेखांकित किया है, आधुनिक समाज के परिवार के पिताओं को मंजूशिमा से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जीवन में पिता और पुत्री के क्या रिश्ते है एवं क्या उत्तरदायित्व है, डॉ0 सिंह ने एक पिता के पुत्री के लिए है मार्मिक प्रवृत्ति और सहानुभूति होनी चाहिए क्योंकि उसमें ही उनका सम्मान और गौरव है।

समाज में गरीबी और अमीरी दोनों ही है, परन्तु रिश्ते सर्वोपरि हैं, रिश्तों में संवेदनायें, आकांक्षाये एवं अनुभूतियाँ छिपी रहती हैं जो पारिवारिक एवे नैतिक उत्थान के लिए जिम्मेदार है। प्रत्येक पिता अपनी पुत्री के लिये नई–नई जिज्ञासाएं एवं मार्मिक स्मृतियों का मंगरा होता है, जो मानव चैतन्य एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करता हैं। डॉ0 सिंह ने अपनी बेटी के लिए जो त्याग और फर्ज निभाया अन्य पिताओं को भी इस उपन्यास से सीख लेनी चाहिए कि पिता और पुत्री में किस प्रकार का सामंजस्य होना चाहिए जो समाज के लिए एक उदाहरण बन जाये। उनके विचारों में मौलिकता एवं तटस्थता के बीज झलकते हैं। "मंजूशिमा" उपन्यास मानव–मानव के बीच तथा पिता और पुत्री के बीच, सहानुभूति पूर्ण रिश्तों को जोड़ता हैं, 'मंजूशिमा' जीवन की कटु सत्य है।

जिसमें विचारों में स्वतन्त्रता चेतनता एवं व्यापकता को समता के सिद्धान्तों पर केन्द्रीभूत किया हैं।

4. शैलूष

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के जीवन की सबसे विवादास्पद कृति और फलितः सर्वाधिक मानसिक तनाव भी उसी ने दिया, इस उपन्यास में लोक संस्कृति की

सशक्त झलक स्पष्ट दिखलाई पड़ती हें। खानाबदोश नटों के जीवन के संघर्षो को लेखक ने 'परत दर परत उखेर कर' "शैलूष" में संजोया है। यायावरी जीवन में घटने वाली तमाम बाहरी शक्तियों के दबाव, अत्याचार, अन्याय और छल कपट को लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवित कर दिया है।

कबीलाई जीवन पर पहला हिन्दी उपन्यास परिवर्तन की दहलीज पर कथा क्रम को ले जाता है और ऊँच नीच की ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक मान्यतायें शैलूष में कदम–कदम पर दिखलाई पड़ती है। कबीलाई जीवन का एक सजीव दस्तावेज हैं, "शैलूष" दलित वर्ग के आदिवासी नटों पर आधारित शिवप्रसाद सिंह ने प्राचीन नटों की गतिविधियाँ की सारगर्भिता और मान्यताओं को बताया।

नटों का जीवन हमेशा चुनौती पूर्ण रहा, उन्होंने जीवन में कभी निराशा और हतोउत्साहिकता नहीं देखी। कबीलाई जीवन हमारी संस्कृति के हिस्से हैं, नट आज भी प्राचीन परम्पराओं से जुड़े हैं।

"शैलूष" में रामदास काका, गुरू शिवप्रसाद प्रमुख पात्र है

"काया गढ़ भीतर भक्ति जगी है, श्वेत ध्वजा फुरहाई
छमा गरीबी सन्त, सिपाही नाम खजाना भारी
काया के दफ्तर मान कर शीतल, ज्ञान के तख्त बिछाई
शिव नारायण आये जगत में सबसे कहा समुझाई,
वरणों सन्त समाज जिनकी ज्ञान कचहरी"

5. औरत

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का प्राचीन और सम–सामयिक साहित्य से गहरा जुड़ाव है, इस उपन्यास में उन्होंने विषमताओं जातिवाद और सामन्ती सोच के ग्रस्त समाज

पर बहुत सफलता से चोट की है, इस उपन्यास की भाषा में रवानी और ताजगी है, उपन्यास के कथानक में देश की मिट्‌टी की गहराई तक जुड़ाव है, सम्पन्न और ऊँची जातियों के लोग गरीबों और दलितों की इज्जत आबरू से किस प्रकार खेलते है उन्होंने बेवाक चित्रण किया है, और शिवप्रसाद सिंह की एक सफल कृति है।

वैदिक साहित्य से वर्तमान युग तक नारी के जीवन में बहुत बदलाव आये। भारतीय वैदिक और उपनिषद काल में नारी के चरित्र व्यवहार के सम्बन्ध में कई प्रकार की मान्यतायें और किवदन्तियों को विभिन्न कवि लेखकों, दार्शनिको, उपन्यासकारों तथा धर्म शास्त्रियों ने नारी की गरिमा का प्रस्तुतीकरण किया।

नारी को समाज में शुरू से ही उपेक्षित दृष्टि से देखा उसके प्रति लोगों का दृष्टिकोण खण्डात्मक उपेक्षात्मक एवं नकारात्मक रहा। प्रेमचन्द्र जी ने अपने विभिन्न उपन्यासों में नारी पक्ष की दुर्बलताओं एवं अक्षमताओं का स्पष्टीकरण किया। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण अंचल की नारी की दिशा और व्यथा पर प्रकाश डाला, जिसमें कि उनके प्रतिदृष्टि बदले और समाज की दौड़ के साथ उनको भी नई दिशा मिल सकें। डॉ0 शिवप्रदसाद सिंह ने पिछड़ेपन को दूर करने का प्रयास किया परन्तु संस्कृति को नहीं तोड़ा क्योंकि संस्कृति और पिछड़ापन एक दूसरे के घनिष्ट है ग्रामीण और आधुनिक नारियों के विचारों में काफी विभिन्नतायें हैं, परन्तु ग्रामीण अंचल की नारियों में आज भी मर्यादा अनुशासन और प्राचीन रीति रिवाजों को मानती है। उनकी दृष्टि में प्राचीनता और नवीनता अलग अलग सोपानों पर केन्द्रीभूत है जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी भौतिकवाद के साथ बदली है, मूल्य भी बदले है, तथा सामाजिक रूचि और अभिरूचि के प्रति मानवीय दृष्टि कोण भी बदला।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने ''औरत'' और ''मंजूशिमा'' में वास्तविक रूप से नारी के प्रति सामाजिक पारिवारिक और नैतिक उत्तरदायित्वों को उभारा है तथा किस प्रकार से उनके प्रति सामाजिक और पारिवारिक चेतना को धारा के रूप में प्रवाहित करके उनके जीवन को गौरवान्वित किया जाये।

पारिवारिक और सामाजिक समस्यायें नारी के विकास में बाधक होती है, ''औरत'' में डॉ0 सिंह ने उसके प्रति अन्याय के प्रति आवाज उठायी तथा समाज में उसको हीनता की दृष्टि से न देखा जाये, वह पुरूष की पूरक हैं, जो परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में अहम भूमिका निभाती है, उसका सहयोग मूल्यांकन करने के योग्य है वह अपनी नीतियों और पराकाष्ठा के द्वारा सामाजिक ढाँचा का निर्माण करती है वह सृष्टि की जनक हैं।

आधुनिक युग में नारी का जीवन वैदिक युग की नारी से विल्कुल भिन्न हैं आज मशीनरी युग में भौतिक सुन्दरता की ओर प्रत्येक व्यक्ति पीछे भाग रहा है, जिससे कि सारा समाज सुन्दरता के सोपानों और सीढ़ियों पर केन्द्रीभूत हो रहा है, जिसकी सोच में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ और विसंगतियाँ है, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने समाज के कमजोर और दुर्बल पक्ष को उभारा है।

अंग्रेजी के नाटककार विलियम शेक्सपियर ने भी 'हेलमेट' नामक उपन्यास में औरत को कमजोर पात्र कहा, डॉ0 सिंह ने ''औरत'' और ''शैलूष'' नामक उपन्यास में ग्रामीण अंचल में रहने वाली महिलाओं के साथ दुश्चरित्रता का पर्दाफाश किया। वर्तमान में उसे प्रगतिशील होना चाहिए, तथा सम्मान की गम्भीर चुनौतियों को भी उजागर किया, सदियों से लेकर वर्तमान–काल तक नारी एक उच्च एवं सामन्त वर्ग की नजरों में भोग की वस्तु रही है।

जैसे प्रेमचन्द्र में हो या न हो कि उनकी परम्परा को पूजने वालों में है मैं व्यक्ति विखण्डन के भीतर से गुजरने वाला कथाकार हूँ पर मुझे आधुनिकता की भरपूर जीवनी शक्ति प्राप्त है मेरे भीतर एक आहत व्यक्ति था, एक कर्तव्यमूढ़ राष्ट्र था, एक आतिवादी छोटों पर औसत से ज्यादा खिचती रबड़ के टुकड़े जैसी मानवता थी, जिसका टूटना देख रहा था, जिसे मैं जिजीविषा से मिलाना चाहता था, अपना सब कुछ सारी अस्मिता विश्व मानव के हेतु निछावर कर देना चाहता था।

6. कुहरे में युद्ध (प्रोक्सीवार)

उपन्यास मध्यकालीन भारत पर केन्द्रित है इसका घटना स्थल "जुझौती" बुन्देलखण्ड है इसमें प्रेरणा भूमि के संबंध में लेखक का कहना है अंधेरा और इतिहास लगभग मिलते जुलते अभिप्राय वाले विरोधी शब्द लगते है। पर इसमें शक नहीं कि जब हम भी भारतीय वातावरण में अतीत को देखना चाहते है वर्तमान को पहचानने के लिए हमारा इतिहास एक मोटी पर्त जैसे लगता है, जो सत्य के मुख की हिरण्मय पात्र से ढंकने की, ढंके रखने की प्रक्रिया छोड़ने को तैयार नहीं लगता। मुझसे बार बार पूछा जाता है कि आप "अलग–अलग वैतरणी" के बाद काशी पर क्यों लिखने लगे या कि नीला चाँद की सफलता ने क्या आपको बना रखा है कि आप आज के समसामयिक परिवेश से टकराना नहीं चाहतें, इस संदर्भ में उन्होंने आगे लिखा वैश्वानर अब तक आ गया होता, पर भारत के आधुनिक परिवेश में पिछले एक दशक से जैसा उद्वेलन जन्मा है और जो निरंतर बदलाव लेता जा रहा है, उसने मुझे बहुत तोड़ा।

हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने नींद हराम कर रखी है आप पिछले चार दशक से जिस धर्म निरपेक्षता के खूंटे में देश की नैया को बाँधे हुए है उसका न रूपाकार है न आयतन। न ही उसकी कोई पहचान है न तो विश्वास और आस्था , जो तूफान में तो कर्णधारों के मन में होनी ही चाहिए।

अगर आपने मन में ही यह निश्चय कर लिया हो तो इतिहास में लौटना प्रतिगामिता है, और ऐसा करने वाले वर्तमान से टकराने में कतराते है, तो बहस का सबाल ही नहीं है, आज यदि आप पूरे विश्व के साहित्य को देखे तो अतीत की ओर दौड़ आपको हतप्रभ कर देगी, आधुनिकता और तकनीकि प्रोन्नति से जन्में वातावरण में साँस लेना ऐसे चरित्रों को ढूंढ रहे है जो अतीत के होते हुए भी हमारे वर्तमान के आदर्श हैं।

इस सबका प्रेरणा बिन्दु अपनी–अपनी पहचान को ढूढ़ने का भाव है, अपनी जड़ो की ओर लौटाने को संकल्प लेकर चला है। यह कार्य अगर भारत में बहुत स्पष्ट रूप से उभरा है तो उसका कारण हमारे इतिहास की समृद्ध परम्परा है–प्राचीनता है।

यह खण्ड, "कुहरे में युद्ध" तो पूर्णतः जुझौती पर ही केन्द्रित है क्यों केन्द्रित हुआ? कारण कि मुसलमानी आक्रमण से सर्वाधिक रूप से टकराव का कार्य केवल तीन क्षेत्रों में हो पाया है, सारी पराजय में एक अपवाद रही जुझौती।

7. दिल्ली दूर है–

"दिल्ली दूर है" की भूमिका में डॉ० शिवप्रसाद सिंह उसकी प्रेरणा भूमि का जिक्र करते हुए लिखते है मैने व्यास सम्मान ग्रहण करते हुए कहा था कि मैं व्यक्ति और व्यक्तिगत घटनाओं से अलग हटकर कालचक्र लिख रहा हूँ। इसलिए यदि मेरे भारी भरकम उपन्यास आपकी कलाकारिता भरी छोटी छोटी सुन्दर रचनाओं की जौहरी तुला पर असन्तुलन पैदा कर रहें है तो क्षमा करेंगे।

इसी में जोड़ते हुए उन्होंने लिखा था आज इतनी दूरी और खाई आ गई कि एक दूसरे को शब्द सेतु भी जोड़ नहीं पा रहे हैं। ऐसे में क्या हमारा यह कर्तव्य

नहीं है कि हम एक बार उन चीजों की जाँच कर लें जिनकों रखते वक्त शायद गारे की जगह माँस के लोथड़े, खून में भिगोकर तहियाये गये थे।

मेरा ध्रुव विश्वास है कि आगामी मानवता के विकास में भारतीय धर्मो वेदान्त केन्द्रित हिन्दू धर्म तथा बुद्ध, गाँधी की अहिंसा प्रमुख तत्व बनेगी।

"बसुधैव कुटुम्बकम" का मन्त्र सारे विश्व में गूंजेगा, एक न एक दिन अब तक ऐसा क्यों नहीं हुआ। इसके कई कारण है इन्हीं सब कारणों की छानबीन का परिणाम "दिल्ली दूर है" उपन्यास है।

८. वैश्वानर (काशी-1)

वैदिक काशी के अंधकार युग को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास हैं। वैदिक सूक्तों और मंत्रों का सहारा लेकर उन्होंने यह उपन्यास लिखा है। उनका कहना है कि मैं जानता हूँ कि हमारा बौद्धिक कितना नकलची और अज्ञान के ज्ञान से मस्त रहने वाला प्राणी है। उसे अगर बाइविल या कुरान सुनाया जाये तो वह प्रशंसा के अतिरिक्त एक खण्ड नहीं कहेंगा परन्तु यदि हम वैदिक युग की मान्यताओं के अनुरूप कुछ भी लिखें तो वह उसे रसायनिक प्रक्रिया कहकर नाक भौं सिकोड़ेगा। उसे सर्वज्ञ अलग देखने की बीमारी है। लेखक ने वैदिक सूक्तों और कुछ किवदन्तियों के सहारे इस उपन्यास की रचना की है।

अपने एक चित्र की जिज्ञासा का उत्तर देते हुए डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने एक स्थान पर लिखा है, 'मरबेल का आलेख जाण्डिया चतुष्टय', अपनी और नहीं चिंता, क्योंकि वे ऐतिहासिक विवरणों से भरे रिपोर्ताज की शैली में लिखे गये हैं, जब कि मेरी काशीमयी संस्कृति आचार व्यवहार तथा सच्चे वातावरण में डूबकर लिखी गयी है।

९. "गली आगे मुड़ती है"

डॉ० शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास गली आगे मुड़ती है में, कथावस्तु और शिल्प दोनों स्तर पर औपन्यासिंक कला को नवीन मोड़ दिया गया है। आधुनिक काशी की संस्कृति वहां के विविध सम्प्रदायों जातियों वर्गो की विभिन्न सभ्यता संस्कार और भाषा का जीवन्त दस्तावेज हैं। काशी में सभी अलग–अलग होकर भी उसी प्रकार एक है जैसे नुक्कड़ पर सभी गलियाँ। देश की भाषा समस्या, जातिवाद, वैवाहिक प्रतिबन्ध और प्रान्तीयता की सीमा तोड़कर बाबा विश्वनाथ की धर्म प्राण नगरी में सबाको एक कर दिया गया है। एक ओर वहां के निवासी बंगाली, गुजराती, राजस्थानी और बिहारियें के खान पान वेशभूषा रहन सहन भाषा सभ्यता नृत्यगीत और संस्कार है तो दूसरी ओर वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उछल कूछ करते दिखते है। जवानी के जोश में डूबता तिरता युवा वर्ग है तो गावटी बाँधे चश्मा लगाये, गुण्डे पण्डे और हर गली में संडासा के लिए घूमते फिरते साधु है। युवकों की यह कहानी काशी की न होकर सभी जगह की है। हर जगह के युवा नेता कहते कुछ और है परन्तु आड़ में कुछ और ही गुल खिलाते है, यही हालत आज की फारवर्ड बनने वाली छात्राओं की भी हैं।

उपन्यास की आत्मकथात्मक शैली में लिखकर कथाकार ने पाठकों के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया है। डॉ० सिंह की वाक्पटुता पाण्डित्य पैनी दृष्टि, दृढ़ निश्चय, यथार्थ दृष्टिकोण जैसे सभी गुण डॉ० शिवप्रसाद ने उपन्यासकला में प्रयुक्त किए हैं।

मुख प्रसंग से कथा की शाखाएं निकलती गई हैं, और उपन्यास का कलेवर फैला है। कई स्थानों पर मूल कथा मूक हो गई हैं, और प्रासंगिक कथांए ही एक पर एक आती गई है। कथाएं अपना उद्देश्य पूरा करके मूल कथा में उसी

तरह विलीन हो गई है जैसे मेन रोड़ में छोटी गलियां। इस प्रकार के उपन्यास में महाकाव्यात्मकता स्वयंमेव आ गई है। बीच बीच में निबन्ध शैली का प्रयोग करके लेखक ने पौराणिक उदाहरण दिए हैं।

पात्रों के नाम गुण, और कर्म के अनुरूप है आरती वास्तव में आरती करने योग्य है मन में जो आया उसे बेझिझक करती है। काम करती है काम करके दुख भोगने पर उसे कोई पछतावा नहीं है। रामकीरत दास आज के दास नामधारी उन महंतों के प्रतीक है जो सन्यासी होने का ढ़ोंग खड़ा करके समाज को गुमराह कर रहे है। भगत कहलाने वाले जमुनादास यमुना की प्रतीक राधारानी रूपी अपनी प्रेयसी पत्नी के भक्त हैं। वे हर क्षण उसी की याद में तड़पते रहते है। हरिमंगल जब तक रहे मंगल ही मंगल रहा। मरते समय भी मंगल की छाया उनके पास नहीं भटकती है। देखें वास्तव में नायक के गुण हरिमंगल में ही है। किरण प्रकाश पुंज है। रामानन्द के जीवन में जब तक रही ज्योति फैलाये रही। सबके ऊपर 'आनन्द' (रामानन्द) आनन्द ही है, जो सबको आनन्द देता हैं किन्तु स्वयं के लिए उसे नहीं संभाल पाता दूसरों को ही देता है।

निरन्तर प्रयत्नशील रहने के बावजूद उसे अन्त में पीड़ा ही हाथ लगती है, यही बिडंवना है। जिस माँ की रक्षा करने उसे दुखी बनाने और साथ रखने के लिए वह हर कुर्बानी करता है उसे भी अन्त में छोड़कर अपनी सुविधा के लिए दूर भाग खड़ा होता है। यही आज की पीढ़ी की आधुनिकता है, जिसका पर्दाफाश कथाकार ने किया है। बीच में सेक्स सम्बन्धी वर्णन सत्तर के पश्चात के सेक्स विषयक सामाजिक रूझान के प्रतीक है। उसे असामाजिक, अस्वाभाविक और अग्राह्य कहना सच्चाई को नकारना है।

उपन्यास में सभी कथाएँ मूल कथा से मिलकर एक हो गई है। बीच बीच में सभी रसों के समावेश द्वारा जहाँ इसे महाकाव्यत्मक रूप दिया गया है, वहीं प्रत्येक अंश स्वतंन्त्र रूप से वर्णित होकर खण्ड काव्य का आनन्द देता हैं।

उपन्यास में सभी कथाएँ मूल कथा से मिलकर एक हो गई है। बीच बीच में सभी रसों के समावेश द्वारा जहाँ इसे महाकाव्यात्मक रूप दिया गया है, वहीं प्रत्येक अंश स्वतंन्त्र रूप में वर्णित होकर खण्ड काव्य का आनन्द देता है।

5. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे पृ0सं0 1243 नाग प्रकाशन दिल्ली।
2. हिन्दी साहित्य कोश–मक्खन लाल शर्मा पृ0सं0 139 उ0नि0 पृ01
3. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास–डॉ0 सरोजिनी त्रिपाठी पृ0सं0 18
4. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख, साहित्य संदेश उपन्यास अंक अक्टूब–नवम्बर 1940 पृ0 42
5. डॉ0 सरोजिनी त्रिपाठी, उ0नि0 पृ0 19
6. वेवस्टर न्यू इण्टर नेशनल डिक्सनरी पृ0 सं0 1617
7. राल्स फाक्स–दि नावेल एण्ड दि पीपुल पृ0 सं0 62
8. प्रोग्रेस आफ रोमान्स–क्लारा रीव पृ0 सं0 18
9. जे0वी0 प्रीस्टले अंग्रेजी उपन्यास–माखन लाल शर्मा, उ0नि0
10. प्रेम चन्द्र उ0नि0 उपन्यास (लेख) पृ0 47
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास संवत 2018 सं0 पृ0 513 आचार्य राम चंद्रशुक्ल
12. काव्य के रूप 1958, च0सं0 पृ0 161–बाबू गुलाब राय
13. प्रतीक, जनवरी 1961 पृ0सं0 12–13 यशपाल
14. साहित्य सन्देश, आधुनिक उपन्यास अंक 1956 पृ0 7–डॉ0 सत्येन्द्र
15. सम्पादक शशि भूषण (शीतांशु) सृष्टा और सृष्टि पृ0 265 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
16. जूलिया क्रिस्तिवा सिमिओतिका : रिसर्चेजपोर टुडे सिमानालॉजी (पेरिस 1969) पृ0 सं0 255
17. जूलिया क्रिस्तिवा सिमिओतिका : रिसर्चेजपोर टुडे सिमानालॉजी (पेरिस 1969) पृ0 सं0 266
18. जूलिया क्रिस्तिवा सिमिओतिका : रिसर्चेजपोर टुडे सिमानालॉजी (पेरिस 1969) पृ0 सं0 267
19. शिवप्रसाद सिंह "अलग–अलग वैतरणी" (लोक भारती प्रकाशन–इलाहाबाद) पृव सं0 132 एवं 153

20. शिवप्रसाद सिंह ''अलग–अलग वैतरणी'' (लोक भारती प्रकाशन–इलाहाबाद) पृव सं0 599
21. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र सह सम्पादक डझॅ0 सुरेश चन्द्र गुप्त) पृ0 सं0 682 प्रकाशक – मयूर पेपर बैक्स ए–95, सेक्टर 5 नोएडा।
22. शिव प्रसाद सिंह ''अलग–अलग वैतरणी'' पृ0 सं0 99
23. सम्पादक शशिभूषण (शीतांशु) ''सृष्टा और सृष्टि'' पृव 271
24. सम्पादक शशिभूषण (शीतांशु) ''सृष्टा और सृष्टि'' पृव 271
25. शिवप्रसाद सिंह ''गली आगे मुड़ती है'' नई दिल्ली नेशनल, 1974
26. ''पूँजीवादी व्यवस्था'' सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा ज्ञान प्रकाशन मण्डल लिमिटेड वाराणसी
27. गर्दिश के दिन सम्पादक कमलेश्वर पृ0 75
28. सम्पादक 'पाण्डेय' 'शशिभूषण' 'शीतांशु' 'शिवप्रसाद सिंह' सृष्टा और सृष्टि पृ0 13 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
29. सम्पादक 'पाण्डेय' 'शशिभूषण' 'शीतांशु' 'शिवप्रसाद सिंह' सृष्टा और सृष्टि पृ0 13 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
30. सारिका 1 फरवरी 1980 पृ0 10
31. गोस्वामी तुलसी दास ''दोहावली'' दोहा संख्या 187
32. सारिका 1 फरवरी 1980 पृ0 15
33. पाण्डेय शशि भूषण ''शीतांशु'' शिव प्रसाद सिंह ''सृष्टा और सृष्टि'' पृ 16–17
34. सारिका 1 फरवरी 1980 पृ0 11
35. पाण्डेय शशि भूषण ''शीतांशु'' शिव प्रसाद सिंह ''सृष्टा और सृष्टि'' पृ 20
36. समकालीन हिन्दी साहित्य आलोचना चुनौती पृ0 6
37. समकालीन हिन्दी साहित्य आलोचना चुनौती पृ0 6
38. पाण्डेय शशि भूषण ''शीतांशु'' शिव प्रसाद सिंह ''सृष्टा और सृष्टि'' पृ 21
39. प्रश्नों के घेरमे में राजेन्द्र अवस्थी पृ0 10

द्वितीय अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का वस्तुविधान

१. उपन्यास : रचना की समकालीन परिस्थितियां

२. उपन्यास की कथा वस्तु

३. कथानक में वस्तु - संगति

४. कथानक में इतिहास और कल्पना की स्थिति

   १. अलग-अलग वैतरणी (१९६७)

   २. नीला चाँद (१९८८)

   ३. मंजूशिमा (१९९०)

   ४. शैलूष (१९८९)

   ५. औरत (१९९१)

   ६. गली आगे मुड़ती हैं (१९७४)

   ७. दिल्ली दूर हैं (१९९३)

   ८. वैश्वानर (१९९६)

   ९. कुहरे में युद्ध (१९९३)

५. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का वस्तुविधान

1. समकालीन परिस्थितियाँ

डॉ0 सिंह ने समकालीन परिस्थितियों को बड़ी निपुणता के साथ विभिन्न उपन्यासों में उकेरा है। जीवन के उतार–चढ़ाव, मानवता–अमानवीयता, यश–अपयश, रीति–नीति औऱ गरीबी को आपस में जोड़कर उन पर विचार किया गया। "गली आगे मुड़ती है", "वैश्वानर" और "अलग–अलग वैतरणी" में विभिन्न ऐतिहासिक और भौगोलिक कथ्यों का पटाक्षेप किया गया है, अपनी उपन्यास सृष्टि के सम्बन्ध में स्वयं लेखक के क्या विचार है, इसे नीचे दिया जा रहा है। "सपना अधूरा" शीर्षक से लिखित व्यास–सम्मान के अवसर पर पठित अपनी आत्मकथा में डॉ0 शिव प्रसाद ने कहा हैं " गाँव में जन्मा, धान खेतों, चैत फसलों के अछोर सीवानों पर तितली पकड़ने के लिए दौड़ता रहा। सीमान्त की मेड़ो पर झरबेरी की झाड़ियाँ हासिए बनाती रही पर वे मेरी उड़ान कभी रोक नहीं पाई। काशी आया और कुछ–कुछ पर फड़कने का बोध हुआ तो लगा मेरे सामने दो व्यक्ति खड़े हैं, जो मेरी नियति हैं। पिता का कोई विकल्प होता भी कहाँ हैं, मन में गाँव पर कुछ अनकहा कहने की कामना जागी तो भेंट हो गयी, प्रेमचन्द्र से उनका कोई विकल्प आज तक नहीं मिल सका। यर्थाथवादी कथाकार को, गाँव पर लिखने को उत्सुक व्यक्ति को उनमें अलग शरण भी कहाँ थी। पर 1951 में "दादी माँ" छपी तो एक ऐतिहासिक तथ्य इसी के साथ उछला था पर अब तक कभी कहा नहीं गया। मैने प्रेमचन्द्र की अपेक्षा उन दिनों 'प्रसाद' को पढ़ने में अतिशय भाव विभोरता का अनुभव किया। मुझे शरत्चन्द्र पसन्द थे, प्रेमचन्द्र नहीं। मैंने कहीं लिखा है कि हिन्दी कथा साहित्य में मेरा प्रवेश शरतचन्द्र, टॉल्सटाय, चेखव और पुर्गनेव के बीच हुआ। प्रेम चन्द्र और जैनेन्द्र के भीतर से नहीं। कारण साफ कह दूँ कि प्रेमचन्द्र की

भाषा की सपाटता और शरत के भराव में बहुत अन्तर करता हूँ। मैं रूपवादी कभी नहीं रहा पर रूप को अथवा अभिव्यक्ति के माध्यम के सौंदर्य को यूं ही अस्वीकृत नहीं करता।''......[1]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह यर्थाथवादी थे, उन्होंने यथार्थवाद पर अधिक से अधिक दबाव डाला यथार्थवादी जीवन की एक चुनौती है जिसमें, कई प्रकार की सत्यतायें उद्घाटित होती हैं, यथार्थ और आदर्श एक दूसरे के पूरक है, ''गली आग मुड़ती है'' में आदर्शवाद को समकालीन परिस्थितियों से जोड़कर उसको व्यक्त किया।

2. डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का वस्तुविधान

"डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जातिवाद, सम्प्रदायवाद और कुनबा परस्ती, भाई–भतीजावाद से विमुख मानव धर्म और मानवीयता की संघर्ष गाथा के पक्षधर का नाम है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।"......[2]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह मानव की संघर्ष गाथा के एक पर एक वृत्तान्त लिखते रहे। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अपने जीवन में कभी पराजित होना नहीं सीखा उनके विचार एवं भावनाओं में पराजय एवं हार नामक शब्द नहीं थे। जीवन में संघर्ष को ही जीवन का जप और तप को अपना प्रमुख यज्ञ माना। डॉ0 सिंह का सारा क्रिया–कलाप साहित्य और समग्र जीवन का, उनके एक एक प्रसंग का काल और स्थल के अक्ष पर विवेचनात्मक और सृजनात्मक "पाठ" के रूप में रचने का पात्र को अवतरित कर जीवन यथार्थ की ओर उसकी विभिन्न परिस्थितियों को उद्घाटित करने का उसकी चिन्ता–विचिन्ता का क्रिया कलाप है। उन्होंने समकालीन, पश्चिमी दार्शनिक चिन्तन और साहित्य सिद्धान्त के माध्यम से अपने उपन्यासों में समकालीन परिस्थितियों का सन्निवेश किया है।
"डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का सम्पर्क गाँवों से अब वैसा नहीं रहा कि पिछले दो–तीन दशकों में आये समस्त बदलावों व उनसे विकसित होती परिस्थितियों और मूल्यों के अन्तर्गत शुभ–अशुभ परिणामों को सामने लाते तथा उन्हें अपनी सकारात्मक दृष्टि से संबलित भी करते।"......[3]

डॉ0 शिवप्रसाद की पाठ सर्जना में अगुणी कभी ऊपर नहीं उठता और गुणी कभी स्थान च्युत नहीं होता हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यास रचना की जिसमें समकालीन परिस्थितियों में विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों, पौराणिक, गाथाओ, किवदन्तियों, राजनैतिक एवं कूटनीतिक, दाँवपेचों का भी पर्दाफाश किया।

डा0 सिंह ने अपने उपन्यासों में अपनी पारिवारिक भूमिका में पुत्र रहें, बड़े भाई रहे, पति हैं, पिता है, श्वसुर है और पितामह। वे इन कौटम्बिक सम्बन्धों के पालक संरक्षक है ही, पर एक अर्थ में वे इन सारे सम्बन्धों के सृष्टा भी हैं। विभिन्न उपन्यासों में पारिवारिक सम्बन्धों का यह जब कभी और जहाँ कभी स्वयं उसे अपनी ओर से पुनः सृजित कर आपूरित कर देते हैं। डॉ0 सिंह ने "अलग–अलग वैतरणी", "नीला चांद", "मंजूशिमा", "शैलूष", "औरत", "गली आगे मुड़ती है" – "वैश्वानर" तथा "कुहरे में युद्ध' जैसे उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की समकालीन परिस्थितियों का बिन्दुवत् तरीके से स्पष्टीकरण किया।

"अलग–अलग" वैतरणी में तट चर्चा संकेतिक में कथाकार ने शिव–पार्वती की पौराणिक कथा अथवा पुरातत्व के जिस प्रतीक को रूपान्तरित करना चाहा है, उससे अति आधुनिक के हिमायतियों को शिकायत हो सकती है। शिवत्व तिरस्कृत होता हैं, व्यक्ति के हक छिन जाते हैं, सत्य और न्याय अवहेलित होते हैं, तब जन–जन की आशाओं की धारा वैतरणी में बदल जाती है।".......[4]
"अलग–अलग वैतरणी की समकालीन परिस्थितियों के वक्तव्य इन आरम्भिक अंशों में कोई संगति नहीं खोज पाते हैं। उन्होंने करैता गाँव की समकालीन सम और विषम परिस्थिति का तथा टूटी हुई, ग्राम व्यवस्था का स्पष्टीकरण किया उन्होंने ग्राम विद्यटन के लिए दोषी ब्रिटिश उपनिवेशवाद तथा परिवार और समाज के विघटन के लिए दोषी भौतिकवादिता को बताया। असंख्य यातनाओं एवं यन्त्रणाओं से गुजरते हुये भारत के गाँव की समकालीन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण किया है। इस प्रकार वैतरणी का करैता गाँव एक अंचल मात्र में सिमट कर नहीं रह जाता, वरन उपन्यासकार ने समस्त ग्राम्य जीवन की सम और विषम परिस्थितियों को एक झलक के रूप में प्रस्तुत किया। प्रत्येक मनुष्य की अपनी एक "वैतरणी" है।

"शिवप्रसाद के सामने उनका उद्देश्य साफ हैं, वे जमींदारी टूटने के बाद से अपनी कहानी की शुरूआत करना चाहते हैं, केवल बदलती हुई परिस्थितियों का एहसास कराने के लिए, पिछले जमींदारी के ठाठ बाट की दो चार झाँकिया प्रस्तुत कर देते है।".......[5]

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में परिस्थितियों के अनुकूल समाज का विखण्डीकरण घटनाओं एवं परिवार और समाज का विखण्डीकरण गरीबी, भुखमरी, घृणा, प्रतिस्पर्धा और प्रतिशोध जैसी भावनाओं का स्पष्टीकरण करके समकालीन परिस्थितियों को बतलाकर नई पीढ़ी को सच्चाई से अवगत कराया है।

डॉ0 शिवप्रसाद के अनुसार परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले दोहरे लक्ष्यों की पूर्ति में सफलता प्राप्त कर लेना तभी सम्भव हो सकेगा, जब परिस्थितियों से लड़कर जीवन को जागरूक और चैतन्य बनाये जीवन का विस्तार अन्तहीन है।

सामन्तवादी प्रथा एवं उसमें पाई जाने वाली विभिन्न विकृतियों एवं विसंगतियों को प्रस्तुत करके वर्तमान समय की पूजींवादी व्यवस्था से जोड़कर उसकी पहचान करायी तथा सामन्तवादी व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक ओछेपन को भी प्रतिकार्यात्मक एवं प्रतीकात्मक बताया। सांस्कृतिक वातावरण पर्व एवं सामाजिक मनोरंजन का चित्रण भी प्रस्तुत किया, पर जब एक व्यवस्था टूटती है तो उस समय तक जब तक कि एक दूसरी उस अन्तराल को न भर दे एक अजीब तरह की अव्यवस्था कम्पायमानता की स्थिति बनी रहती हैं।

"पुराने मूल्य अच्छे बुरे जो भी हो ध्वस्त हो जाते हैं, और उनके स्थान पर नये मूल्य निमित् नहीं हो पाते सम्भवतः वे गर्भस्थ होते हैं, और उनके बाहर स्थापित होने में समय लग जाता, एक संक्रमण काल होता है – सामन्तवाद, प्राक. पूंजीवाद का मिला–जुला रूप".......[6]

शिवप्रसाद सिंह, ''अलग–अलग वैतरणी'' में करैता की सम्पूर्ण समकालीन परिस्थितियाँ उभारना चाहते हैं, उनकी पूरी ठनक पकड़ना चाहतें है, इसलिए संक्षिप्तीकरण उनके लिए सम्भव न था। उपन्यास एक सम्पूर्ण समकालीन वातावरण तो हमें दे जाता है, और हम एक समन्वित प्रभाव की तलाश करते रह जाते है, और उनकी किसी आगामी कृति के आने की हमें प्रतीक्षा रहती हैं।

सौभाग्यवश ''अलग–अलग वैतरणी'' अमित सम्भावनायें लेकर आया है और ग्राम कथा को एक नया मोड़ देता हुआ, समकालिकता और आधुनिकता की चुनौती को शामिल करता है। डॉ0 सिंह ने नीला चाँद में काशी के मध्यकाल का ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है, इस उपन्यास में ऐतिहासिक ही नहीं बल्कि भौगोलिक समकालीन परिस्थितियों की विवेचना मिलती है।

उन्होंने ''नीला चाँद'' में देश का विस्तार चंदेल राज्य की सीमाएं है, खजुराहों से वाराणसी जाने के तीन मार्ग है–

(अ) खजुराहों से महोबा तक वहां से कान्यकुब्ज प्रयाग कांन्तित, विन्ध्यांचल चुनार और वाराणसी

(ब) खजुराहों से पन्ना, कालिजंर, चित्रकूट, कन्तित, विन्ध्याचल, चुनार और वारणसी

(स) खजुराहों से शीर्षवाद के समान्तर, विलहरी, बुखारा, देवराज नगर, सिंधावल, अमीरपुरा, चुनार और वाराणसी।

नीला चाँद में आध्यात्मिक एवं पुरातात्विक चुनौतियों का पर्दाफास किया।

३. उपन्यासों की कथावस्तु एवं कथानक में वस्तु – सगंति

उपन्यासों का अधिकतर कथानक ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित है, अलग–अलग वैतरणी का सम्पूर्ण संवाद विभिन्न पात्रों के आंचलिकता की दृष्टि से सम्बन्धित हैं।

"आंचलिक उपन्यासकार अंचल पात्र को उसके समस्त ऐन्द्रिय विषयों में सजीव करते हैं। इसलिए उनकी भाषा–शैली में अद्भुत रूपविधायिनी क्षमता होती है। इनकी भाषा शैली की बिम्बात्मक क्षमता ध्वनि चित्रों, स्पर्श–चित्रों, वर्ण चित्रों आदि के माध्यम से अंचल को उसके सम्पूर्ण रूप – रस –गन्ध में साकार कर देती हैं। ''.....[7]

"हो, हो खा हो टूँढी यह क्या किसी मिठाई से कम है। अभी एक चीज भी नहीं खरीदी अपनी गुलजारी बुआ कह रही थी, कि करैता के मेले में अभफरवी और कद्दूकस बड़ा बढ़िया मिलता हैं।'''......[8] कथानक काल्पनिक स्थिति को व्यक्त कर रहा है, भविष्य के विचारों पर केन्द्रीभूत हो कथानक में ग्रामीण पात्रों के वार्तालाप में कृत्रिमता नहीं हैं बल्कि वास्तविकता झलकती है।

"तुम्हें जो खरीदना बेसाहनाहो जल्दी कर करा लो ये बाबू ढूंढी के गिरे हुए चुये के न्यौने पर आयी मक्खियों को फटकारते हुये बोले – "मैं कोल्हू के बैल की तरह इस मेले में चक्कर नहीं काटता रहूंगा।''......[9]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने "अलग–अलग वैतरणी" में ब्राह्मणों की स्थिति का पर्दाफाश किया। ब्राह्मण करैता गांव के शादी – ब्याह मुण्डन जनेऊ व्रत, त्यौहार या कोई उत्सव समारोह पर कुछ पैसा कमाकर अपनी जीविका चलाते हैं, पंडिताई ही उनके जीवन का प्रमुख साधन है।

"क्या करूँ भाई! बाभन हूँ। हलवाई, चरवाही कर नहीं सकता। मिहनत मजदूरी कोई करायेगा नहीं। ऊपर झापर के कुछ काम कर देता हूँ। इसी से तो दो प्रानी का गुजर चलता है।" वे बड़ी संजीदगी से कहेंगे – "इस महंगाई में तो यह भी गया। कितने लोग है जिन्हें बाजार से सौदा सुलुफ मँगवाना रहता है अब? कहां होता है उत्सव, त्यौहार? बस किसी तरह जिन्दगी कट जाये यही बहुत है।"........[10]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने मेला की दशा का वर्णन किया है, मेले में प्राचीनता तथा नवीनता का समावेश दिखाई पड़ता है। औरत अपना साज श्रृंगार करके मेले को देखने जाती है। औरतों का सम्बन्ध शादी के बाद मायके से कम, उनका जीवन ससुराल में सिमट कर रह जाता है।

मेले में ग्रामीण संस्कृति का नृत्य एवं तम्बू का वर्णन किया है। किस तरह लोग अपनी कल्पनाओं को मेले में सकारातम्क बनाने का प्रयास करते हैं।

"का हो भोलू साह ई का मामला है यार। हमारी तो टेंट कट गयी जानो। बधिया बैठ जायेगी। कुछ गाड़े गूड़े तो नहीं हो यार उस जमींन में? हमने कहा हाँ साले, गाड़े है उहाँ। तू समझ रहे थे कि ई हरिहर छत्तर ददरी का मेला हैं? पवडर पोतकर चुनरी पहन ले और खड़े हो जा दरवज्जे पर। देख भीड़ का रेला पेला मच जाता है कि नहीं। साला गरियाता हुआ गया।"..........[11]

"सच कहता हूँ, यार बुल्लू पण्डित। उधर एक ठो भारी तम्बू गड़ा है। आपने भी तो देखा ही होगा। फाटक पर मचान बंधी है। ऊपर खड़ा है एक ठो भँडुवा। चुन्ना पोते। कपार पर चोंच की तरह नुकीली टोपी लगाये। बगल में एक ठो चमरनेटुवा भी है। नाच गाकर आदमी बटोरते है साले"..........[12]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने मन्दिर के पुजारी की स्थिति से अवगत कराया कि पुजारी की काल्पनिक स्थिति किस प्रकार की है। शीतला प्रसाद मन्दिर के पुजारी है।

"का हो शीतला आज तो बेटा, खूब मलाई कटी होगी? उन्होंने नन्हकू को मण्डप के किनारे मन्दिर के पास उतरते हुए कहा। के हे बुल्लू चच्चा। शीतला प्रसाद हॉण्डी में रखे लड्डुओं को पत्तल के ढंकते हुए बोले–अबका मलाई कटेगी चाचा। शुकवा उगा तब से आया हूँ हिया। उठते बैठते कमर दुख गयी। भीड़ ऐसी की साँस लेना मुश्किल। बाकी दक्षिणा के नाम पर ठन ठन गोपाल उन्होंने मुठ्ठी अँगूठे नचाते हुए कहा।"......[13]

दयाल महाराज नामक पात्र औरतों को देखकर मुस्कराता है। यह संदिग्ध की स्थिति है क्योंकि विपरीत लिंग की ओर आकर्षण होना एक पुरूष की चारित्रिक दुर्बलता एवं नैतिक कमजोरी है। "तू तो कलोर की तरह सिवान – सिवान डॉक रही हैं। दयाल महाराज ने घृणा से गरदन फेर ली "साली बेहया, निर्लज्जा, वे गुनगुनाये। आयी होगी अपने चहेतों का पता – ठिकाना पूछने। जैसे मै इस मेला की पूँछ–ताछ दफ्तर हूँ।"......[14]

उपन्यासों का अधिकतर कथानक, ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित है कुछ उपन्यासों में सांस्कृतिक व राष्ट्रीयता चेतना व ऐतिहासिकता की झलक साफ दिखाई देती है। कथानक की दृष्टि और वस्तु संगति, विवेचन के आधार पर उपन्यासों का कथानक इस प्रकार है–

"अलग–अलग वैतरणी"

अलग–अलग वैतरणी का कथा चक्र जमींदार जैपाल और उनके भाई देपाल के वंश से आरम्भ होता है, जिसके द्वारा पुश्तैनी दुश्मनी के कारणों का संकेत किया गया है, जो घटित हो चुका है करैता मेले के दिनों में। जमींदार जैपाल को याद आती

है कि किस प्रकार ठाकुर मेघनसिंह ने अपनी बहिन राजमती के हाथों देपाल के लिए जहर भेज दिया था, क्योंकि वे दोनो का विवाह नहीं चाहते थे, तब से इन दो परिवारों की शत्रुता बढ़ती गई थी।

कथा का मध्य भाग मीरपुर के बबुआन, जो करैता गाँव के जमींदार है, ओर मुख्य सदस्य जैपाल, उनके पुत्र बुझारत, विपिन, पुत्र वधू कनिया मिलकर भी नायक की भूमिका अदा करने लगे। पर उपन्यास में जैपाल कुछ समय के उपरान्त कथा की धारा से हट जाते हैं, और फिर शेष तीन पात्रों के बीच एक सन्तुलन बनाए रखने की चेष्टा की गई है।

''अलग–अलग वैतरणी'' का उद्‌देश्य जमींदार परिवार की कथा सुनाना है भी नहीं। इसीलिए जैपाल के मुख्य जमींदार की कहानियों के अतिरिक्त जग्गन मिसिर, खलील चाचा, पटनहिया भाभी, सुरजू सिंह आदि की कथाएं गढ़ी गई है।

स्त्री पात्रों में बुझारत की पत्नी कनिया का चरित्र सबसे अधिक उभारा गया है। एक भटके हुए पति को पाकर भी वह परिवार की मर्यादाओं की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। कथानक में वस्तु संगति का आधार प्रमुख रूप से सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक चेतना को उभारा गया है। कथानक में जो भाषा बिम्ब प्रस्तुत कर अर्थ को तीव्रतया, भासित करती हो, संश्लिष्टता देती हो, अनुभव सँवेद्य बनाती हो, उपमानों और उपमान मूलक बिम्बों के सहारे सम्प्रेषणीयता को पूरी दिशा देती हो, वहीं डॉ0 सिंह को ग्राह्य है। 'अलग–अलग वैतरणी' में वस्तुविधान शुरू में तेज गति से चलता है और मध्यम में गौण कथाओं के माध्यम से बढ़ता है और अन्त में तीव्र संघर्ष हर कहीं कशमकश करता हुआ दीख पड़ता है।

'अलग–अलग वैतरणी' गाँव के पटवारी मुंशी हरनारायण लाला कहा करते कि 'पतिला नाचिरागी मौजा है, और साथ में जमींदारी प्रथा को उजागर किया गया है,

तथा गरीब वर्ग जमींदारी प्रथा के द्वारा आजादी के पूर्व पिस रहा था। जमींदारों और धर्म के ठेकेदारों ने पूरे समाज को खोखला कर दिया है डॉ0 सिंह ने इन्हीं सभी समस्याओं को अपने उपन्यास अलग–अलग वैतरणी में उकेरा है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की भाषा शब्दों के भार के साथ वाहित होती है वह उलझे हुए शिल्प को और उलझाती है वे भाषाज्ञानी विज्ञानी हो सकते हैं, लेकिन उनका शिल्प उनकी भाषा में उतरकर थकाता है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने मेला की दशा का वर्णन किया हैं, मेले में प्राचीनता तथा नवीनता का समावेश दिखाई पड़ता है। औरतें अपने साज–श्रृंगार करके मेले को देखने जाती है, मेले में ग्रामीण संस्कृति का नृत्य एवं तम्बू का वर्णन किया गया है किसी तरह वे अपनी कल्पानाओं को मेले में सकारात्मक बनाने का प्रयास करते है।

कथानक गुण व दोषों से भरा पड़ा है क्योंकि प्रत्येक कथा में कुछ अच्छे पात्र होते हैं और कुछ खल पात्र होते हैं, जिनके समावेश के गुण व दोष दोनों साथ–साथ पूरी कथा में चलते हैं

''नीला चाँद''

नीला चाँद का कथानक पूरा ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, जिनका सम्बन्ध कलचुरी से है जिसने देववर्मा चन्देल की हत्या की तथा जुझौती का वर्णन किया है, गाहड़वल के पिता गंगेदत्त ने अरबों और आरोहियों को बताया लक्ष्मीकर्ण ने अपने पिता की तरह गाहड़वालों को मामूली सामन्त बनाकर हमेशा दबाये रखा उस समय की काशी का वर्णन किया है, 1060 ई0 की घटना पर आधारित है। कीरत द्वारा राज्य की पुर्नप्राप्ति की मूलकथा अपनी समग्रोन्मुखता में इतनी ज्वलन्त

प्रासंगिकता को छूती है। 'नीला चाँद' 11 वी सदी के उत्तर भारत में नारी दशा का चित्रण कराता है। कीरत गोमती की एकनिष्ठता के साथ ही लेखक ने पति पत्नी के अलावा पुरूष–स्त्री के प्रेम का जीवंत आकलन किया है।

काशी नरेश कल्चुरी कर्ण ने जैजाक भुक्ति के राजा चंदेल वर्मा की अमानुषिक हत्या कर दी। वे उस समय ध्यानस्थ थे उनकी रानी ने पति के साथ चिता में भस्म होना उचित समझा और बर्बर कर्ण ने कलातीर्थ खजुराहों को भी आग में झोंक दिया साधारण योगी की रक्ताग्नि सती की चिताग्नि और कला की ध्वसाग्नि (नीला चाँद) की आदि ज्वाला है। उपन्यास का नायक कीर्ति वर्मा सत्ता और अधिकार के मोह से मुक्त एक वैरागी किस्म का युवक हैं, जो अपनी युवावस्था में ही संसार के प्रति वैराग्य के कारण सन्यासी बनकर संसार भ्रमण कर चुका है। उत्तराधिकार के नाम पर एक ध्वस्त राज्य, विघटित सेना और असुरक्षित जीवन ही मिले है। उपन्यास में इतिहास के निर्वाह से अधिक काशी की प्रतीकात्मक सत्ता को महत्व दिया गया हैं, गाहडवाल प्रजा या तो काशी में दर्प दलित हो रही थी या चरणादि और कंतित जैसे समीवर्ती नगर में सिमटी–सिकुड़ी पड़ी थी।

'नीला चाँद' की वस्तु संगति में कथानक का आधार ऐतिहासिक और गौण काल्पनिक पात्र कथाओं का समावेश किया गया है। काशी की व्यवसायी जातियों के बारे में वर्णन किया गया है मध्यकालीन काशी की स्थिति को खोलकर आँखां के सामने उजागर किया, इसके अतिरिक्त गंगा की स्थिति जिसमें कि आदमियों और पशुओं के शव सड़ते हैं।

'नीला चाँद' में काशी की सामाजिकता एवं व्यापारिकता पर विचार प्रस्तुत किये उन्होंने इस उपन्यास में जीवन के व्यापक मूल्यों का अर्थ युग के साथ जोड़कर काशी की व्यापारिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला है।

'नीला चाँद' के विभिन्न गुण तथा दोष की विवेचना और तीन पक्षों को उभारा है सैद्धान्तिक पक्ष, व्यापारिक पक्ष, ऐतिहासिक पक्ष, प्रथम सोपान में काशी के ऐतिहासिक तत्वों को अलंकरण करके एक समन्वय कर आपस में जोड़ा है। सम्प्रदायवाद और धार्मिक उन्माद का भी स्पष्टीकरण किया हैं तार्किकता एवं अभिव्यंजना के सौष्ठव पर उसकी प्रमाणिकता को रखा

'नीला चाँद' को तत्कालीन समय और समाज की एक नयी रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया हैं उपन्यास के कथानक में तीन राजपूत शासक हैं, और वहीं काशी की संस्कृति का भी वर्णन किया गया हैं। वस्तु की दृष्टि से नीला चाँद उपन्यास का विधान सुस्पष्ट और सुग्राही है।

''मंजूशिमा''

मंजूशिमा में पिता और पुत्री के धर्म का चित्रण किया हैं। पिता का कर्तव्य है कि पुत्री को धर्म और कर्म के बारे में वास्तविक ज्ञान देना है, कर्म के द्वारा जीवन के सही मूल्यों का निर्माण होता हैं, सुख और दुःख का संगम हैं, दुःख के बाद जो सुख का रस प्राप्त होता है वह तो अद्‌भुत हो जाता है।

'मंजूशिमा' में पिता ने अपनी पुत्री के लिए उत्तरदायित्व और सामाजिक पराकाष्ठा के मापदण्डों को ऊपर उठाया जिसमें कि पुत्री के प्रति सार्थकता और मानवीयता को रेखांकित किया है।

समाज में गरीब और अमीर दोनों ही है, परन्तु रिश्ते सर्वोपरि है, रिश्तों में संवेदनाये, आकांक्षाये व अनुभूतियाँ छिपी हैं, जो पारिवारिक एवं नैतिक उत्थान के लिए जिम्मेदार हैं। प्रत्येक पिता अपनी पुत्री के लिए नई नई जिज्ञासाएँ एवं मार्मिक स्मृतियों का मंगरा होता है। जो मानव चैतन्यता एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करता है, डॉ० सिंह ने अपनी बेटी के लिए त्याग और फर्ज निभाया है। उनके

विचारों में मौलिकता एवं तटस्थता के बीज झलकते है। मंजुशिमा जीवन का कटु सत्य है – जिसमें विचारों में स्वतंन्त्रता, चेतनता एवं व्यापकता को समता के सिद्धान्तों पर केन्द्रीभूत किया गया हैं।

जीवन में विरलों के भाग्यों में दुःख से छिटककर सुख की यूटोपिका नसीब होती है, जीवन में कभी सुख आता है तो कभी दुःख आता है। सुख कम दुःख से ही जीवन में त्याग और श्रृद्धा पैदा होती है।

'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की पुत्री मंजुश्री गुर्दे की बीमारी से ग्रस्त थी। उन्होंने अपनी बेटी के इलाज के लिए बनारस, चंड़ीगढ़ दिल्ली और मद्रास के अस्पतालों की खाक छान मारी पर सब बेकार। लेकिन वह स्वर्ग सिधार गयी। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने दो संतानों का दुःख और झेला। मृत्यु के बाद मृत्यु से झूझते हुये डॉ0 सिंह यथार्थ और नियति के बीच झूलते हुए जीवन की कठोरतम स्थितियों के गवाह रहे। मृत्यु की आँख मिचौली के साथ मंजूश्री की इच्छा शक्ति सात वर्षो तक जीवन के लिए लड़ती रही। ऐसी कठिन यात्रा में संसार की दुःखद और विसंगत स्थितियों से लेखक का साक्षात्कार हुआ था। मंजुशिमा में कथा व्यथा न होकर हमारे वर्तमान का ईमानदार इतिहास है। देश की राजनीति, सामाजिक और साहित्यक स्थितियों को डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अनायास ही छुआ है।

पूर्वाचंल का यह परिवेश यह घोषित करता है कि जो माता–पिता पूर्व जन्म में हाथी–दान कर चुके होते है उनकी बेटी विवाह से पहले मर जाती है। ऐसे माहौल में एक मध्यमवर्गीय परिवार का पिता अध्यापन के बूते पर संकल्प करता हैं कि चाहे जैसे हो, कर्ज लेकर, खेत बेचकर, घर बेचकर सब कुछ दाँव पर लगाकर उस बिनव्याही बेटी को बचाएगा ही।

'मंजुशिमा' का वस्तु विधान जो भोक्ता और रचनाकार को उने आपसी सम्बन्धों की जटिलता, तरलता और उनकी अन्तःक्रियाओं को उपादान और निमित्त कारणों को साथ–साथ रचती गई है। उपन्यास के भीतर एक और उपन्यास रचने की प्रचलित शैली में यह कार्य नहीं हुआ हैं। पूरी कृति एक पारदर्शी रचना प्रक्रिया हैं, जो पाठक के मन में उतरती चली जाती है।

डॉ0 सिंह द्वारा मृत्यु को नकारने, तंत्र, काला जादू और ज्योतिष के अस्तित्व को खारिज और ईश्वर की सत्ता तक को अस्वीकार करने के मूल में पूरी कथा में बौद्धिकता ही बौद्धिकता सक्रिय दिखती है। अगर इसकी गहन रचना में देखे तो बौद्धिक सक्रियता की जगह पुत्री के प्रति अगाध पितृ–प्रेम की आकुल भावनामयता तंरगित होती दीख पड़ती है। 'मंजुशिमा' आधारहीन बाधाओं और असुविधाओं का यथार्थ सामाजिक दस्तावेज है।

''शैलूष''

शैलूष उपन्यास में समाज में व्याप्त ऊँच–नीच की ऐतिहासिक परिभाषाएं और मान्यतायें कदम–कदम पर सिर उठाती है डॉ0 सिंह ने स्वातंन्र्योत्तर इतिहास को सूक्ष्मता से हुआ है और इसके कथानक में विषमता, गरीबी, भावुक आशावाद और उच्च वर्ग के लोगों की तिकड़म और चालाकियों को बयान किया है। जीवन्त पात्रों के इर्द गिर्द लेखक ने वर्ण व्यवस्था वर्ग भेद और आजादी के बाद पनपे चालाक लोगो के हाथों छले जा रहे मासूम कबीलाई और निचले तबके को वाणी दी है। डॉ0 सिंह ने इसके विभिन्न पात्रों–मौसी सब्बों, रूपा, लालू नट, अमृत, मूँगा, माला, देविका, जुबेदा, ताहिरा आदि पात्रों के साथ भावनात्मक रूप से पूर्णता जुड़ा है। कबीलाई जीवन पर लिखा गया उपन्यास जो निश्चित ही अपने भाव–कथ्य की दृष्टि से अप्रतिम है।

उपन्यास में शुरू से अन्त तक लड़ाइयाँ, कत्लेआम, छुरेबाजी बन्दूकों रिवाल्वरों की धॉय–धॉय, भालों की नोंक, आगजनी, अपहरण, बलात्कार, हत्या आदि बारदातें, कदम–कदम पर पन्ने दर पन्ने होती रहती है। इन लड़ाईयों के मूल में हैं साठ एकड़ जमींन, जो सरकार द्वारा उस गांव (रेवतीपुर) में बसे नटों व चमारों को आबंटित है। इसकी बाकायदा लिखा पढ़ी हो चुकी है। लेकिन गाँव में भूमिपति ब्राह्मण घुरफेकन तिवारी उसे हड़पना चाहते है। उपन्यास मूलतः नटों की जिन्दगी पर लिखने की प्रतिबद्धता के साथ नियोजित है। यह लड़ाई घुरफेकन तिवारी और जुड़ावन कबीलों के नटों के बीच होती है, जुड़ावन के कबीले को वहां से बेदखल करके जमींन प्राप्ति के साथ घुरफेकन तिवारी अपनी सगी मौसी सावित्री से बदला लेना चाहता है जो अपनी युवावस्था में ही जुड़ावन से प्रेम कर बैठती है और अब नट कबीलों में सब्बों मौसी के रूप में आहत थीं। नटों का जीवन मात्र सावित्री का संघर्ष बनकर रह गया। डॉ० सिंह इस उपन्यास में भाषा को जीवन से वास्तव में जोड़ने की कोशिश करते हैं।

वस्तु–विधान की दृष्टि से 'शैलूष' में नटों के बहाने पूरी निम्न वर्ग संवेदना के रेशे–रेशे को अलग करके नंगी आँखों से देखने की तकलीफदेह कोशिश है। यायावर कबीले शुरू से ही उनकी जिज्ञासा के केन्द्र रहें। अपनी छावनी के इर्द गिर्द मुसहर, कंजड़ नटों के खेमों में रहने वाले सुड़ौल, गठीले बदन के लोगो, उनकी चुलबुली अदाओ, दोपहर को सुनसान दरवाजों पर बैठकर गाँजे का दम लगाकर आल्हा गाते नटों को उन्होंने बचपन से ही इतना निकट से देखा था कि तिस्कृत, उपेक्षित जीवन उनके लिए कभी रहस्य नहीं रहा।

भाषा को लेकर "शैलूष" में डॉ० सिंह ने नग्न से नग्न यथार्थ को भी परिष्कृत भाषा में व्यक्त करना, भाषा की शक्ति तो हैं, नट जीवन का जो चित्र सामने आता है उससे ऐसा विश्वास हो जाता है कि वहाँ बड़े छोटे का कोई लिहाज नहीं है पिता तक से बेटियां भी 'साले हरामखोर' की भाषा में बातचीत करती हैं। पत्नी के

अतिरिक्त प्यार करने निभाने और सम्बन्ध बनाये रखने की पद्धति भी नट समाज में खूब प्रचलित है उच्च घराने की लड़कियों से शादी करने की कोशिश को उस समाज में विशेष मान्यता प्राप्त थी। बेला के रहते जुड़ावन सावित्री को लाया था।

आधुनिक समाज और सभ्यता का यह नतीजा था कि जुड़ावन परिवार की दो बहुओं को आपत्तिजनक स्थिति में परपुरूष के साथ मिलकर फोटो खिंचवाने का जिक्र है पर वह प्रथा नहीं है।

नट जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए प्रसन्नता के अवसर पर खास तरह के गीतों, नृत्यों और वाद्यों का प्रयोग किया जाता हैं, जिससे उनका प्राकृतिक जीवन साकार हो उठा है। आम आदमी की सक्रिय भागीदारी का भी आवाहन किया है, समाज के निर्माण हेतु।

''औरत''

डॉ0 सिंह का प्राचीन और सम–सामायिक साहित्य से गहरा जुड़ाव रहा है औरत उपन्यास में उन्होंने आर्थिक, विषमताओं, जातिवाद और सामन्ती सोच से ग्रस्त समाज पर बहुत सफलता से चोट की हैं, इस उपन्यास की भाषा में रवानी और ताजगी है। औरत उपन्यास के कथानक में देश की मिट्टी से गहराई तक जुड़ाव हैं, सम्पन्न और ऊँची जातियों के लोग गरीबों और दलितों की इज्जत आबरू से किस प्रकार खेलते हैं, उन्होंने इसका बेबाक चित्रण प्रस्तुत प्रस्तुत किया हैं।

Page 48

वैदिक साहित्य से वर्तमान युग तक नारी के जीवन में बहुत बदलाव आये। भारतीय वैदिक और उपनिषद काल में नारी के चरित्र व्यवहार के सम्बन्ध में कई प्रकार की मान्यतायें और किवंदन्तियों को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है, डॉ0 सिंह ने ग्रामीण अंचल की नारी की दशा और व्यथा पर प्रकाश डाला, जिसमें कि उनके

Page 48

प्रति दृष्टि बदले और समाज की दौड़ के साथ उनको भी एक नई दिशा मिल सकें। नारी के पिछड़ेपन को दूर करने का प्रयास किया, परन्तु संस्कृति को नहीं तोड़ा, क्योंकि संस्कृति और पिछड़ापन एक दूसरे के घनिष्ठ सहभागी है। ग्रामीण और आधुनिक नारियों के विचारों में काफी विभिन्नताएं हैं, परन्तु ग्रामीण अंचल की नारियों में आज भी मर्यादा, अनुशासन और प्राचीन रीति–रिवाजों को मानती हैं उनकी दृष्टि में प्राचीनता और नवीनता अलग–अलग सोपानों पर केन्द्रीभूत किया हैं। जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी बदली है।

पारिवारिक और सामाजिक समस्याएं नारी के विकास में बाधक होती है, अपितु उपन्यास में न केवल डॉ0 सिंह ने नारी के प्रति अन्याय के प्रति आवाज उठाई तथा समाज में व्याप्त हीन भावना की दृष्टि से विवेचन किया हैं। समाज में नारी का सहयोग मूल्यांकन करने के योग्य है, यह अपनी नीतियों और पराकाष्ठा के द्वारा सामाजिक ढाँचा का निर्माण करती हैं। वस्तु विधान की दृष्टि से 'औरत' उपन्यास में आधुनिक युग में नारी का जीवन और वैदिक युग की नारी से बिल्कुल भिन्न हैं। आज मशीनरी युग में भौतिक सुन्दरता की ओर प्रत्येक व्यक्ति पीछे भाग रहा है जिससे कि सारा समय सुन्दरता के सोपानों और सीढ़ियों पर केन्द्रीभूत हो रहा हैं, जिसकी सोच में विभिन्न प्रकार की विकृतियां और विसंगतियां हैं। डॉ0 सिंह ने समाज के कमजोर और दुर्बल पक्ष को उभारा है।

'औरत' में ग्रामीण अंचल में रहने वाली महिलाओं के साथ दुश्चरित्रता का पर्दाफाश किया। वर्तमान में उसे प्रगतिशील होना चाहिए तथा सम्मान की गम्भीर चुनौतियों को भी उजागर किया, सदियों से लेकर वर्तमान काल तक नारी एक उच्च्य एवं सामन्त वर्ग की नजरों में भोग की वस्तु रही है। लेकिन वर्तमान समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए आज नारी पुरूष वर्ग से कहीं भी पीछें नहीं है।

नारी की दुर्दशा की कहानी राजी, मुखिया, चन्द्रा और सोनवाँ से शुरू होती है और न ही खत्म होती हैं, हजारों का भारतीय इतिहास कहता है कि नारी रत्न है इसी रत्न को पाये बिना पुरूषों ने सारी उपलब्धि को बेकार समझा है।

शिवप्रसाद सिंह का यह उपन्यास मात्र औरत की कहानी नहीं हैं, अपितु औरत इस उपन्यास में अपने विभिन्न रूपों में अपने अस्तित्व हेतु समाज से जूझती है औरत अपने विज्ञापन को बुरी तरह से तोड़कर सामाजिक कथ्य और औपन्यासिक, शिल्प को ही विज्ञापित करती है। ऐसा लगता है कि उपन्यासकार स्वयं औरत की मानसिकता के भीतर झाँकता है, उसकी व्यथा के बहुमुखी यथार्थ को प्रस्फुटित करता है।

''गली आगे मुड़ती है''

'गली आगे मुड़ती है' में डॉ0 सिंह ने शिल्प और कथावस्तु के आधार पर नया मोड़ दिया है। आधुनिक काशी की संस्कृति, वहां के विविध सम्प्रदायों, जातियों, वर्गो की विभिन्न सभ्यता, संस्कार और भाषा का जीवन्त दस्तावेज हैं। काशी में सभी अलग–अलग होकर भी उसी प्रकार एक है, जैसे नुक्कड़ पर सभी गलियाँ। देश की भाषा समस्या, जातिवाद, वैवाहिक, प्रतिबन्ध और प्रान्तीयता की सीमा को तोड़कर बाबा विश्वनाथ की प्राण नगरी में सबको एक कर दिया गया है। एक और वहाँ के निवासी, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी और बिहारियों के खान–पान, वेशभूषा, रहन सहन, भाषा, सभ्यता, नृत्यगीत और संस्कार है तो दूसरी ओर यहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र उछल–कूद करते दिखते है, जवानी के जोश में डूबता तिरता युवा वर्ग है तो गावटी बाँधे, चश्में लगाये, गुण्डे – पण्डे और हर गली में संडसा लिए घूमते फिरते साधु हैं। युवकों की यह कहानी काशी की न होकर सभी जगह की है। हर जगह के युवा नेता कहते है कुछ और परन्तु आड़ में कुछ और ही गुल खिलाते हैं। यही हालत आज की फॉरवर्ड बनने वाली छात्राओं की है।

मुख्य प्रसंग से कथा की शाखाएं निकलती गई है और उपन्यास का कलेवर चारों तरफ फैला है कई स्थानों पर मूल कथा मूक हो गई है और प्रासंगिक कथाएं ही एक पर एक आती गई कथाएं अपना उद्देश्य पूरा करके मूल कथा में उसी तरह विलीन हो गई है, जैसे मेन रोड़ में छोटी गलियां। पात्रों के नाम गुण और कर्म के अनुरूप है आरती वास्तव में आरती करने योग्य है, मन में जो आया उसे बेझिझक करती है काम करके दुख भोगने पर उसे कोई पछतावा नहीं हैं, रामकीरत दास आज के दाम नामधारी उन महंतो के प्रतीक है जो सन्यासी होने का ढ़ोग खड़ा करके समाज को गुमराह कर देते है। भगत कहलाने वाले जमुनादास यमुना के प्रतीक हैं। उपन्यास में कभी कथाएं मूल कथा से से मिलकर एक हो गई हैं बीच बचाव में सभी रसों के समावेश द्वारा जहां इसे महाकाव्यात्मक रूप दियागया है। वहां प्रत्येक अंश स्वतन्त्र रूप से वर्णित होकर खण्ड काव्य का आनन्द देता है। कथाकार शिवप्रसाद सिंह ने 'गली आगे मुड़ती है' में न केवल कथावस्तु अपितु शिल्प की दृष्टि से भी औपन्यासिक कला को एक नया मोड़ दिया है।

वस्तु विधान की दृष्टि से कथा को डॉ0 सिंह ने एक काशी की गली की पार्श्वभूमि काशी के युवा आक्रोश की है। काशी के राजा दिवोदास की पुराण कथा में युवा पीढ़ी के प्रथम क्रोध से लगाकर 1967 के भाषा आन्दोलन में उभरे युवा आक्रोश को यहाँ आकार दिया गया है। पुराण को नवीन दृष्टि से, नवीन को पुराण की दृष्टि से देखने की कोशिक की है। गंगा की धारा पंचगंगा घाट, पंडे और हर गली में चिमटा लिए घूमते सन्यासी, यह कहानी काशी की न होकर पूरे भारतीय नगरों की कहानी है।

डॉ0 सिंह की मातृभाषा काशिका या भेजपुरी ही है अतः इस उपन्यास में उनकी कलम से निकले भोजपुरी आंचलिक प्रयोग अत्यन्त ही बेधक और सटीक बन पड़े है। पात्रों की भाषा 'बनारसी' है।

शिष्टता का चोंगा ओढ़ने वाले बुर्जुआ लोग डॉ0 सिंह पर भारतीय संस्कृति को नीचे गिराने का आरोप लगा सकते है, स्याले, खुदक्का, चिपचिपी, कंडम, काउदी, चुपबे हरामी, जैसे शब्द एवं सम्बोधन आजकल सामान्य चल रहे है अधिकांश उपमान अछूते प्रसंगानुकूल और सटीक है व्यंग्य का एक दृश्य प्रस्तुत है अरे वाह रे मिट्टी के शेर तू तो पैरों में चक्की बाँधे लंका और अस्सी की सड़कों पर कुदक्के लगायेगा।

"दिल्ली दूर है"

दिल्ली दूर है – "दिल्ली खण्ड है कथानक की दृष्टि से प्रथम कथा का प्रस्फुटन आनन्द वाशेक के चरित्र, उसके संघर्ष, उसकी प्रेमकथाओं और मानवीय सांस्कृतिक मूल्यों का उद्‌भव 'दिल्ली दूर है' में होता है उत्तर भारत की सारी राजनीतिक गतिविधियों और सांस्कृतिक संरचना को जीवन्तता के साथ प्रस्तुत कर देता है, दिल्ली सल्तनत की कथा ऐतिहासिक यथार्थ की रोमांचपूर्ण गाथा है तो सूफी फकीरों – बाबा फरीद एवं सीदी मौला तथानाथ योगी – रावलपीर और ज्ञानेश्वर के द्वारा एक नई मानवीय संस्कृति का स्वरूप सामने आता है 'साधु फकीरों की साधनाजन्य मानवीय संस्कृति का कोई प्रभाव दिल्ली के सुल्तानों, युद्ध विध्वंस और दीन इलाही के तहत होने वाले जुल्म–जजिया पर नहीं पड़ता। नायक की परम्परा में मानवीयता सदाशयता, क्षमा एवं करूणा का महत्व है आनन्द के चरित्र के इस विकास में कल्पना का विशेष महत्व है, 'जुझौती' (बुन्देलखण्ड) पर फिर आक्रमण न हो, और देविका का उद्वार हो, इसलिए आनन्द वाशेक सफीउल्लाह वाशखुशसानी बनकर दिल्ली पहुंचता है उसका रंगरूप वेशभूषा और भाषा सभी खुशसानी के अनुकूल है 'सफीउल्लाह रजिया सुल्तान का साथ देता है जिससे हिन्दू प्रजा और स्त्रियों की रक्षा हो सकें, जजिया हट सकें।

कथानक का दूसरा अंश प्रेमकथाओं का है। नायक आनन्द की प्रथम प्रेमिका वाम्दत्ता देविका का अपहरण हो जाता है चाहकर भी बचा नहीं पाता है उसे नुसरत

की बुन्देली बेगम बनना पड़ता है वह माँ भी बन जाती है, देविका के अपहरण के बाद सभी ने आनन्द का विवाह दीप्ति से करना चाहा, जो बृजलाल फूफा की भाँजी है, विवाह हो जाता है। तीसरी प्रेमिका चित्रकार हाशिम की बहन नजमा है, जो अपने आपसे एक नज्म हैं गरीब मुस्लिम कन्या का प्यार त्यागमय है।

कथानक का अन्तिम सोपान सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिनिधि साधु फकीरों से सम्बन्धित है नायक आनन्द युग की महान विभूतियों के सान्निध्य में आता है। कथानक में अनावश्यक विस्तार नहीं हो पाता है। एक स्थान पर नरेश त्रैलोक्य मल्लदेव के अन्त की सूचना है। कथानक में "दिल्ली दूर है" 13 वीं सदी के भारत का प्रमाणिक इतिहास सिद्ध होता है।

उपन्यास के 'जुझौती खण्ड' में ही राजा की राजनीतिक, बुद्धिमत्ता, साहस तथा वीरता का परिचय मिल जाता है। दिल्ली खण्ड में इसके इन्हीं गुणों का विकास होता है पर वह यहाँ भटकता हुआ दिखाई देता है। दिल्ली आने पर नायक को भारतीय स्वाधीनता की व्यापक दृष्टि मिल जाती है 'आनन्द' बलबन के समय जुझौती, मेवाड़, कटेहर, चित्तौड़, गुजरात, उज्जयिनी, आदि का संगठन कर संघर्ष में शहीद होता तो उसका चरित्र और वस्तु विन्यास दोनों ही अधिक प्रभावी होते हैं। 'दिल्ली दूर है' में नायक आनन्द अन्त मे थककर वृद्ध हो जाता है। आनन्द का अति मानवीय चरित्र, संघर्ष का बिखरना और हताशा की त्रासदी मन को ऊपर उठाकर नीचे गिरा देती है।

डॉ0 सिंह संवादों के सहारे कथा को आगे बढ़ाते है और ऐसे प्रसंगों को भी उपन्यास में लाते है, जिन्हें थोड़ा सख्त संपादन करके छाँटा जा सकता है। दिल्ली की कथा कहते हुए डॉ0 सिंह मानवता के विकास पर सदैव नजर टिकाए रहते हैं। मध्यकाल की कथा में से वर्तमान हमेशा झाँकता रहता है। ऐसी दुखती रग पर उँगली रखना साहस का काम है।

डॉ0 सिंह की भाषा की रवानी भी बाँधती है, उनकी दृष्टि भी, उनके चरित्र भी। 'दिल्ली दूर है' को पढ़ना एक नये अनुभव से गुजरना है एक बार कथा में प्रवेश कर जाएं तो फिर पुस्तकों की स्थूलता डराती नहीं, उल्टे किताब खत्म किये बिना जी नहीं मानता।

''वैश्वानर'

'वैश्वानर' में डॉ0 सिंह ने ईसा पूर्व 1750 के आसपास के समय की काशी को दर्शाया है। इतिहास के अनुसार के अनुसार वेदों में काशी का वर्णन नहीं हुआ है। डॉ0 सिंह ने वैश्वानर लिखकर ध्वस्त किया है। वैदिक सूक्तियों और उसके अनुवाद को स्थान–स्थान पर प्रस्तुत कर उस काल की रोचक एवं प्रामाणिक प्रस्तुति की। वैश्वानर वस्तुतः जीवन का पर्याय है डॉ0 सिंह का सन्देश है कि जो अपने क्रोध अंह पर विजय प्राप्त कर लोकहित के लिये समर्पित होगा, वहीं आगे याद किया जाएगा, जैसे श्रीराम। हिंसा से अहिंसा और मानव कल्याण की यात्रा ही 'वैश्वानर' है।

'वैश्वानर' उपन्यास का कथानक वैदिक परम्परा को उजागर करता है उपन्यास में कला, इतिहास, प्राचीन संस्कृति की वैचारिकता स्पष्ट रूप से अंकित हैं, इसके अन्तर्गत कथाकार ने अपनी कला की स्पष्ट छाप छोड़तें हुए वैदिक परम्परा का आश्रय ग्रहण करते हुए धनवन्तरि की आयुर्वेदिक परम्राराओं को समेटा है कथा का अंश उतना ही है, जितना मानव जीवन को प्रस्फुटित करने के लिए उपेक्षित है। जीवन दर्शन भी है जो परम्परा से चली आ रही कथा वस्तु है। डॉ0 सिंह ने अपेक्षित कथाओं और घटनाओं को तो लिया ही है। खास तौर से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को भी लिया गया है। पात्रों की मनः स्थितियों के भीतर भी चितंन का स्वर दिया है।

प्राकृतिक आपदा से काशीवासी वीतिहोत्र तथा मुण्डा किरात जन पीड़ित है तो दूसरी ओर चेदि वंशी हैहयराज कार्तवीर्य के आतंक से भी काशी के वीतिहोत्र आतंकित है, अतः क्षत्रवृद्व आर्यजन का परिवार धन्वन्तरि तथा प्रतर्दन की कर्तव्य निष्ठा का भाजन बन रहा है। शौनक व्रात्य संस्कृति को यक्ष संस्कृति से परिमार्जित करके पुनः आर्य जनोचित जीवन जीने की सुगम नीति सिखाने लगे। 'वैश्वानर' प्राणिक चेतना का प्रधान मूल है। शौनक तथा काक्षीवान के पुनः वेद विद्या आश्रम आने के साथ ही कार्तवीर्य अर्जुन काशी की प्रजा, व्यापारी तथा नगर क्षेत्र हेमवर्ण ने स्वतः विचार करके अपनी आय का छठा अंश राजकोष में दान करके राजशक्ति को सबल बनाने का प्रस्ताव किया था दो लाख निपक का सहयोग प्रदान किया। काशी नगर की रक्षा का भार राजकुमार प्रतर्दन अपने चार कुशल कोट्टपालों को सौंप देता है।

अकालवृद्ध केशकम्बली अपने छल–प्रपंच से बाज नहीं आता है। अकाल वृद्व केश कम्बली के वध से काशी की प्रजा को शान्ति मिलती है, राजकुमार प्रतर्दन की समस्या का अन्त नहीं हुआ। युद्धवंशी हैहय के अत्याचार से गांधार से लेकर सप्तसिंधु तक का क्षेत्र हत्या, चोरी, बलात्कार, अग्निदाह आदि से नष्ट हो गया। कार्तवीर्य अर्जुन तो इतना मदांध हो गया कि अपने सगे भ्राता, द्रहयु की प्रजा का भी सर्वनाश कर दिया। अन्त में राजा दिवोदास का राज्याभिषेक हुआ। किन्तु उनकी पत्नी दृशद उनके वाम भाग में नहीं थी। प्रतर्दन की मृत्यु के पश्चात् 17 वर्ष के आयु में अलर्क को युवराज घोषित किया गया।

वस्तु विधान में काशी में ऊँच–नीच का भेदभाव विद्यमान था किरातों को अछूत समझा जाता था। मन्दिर प्रवेश भी निषेद्ध था। वैश्वानर का सामाजिक स्वरूप सरस्वती उपकंठ से पूरब उड़ीसा, दक्षिण शूपरिक, पश्चिम, भृगुकच्छ तथा उत्तर हिमालय तक फैली आर्य जाति के जीवन मूल्यों के ताने बाने से बना है वैश्वानर में जातियों का विभाजन वर्णाश्रम धर्मानुकूल अभी स्थायी रूप धारण नहीं किया है।

आर्य, व्रात्य, वीतिहोत्र, मुण्डा किरात हैं (वैश्वानर की अपनी संस्कृति है) कृषक, राजपरिवार, सैनिक, ऋषि गणिका सबके वेश विन्यास, अपने–अपने ढंग के है वैश्वनार का दण्ड विधान नीति संगत है मृत्युदण्ड, अंगछेदन, देश निकाला दण्ड तीन प्रकार से दिया जाता था मृतक संस्कार वैश्वनार का पूर्णतया वैदिक संस्कार हैं।

"कुहरे में युद्ध"

'कुहरे में युद्ध' मध्यकालीन भारत पर केन्द्रित है प्रमुख घटना स्थल जुझौती (बुन्देलखण्ड) है। इसमें प्रेरणा भूमि के सम्बन्ध में डॉ0 सिंह कहते है। कि मुझे अंधेरा और इतिहास लगभग मिलते जुलते लगते है। वे जब भारतीय वातावरण में अतीत को देखना चाहते है वर्तमान को पहचानने के लिए हमारा इतिहास एक मोटी पर्त जैसा लगता है जो सत्य के मुख की हिरण्मय पात्र से ढंकने की ढ़के रखने की प्रक्रिया छोड़ने को तैयार नहीं लगता। हिन्दू, मुस्लिम सम्प्रदायिकता ने नींद हराम कर रखी है आप पिछले चार दशक से जिस धर्म निरपेक्षता के खूंटे में देश की नैया को बाँधे हुये हैं। उसका न रूपाकार है न आयतन न ही उसकी कोई पहचान न तो विश्वास और आस्था, जो तूफान में तो कर्णधारों के मन में होनी चाहिए।

प्रेरणा बिन्दु अपनी–अपनी पहचान को ढूढने का भाव है जो अपनी जड़ो की ओर लौटने का संकल्प लेकर चला है। यह कार्य अगर भारत में बहुत स्पष्ट रूप से उभरा है, तो उसका कारण हमारे इतिहास की समृद्ध परम्परा है, प्राचीनता हैं।

'कुहरे में युद्ध' तो पूर्णतः जुझौती (बुन्देलखण्ड) पर ही केन्द्रित है क्यों केन्द्रित हुआ? कारण यह है कि मुसलमानी आक्रमण से सर्वाधिक रूप से टकराने का कार्य केवल तीन क्षेत्रों में ही हो पाया सारी पराजय में एक अपवाद रही 'जुझौती'।

'कुहरे में युद्ध' का कथानक महमूद गजनवी के साथ आक्रमणों से आरम्भ होता है। उसने भारतीय संस्कृति को किस प्रकार क्षति पहुचाने का प्रयत्न किया उससे पहले शक और हूणों तक का उद्देश्य नहीं था लेकिन गजनबी के आगमन के बाद इस देश में कुछ ऐसे परिवर्तन होने लगे जिनके दूरगामी परिणाम हुए। इसका उद्देश्य इन देश को लूटना ही नहीं था, अपने राज्य की स्थापना और धार्मिकता के प्रचार का आग्रह भी था। हिन्दू सांस्कृतिक गौरव नष्ट करके कुतबमीनार जैसे गौरव स्थल का निर्माण कराया। जहाँ आज कुतुबमीनार है वहाँ कभी विष्णुपद की पहाड़ी थी जिस पर विष्णु मन्दिर था उसे तोड़कर मस्जिद, कुबुतेइस्लाम कुतुबुद्दीन ऐबक के समकक्ष बनायी गयी थी। उपन्सास के मूल में है कालंजर के शासक त्रैलोक्य मल्लदेव उनके सेनापति आनन्द वाशेक और दिल्ली दरबार। आनन्द वाशेक कथा नायक है उपन्यास के अन्त तक चरित्र छाया रहता है।

तयासी एक क्रूर सिपहसालार था जिसकी सेना के जवान जुझौती के एक शरणार्थी शिविर पर रात्रि के अंधकार में हमला करते है। दस हजार महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया जाता है और हजारों जवानों और महिलाओं को गुलाम बनाकर ले जाया जाता है। बसरा और बगदाद के बाजारो में गुलामों के रूप में बेचने के लिए और ये घटनाएं इतिहास का कटु सत्य है और ऐसी ही कुछ असफलताओं के बाबजूद आनन्द वाशेक अपनी युद्ध नीति से तयासी की विशाल सेना को कालंजर में प्रवेश करने के पहले ही प्रस्थान के लिए विवश कर देता है जितनी जनहानि तयासी के आक्रमण से कालंजर को होती है उससे अधिक तयासी के सैनिक मारे जाते है आनन्द वाशेक की प्रेमिका का अपहरण होता है और अन्ततः इच्छा के विरूद्ध देविका तयासी की पत्नी बनने के लिए विवश हो जाती है।

डॉ0 सिंह का कर्तव्य इतिहास की उन महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों को एक विशेष दृष्टि देना है जो इतिहास को सन्दर्भगत रखते हुए वर्तमान के लिए सन्देश हो।

कथा वस्तु, कथा विन्यास और गतिशीलता में पात्र बाधक नहीं बनते हैं उन्माद का जो लावा सुलग रहा था उसे शांत करने के लिए किसी आनन्द वाशेक की आवश्यकता है।

शिवप्रसाद सिंह ने हिन्दी नवलेखन का आरम्भ माना है। उनकी दृष्टि में नवलेखन 'छायावादी' एकरसता और प्रगतिवादी शून्य नारेबाजी का परिणाम है यह मूलतः 'युवालेखन' के कथाकार है, जिसमें 'आचंलिकता के प्रति सम्मान ग्रामोन्मुखता आधुनिकता बोध और नागरिक भाव बोध प्राप्त होता है।

डॉ0 सिंह को लेखन की वास्तविक प्रेरणा मानवता की हो रही निरीह हत्या से प्राप्त हुई थी। कथावस्तु इतनी साफ और सुस्पष्ट होती है कि पूरे उपन्यास की कहानी समझ में आ जाती हैं। डॉ0 सिंह एक सफल कथाकार के रूप में हिन्दी जगत में सितारे की भांति आकाश रूपी (हिन्दी जगत) में चमक रहें हैं।

डॉ0 सिंह का सारा क्रिया–कलाप साहित्य और समग्र जीवन को उसके एक एक अनुषंग को काल और स्थल के अक्ष पर विवेचनात्मक और सर्जनात्मक पाठ के रूप में रचने का पात्र को अवतरित कर जीवन–यथार्थ को और उसकी विभिन्न स्थितियों को निर्वाचित करने का, उसकी चिन्ता–विचिन्ता का क्रियाकलाप है।

4. कथानक में इतिहास व कल्पना की स्थिति

इतिहास और कल्पना का आपस में सामंजस्य है। उपन्यास के कथानक में ग्रामीण संस्कृति, (मेले, रीति–रिवाज, परम्पराये, तौर तरीके) का आपस में गठबन्धन कर शून्यता एवं खालीपन का लेखक ने बिन्दुवत तरीके से पर्दाफाश किया। वातावरण में उदासी छायी रही। पात्रों के जीवन में घुटन और कम्पन है। बहू और सास के बीच बहनापा था। कनिया ने बाप से रिश्ते का धागा तोड़ लिया, पर वे सास से रिश्ता न तोड़ सकी। महिलाओ की आवाज में सिसकियाँ है आँसुओं से जीवन तर है। जीवन कष्टप्रद एवं गरीबी से पीड़ित है।

काशी के इतिहास में उस कालखण्ड के लिए मोह है, कन्दार्य महाकालेश्वर के लिए, मत्स्योदरी, मन्दाकिनी, वरूणा, आदिकेशव, पांथशाला आदि के लिए मोह पैदा होता है। जैसे, कहाँ मत्स्योदरी? कहाँ वह ताल? कहाँ वह शोभा? कहाँ आज का तेल और कीचड़, में सनी मछोदरी।

मोह से ही शायद राग–द्वेष पैदा होता है सो ही इस कथा के अन्दरूनी वृत्त में जो वाह्य चक्र को चलाता है प्रत्यक्ष तो कीरत – गोमती के बीच प्रणय, राग की सुगन्ध है, चाहे यह अपभ्रंश के दोहे में कहीं गई हो–थोड़े से पानी में तड़फड़ाती मछली जैसी। या भागवत में संस्कृत छन्द में हो: तू ही प्राणियों को प्रेम और स्नेह के बन्धन में बाँधता और मनोरथ सिद्ध कराने के पहले ही उनका वियोग करा देता है। यह लीला हैं?.....[15]

"अलग–अलग वैतरणी"

कथाकार शिवप्रसाद सिंह का प्रथम उपन्यास 'अलग–अलग वैतरणी' 1967 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास काफी भारी भरकम, लगभग 490 पृष्ठ का है, जिसमें इन्होंने करैता गाँव को केन्द्र में रखकर स्वातंन्त्र्योत्तर भारत के ग्रामीण यथार्थ का एक मुकम्मल चित्र प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद वाले वर्षो में भारतीय ग्रामीण जीवन की बाहरी एवं भीतरी सतहों में उभारों एवं पड़ी दरारों का

उसके सामाजिक व आर्थिक परिवर्तनों और मूल्यगत ह्रास तथा मोह भंग, हताशा एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन का बड़ा ही सूक्ष्म, विश्वसनीय और आत्मीय चित्रण हुआ है।

'अलग–अलग वैतरणी' का करैता गाँव अपनी वैयक्तिक विशिष्टताओं के साथ–साथ स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सामान्य गाँव का उसी तरह प्रतीक बन गया है जिस प्रकार "गोदान का बेलारी गाँव"। ......[16] स्वराज होने और जमींदारी टूटने के पश्चात् गाँव में नयी बिरादरी बनने और नये रिश्ते बनने के क्रम में पंचायती चुनाव के पैतरे पृष्ठभूमि का काम करते हैं। पार्टीबन्दी होती है और नये उठते अनपढ़ बदमाशों की पार्टी बनती है।

'अलग–अलग वैतरणी' में दर्जनों किसान परिवारों की कहानियाँ बिखरी पड़ी है। वास्तव में यह एक भूतपूर्व बबुआन जमींदार परिवार के टूटने की कहानी है। टूटन धीरे धीरे बढ़ती जाती है।

छावनी में बबुआन जयपाल सिंह और गाँव के धनी जमींदार सुरजू सिंह में पुश्तैनी शत्रुता है, जिसके मूल में इन परिवारों के एक युवक और एक युवती–देवपाल और राजमति की प्रेम बलि है। वह शत्रुता नये युग के अनुरूप विकसित होती है, और आगे चलकर गिरावट, छल छिद्रहीन मनसूबे और अंधी लाग–डाँट चलती है, जिसके कीचड़ में समूचा गाँव सरोबर है।

उपन्यास में गाँव के जिस वातावरण को लेखक ने चित्रित किया है, उसकी एक विशेषता है, वह अच्छे लोगों को धकिया के फेंक देता है। खलील मियाँ का गाँव से पलायन इंसानियत और शराफत का पलायन हैं। करैता गाँव में अच्छे लोगों की एक कतार है– मास्टर शशिकान्त, खलील, विपिन, देवनाथ, सरूप भगत, पटनहिया भाभी और जग्गन मिसिर। इन्हें देखकर लगता है कि गाँव अभी प्राणहीन नहीं है।

''अलग–अलग वैतरणी' उपन्यास के लेखक शिवप्रसाद सिंह आज के और ईमानदार लेखक है, उन्होंने एक खास सजीव ग्रामीण परिवेश करैता की ठनक पहचानने के बहाने आजादी के बाद के समूचे भारतीय जीवन की तब्दीलियों विसंगतियों, कठोर सच्चाईयों और प्रतिक्रियाओं से सीधा साक्षात्कार करने की कोशिश की हैं। चीजों और स्थितियों के ठीक सामने होने में कभी–कभी उनकी भावुक अतिरंजना आड़े जरूर आती हैं, और जब तक वह सुपरिचित साहित्यिक कौशल भी उत्पन्न करता है''।.....[17] करैता के चित्रण के माध्यम से जिन्दगी के तमाम पहलुओं का इतना विस्तृत सजीव इतिवृत्त कम उपन्यासों में मिलेगा। इसके बाद भी इस उपन्यास में एक चीज नहीं मिलेगी–तीखे आत्मसंघर्ष से प्रेरित गहरी सर्जनात्मक दृष्टि, जो शिवप्रसाद सिंह से अधिक कलात्मक संयम और तटस्थता की मांग करती है। पर शायद जिसमें शिवप्रसाद सिंह का अपना विश्वास ही हैं। धारणा बनी हैं, जिसने उन्हें अपनी उस मूलधारा से अलग कर दिया हो और अपने ग्राम कथाकार के स्थापित दावे को तोड़ने के लिए ही उन्होंने सम्बद्ध जीवन की उपेक्षा की हो, उसे त्यागा हो।

"गाँव के जीवन पर आंचलिक कथाकार के खाते में डाल दिया गया। उन्हें लाख कहने के बावजूद "अलग–अलग वैतरणी" जैसे स्तरीय उपन्यास को भी आंचलिक की श्रेणी में रख दिया।"......[18] ग्राम जीवन के चित्रण का पुंजीभूत रूप "अलग–अलग वैतरणी" अब सचमुच ही लेखक की मेघा की अलग–अलग वैरतणी में बह चला है। शिवप्रसाद सिंह निम्न व पिछड़ी जातियों में नटों मुसहरों–चमारों व लोहार कहार नाईयों की दुर्दशा व उनके विविध रूपी शोषण के जिस व्यापक आयाम को लेकर चल रहे थे।

"अलग–अलग वैतरणी" तक आते आते स्वातंन्योत्तर भारतीय ग्राम जीवन की यह यात्रा नारकीय जीवन के उत्क्रष्टतम रूप तक पहुंच गयी हैं। यहाँ आकर कुछ पढ़े लिखे संवेदनशील नवयुवक शहर से 'इपोर्ट' होकर इस नरक को सुधारने के सपने

लेकर यात्रा में शामिल होते है तो लगता है कि शायद अब कुछ होगा। पर यह क्या? ये तो इस नरक की बजबजाती गलीज से भाग खड़े होते हैं—एकाध छपका ही इनके लिए काफी हो जाता है, इस यथार्थ को झेलने, इससे टकराने की न तो इनमें शक्ति है न धैर्य। यात्रा के ये पढ़े लिखे युवा पथिक अपनी बेहद रूमानी, अतीतोन्मुखी प्रवृत्ति को ही उजागर करते है।.......[19]

'अलग—अलग वैतरणी' में ग्रामीण संस्कृति के लगभग सभी तत्व समाहित हैं। डॉ0 विवेकी राय के अनुसार—

"कथा साहित्य का सबसे उदात्त सांस्कृतिक, आधुनिक और विशाल चित्रांकन है।".......[20]

मात्र सांस्कृतिक परिवेश—निर्माण के उद्देश्य से न हीं वरन कथा के प्रासंगिक दबाब और अभिव्यक्ति की सांकेतिकता के लिहाज से। ऐसे सारे चित्रण बिल्कुल नपे तुले सानुपात, संक्षिप्त हैं।

उपन्यास का आरम्भ करैता में रामनवमी के अवसर पर लगने वाले देवी धाम के मेले से होता है।

"आज ही मेला शुरू हुआ है। कल खत्म हो जायेगा। हर साल रामनवमी को करैता के देवीधाम पर यह मेला होता हैं।".......[21]

त्यौहार ग्राम जीवन की मुश्किलों के बीच चिनगारी की तरह चमक उठते हैं। अलग—अलग वैतरणी में दीवाली होली और मकर संक्रान्ति आदि के चित्रण सामाजिक परिप्रेक्ष्य की गतिशीलता में आंकलित किये गये हैं। लोकगीत और लोक कथाऐं भी है, पर वैसे ही संक्षिप्त और संकेतार्थगर्भित—

"कजरा कई धन बिरवा, आँसुवन फूल।
गरवा कई मनि हरबा, उपजै सूल।।"........22

"फूल परिजतवा झरत होई हैं न।
लरिकइयाँ के नेहिया टुटत होई हैं ना।"........23

नगाड़ों की आवाज का भी वर्णन दिखाया गया है। "अलग–अलग वैतरणी में" में

"डम् डम् डम् डमर डमर डम्।"........24

"शिव प्रसाद सिंह का दीर्धाकारी उपन्यास "अलग–अलग वैतरणी" साहस के साथ एक चुनौती का सामना करता दिखाई देता हैं, क्योंकि लेखक धार के विपरीत दिशा में जाकर नदी पार करने की कोशिश में हैं।"........25

'अलग–अलग वैतरणी' की महत्वपूर्ण उपलब्धि है, भाषा–सम्बन्धी। जहाँ भाषा का स्वभाविक राग नहीं यह उपलब्धि कैसे सम्भव होगी? डॉ0 शिवप्रसाद सिंह में इस राग की स्वाभाविक पकड़ हैं। उन्होंने किसान, बनिहार, हलवाह, चमाइन और चमटोल के भाषागत प्राणतत्व को आत्मसात् किया है। गाँव में गुण्डों की भाषा, चाटुकारों, की भाषा, कास्टेबिल और हैड कॉस्टेबिल की भाषा को समझा हैं"........26

"नीला चाँद"

नीला चाँद का प्रकाशन सन् 1988 में हुआ था। शिव प्रसाद सिंह का तीसरा उपन्यास है। यह उपन्यास काशीखण्ड का ही नहीं, अखंड काशी के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक घटना क्रम का यथार्थ वर्णन है। असल में काशी केवल एक नगरी नहीं है, वह दीर्धकाल से भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक विरोधाभास का केन्द्र रही है। शिव प्रसाद सिंह ने काशी को इसी व्यापक भूमिका में पहचाना है। उन्होंने ऐसे समय का संधान करना चाहा है जिसमें काशी का वह स्वरूप उद्घाटित हो जो त्रिकंटक को भी हिला देता है।

'नीला चाँद' उपन्यास की भूमिका में लेखक ने इस विशिष्ट कालखण्ड को चुनने के कारणों का उल्लेख किया है।

" मैं मध्यकाल की वह काशी देखना चाहता था, जो विदेशी आक्रांताओं से पहले थी। मुझे तदनुरूप किसी ऐसे समय को ढूंढ़ना था जिसने त्रिकंटक को भी हिला दिया हो, जहाँ 'धगद् – धगद् – धगद् ज्वलम्' के भीतर नंदीश्वर के ज्योतिलिंग ने विशाल स्तम्भ की तरह धरा और आकाश को जोड़ दिया हो। वह समय मिल गया जब कर्ण कल्चुरी ने देव वर्मा चंदेल की हत्या की। उस समय की काशी है यह यानी ईसवी 1060 की"........[27]

भाषा का प्रयोग उन्होंने बड़ी सजग दृष्टि से किया है। "नीला चाँद" की भूमिका में लिखा है।

"मैं 12 वीं शताब्दी की पृष्ठभूमि पर परिवेश की सीमा, किन्तु कथ्य की असीमा को बाँधने चला हूँ तो मुझे संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश, बृजभाषा, खड़ी बोली, बृजभाषा की उपभाषाएं बुन्देली, कन्नौजी तो जानना चाहिए न।"........[28]

काशी नरेश कल्चुरी कर्ण ने जैजाक भुक्ति के राजा चंदेली वर्मा की अमानुषिक हत्या कर दी। वे उस समय ध्यानस्थ थे। उनकी रानी ने कर्ण की कामलिप्सा का ग्रास बनने की अपेक्षा पति की चिता में भस्म हो जाना अधिक श्रेयस्कर समझा। बर्बर कर्ण ने कलातीर्थ खजुराहों को भी आग में झोंक दिया। अर्थात साधनारत योगी की रक्ताग्नि, सती की चिताग्नि और कला की ध्वंसाग्नि नीला चाँद की आदि ज्वाला है।

उपन्यास का नायक कीर्तिवर्मा सत्ता और अधिकार मोह से मुक्त एक वीतरागी किस्म का युवक है जो अपनी युवावस्था में ही संसार के प्रति वैराग्य के कारण सन्यासी बनकर संसार भ्रमण कर चुका है''......29

उपन्यास में इतिहास के निर्वाह से अधिक काशी की प्रतीकात्मक सत्ता को महत्व दिया गया। जहाँ पवित्रता अध्यात्म, जीवन और कला मूल्य अपनी पराकाष्ठा पर हों वहीं उनका ध्वंस सर्वाधिक दारूण प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। काशी सत् के मंगल और असत् के विनाशकर्ता शिव की भूमि है। इसलिए वहाँ लास्य और ताण्डव एक साथ सम्भव है इस सांस्कृतिक अवधारणा में वस्तु तत्व की संश्लिष्ट संरचना बहुत अर्थवान हो उठी हैं। सम्भवतः इसीलिए न केवल कीर्तिवर्मा बल्कि माँ शीलभद्रा, रज्जुक, गाहड़वाल नरेश नृपतिचन्द्र, वाममार्गी तांत्रिक और देश भर के अनेक ऐसे शासक काशी में किसी न किसी साभिप्राय संयोग से ऐसे न्यायालय का रूप लेते है जहाँ पक्ष विपक्ष के सारे साक्ष्य एकत्र हों। काशी के स्वाभाविक शासक गाहड़वाल नृपतिचन्द्र से अहंमन्य कर्ण ने सत्ता लगभग छीन ली थी। वे निःसत्व से अपनी पांथशाला में सामंत जैसा उपेक्षित जीवन जी रहे थे।

ऐतिहासिक की चर्चा ही "नीला चाँद" एक क्लासिक उपन्यास है–

"हिन्दी साहित्य में ऐसे उपन्यास इससे अच्छे उपन्यास और हो सकतें है पर ऐसा क्लासिक उपन्यास दूसरा नहीं। इसे आने वाला समय और अधिक स्पष्ट रूप से सिद्ध करता जायेगा।, ऐसा कहने में आज भी मुझे तनिक भी संकोच नहीं रहा है।''......30

इतिहस को लेकर लेखक की दृष्टि के दो स्वर एकदम स्पष्ट हैं। पहला तो यह कि इतिहास एक सजग साधन है, अपनी बात को इतिवृत्तात्मक होने से बचाने का, यानी कलात्मक ढंग से कहने का। इसी से जुड़ी दूसरी बात यह कि इतिहास को

आधार या माध्यम बनाकर वह छूट आसानी से ली जा सकती हैं, जिससे वर्तमान की अमानवीयता को रेखांकित किया जा सकता है।

"ऐतिहासिक घटनाओं की व्याप्ति को लेकर मोटे रूप में इतिहास ज्ञान के दो स्तर होते है। एक में वे मशहूर नाम व उनके काम होते है। जिन्हें प्रायः थोड़ा पढ़ा लिखा आम आदमी भी जानता हैं, और दूसरे में वे आयेंगे जिन्हें मात्र वही वर्ग जानता है जो अध्ययन के क्षेत्र में गहरे उतरता है।"........[31]

"पंजाब गया, सिन्धु गया, पांचाल गया, मालवा गया, एक न एक दिन काशी भी जायेगी.......ऐसे दुर्दांत शत्रु (मुसलमान आक्रमणकारी) आ रहा है।"........[32]

"नीला चाँद" का कथानक इतिहास और कल्पना को आपस में जोड़ता है, 'नीला चाँद' में खजुराहों के राजप्रसाद का वर्णन है। उसमें राजप्रसाद से उठने वाली अग्नि की लपटों के दृश्यों व जंगली झाड़ियों झरबेरी, छेवला, करौदा, की कतारों से ढके उस टीले पर गर्दन लटकाये एक हाथ की हथेली पर मुठ्ठी को पीटते हुये, और दूसरी ओर तक प्रदक्षिणा करते हुए बुदबुदाया।

डॉ0 सिंह ने मानवीय अन्तःकरण में छिपे हुये भंयकर प्रतिशोध भावना का स्पष्टीकरण किया उसके पैरों में विचित्र कम्पन थे। ध्वनियों का भंवरजाल था। आज उन्होंने पहली बार अनुभव किया कि चक्राकार व्रत्त केवल जल में ही नहीं होते, केवल मन में ही होते है, वे सन्नाटे के भीतर भी होते है चक्र जीवन की सच्चाई एवं कसौटी को व्यक्त करते है।

'नीला चाँद' की पूरी कथा में सत्ता संघर्ष में जय पराजय में, हर्ष विवाद में एक आन्तरिक लय हैं, या कम से कम मुझे लगती है। यही लय इसे आदि, मध्य, अन्त में बांधे रहती है, जैसे संगीत की सुर–ताल इन सुरों को पकड़कर और फिर

एक–एक के बाद सुरों को छोड़कर जो आर्यमैन आता था, उसमें ही संगीत के नाद–सौन्दर्य का, शान्ति का साक्षात दर्शन होता है।

'नीला चाँद' काशी के इतिहास और कल्पना का समागम करके उस कालखण्ड के लिए मोह हैं, कन्दार्थ महाकालेश्वर के लिए मत्स्योदरी मन्दाकिनी वरूणा आदि केशव पाँथशाला आदि।

भौतिकतावाद के कारण ऋषि के ऋषित्व का पतन, तप साधु के साधुत्व का पतन एवं वीर–पुरूषों के वीरत्व का पतन समस्त समाज भोग लिप्सा में लिपटा हुआ है।

"यानि ऋषि पतन का अभूतपूर्व साधना–स्थल अब नगरजनों के लिये वैशिक भोग विलास का केन्द्र बन गया है।"........[33]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने पुरूष और स्त्री के सम्बन्ध पर कई कथ्य प्रस्तुत किये है।

लंठनी (वेश्या) उसका पति सामने आकर क्रोध से कांपते हुए बोला–तू मुझे बेटवा देगी? अरे कुल्टा नंगा नाच ही करना था, तो तोहे झोपड़िया कौन बुरी थी।"

जा–जा हिंजड़ा कहीं का। हमसे लड़ना मत, नहीं तुम्हारे तीन पीढ़ी को तार दूंगी।"......[34]

डॉ0 सिंह ने मोह, भ्रम, राग और द्वेष को आपस में बांधा है। उन्होंने काशी से उपज रही नई चेतना का प्रभाव जन साधारण पर डाला हैं। जीवन के विकल्पों का पर्दाफाश किया है। राष्ट्रीय चेतना को पैदा करके संस्कृति और सभ्यता का आपस में गठबन्धन बताया है–

"नाम जानकर क्या करोगे आर्य, उसने कीरत की ओर देखते हुए कहा, "जब दैव की गति वाम दिशा में मुड़ती है तब सामने केवल दुःख होता है। अनुलंघनीय दुःख, सब कुछ रगड़–रगड़कर टूट जाता है, व्यक्तित्व का कोई अंश नहीं बचता है। मुलम्में की तरह जो कुछ चिपका होता है, उतर जाता है, कल्पनाएं बिखर जाती हैं, आशाएँ मुरझा जाती हैं तब केवल एक सत्य बचता है मृत्यु महाकाल"......[35]

खजुराहों, कोणार्क और एलोरा भारतीय पुरातत्वीय एवं प्राचीन संस्कृति के प्रतीक हैं क्या खजुराहों के मंदिरों की युग्म मूर्तियों और उनकी नग्न कामुकता प्रजा को दिखाने के लिए है? क्या यह प्रजा पालन के लिए है?

"खजुराहो या काशी, या किसी भी स्थान पर जाने की प्रेरणा के पीछे मेरे भीतर के सत्य की पुकार होती हैं। एक ऐसी प्रेरणा होती है, जिसके लिए मैं आर्य–अनार्य, ब्राह्मण–वृषल, शुद्र–वर्णसंकर, मंद्य–दुग्ध आदि में विभाजन नहीं करता"......[36]

"मंजुशिमा"

'मंजुशिमा' एक ऐसी अनुपम कथाकृति है जो हमें रचनाकार डॉ० शिवप्रसाद सिंह के साहसी कर्मठ और दृढ इच्छाशक्ति वाले संघर्षशील रूप का साक्षात्कार कराती है। मृत्यु से पंजे लड़ाकर उसे पछाड़ने के लिए लड़ी गयी उनकी लम्बी लड़ाई की सच्ची और कारुणिक दास्तान हैं 'मंजुशिमा'।

अपनी बेटी मंजू पर क्षण–क्षण चढ़ी आती हुई मृत्यु को परे ढकेलने के लिए पिता शिवप्रसाद सिंह की एक अनथक संघर्षगाथा है यह उपन्यास जिसे स्वयं भोगकर उन्होंने लिखा है इसे पढ़ने वालो को कभी सरोज स्मृति कविता की याद आती है, कभी रूसी उपन्यास कैंसर वार्ड की। पर यह उपन्यास इन दोनों से अलग ऊष्मा–भरा और मृत्यु के प्रति निरपेक्ष चिंतन एवं संवेदना से परिपूर्ण है।

"मै इसकी सबलता और दुर्बलता दोनों ही जानता हूँ। यह सबल वहाँ होती है। जहाँ जूझने वाला सख्श अपने उद्देश्य की पूर्ति के बिना धरती छोड़ना अस्वीकार कर देता है, वह मृत्यु के समय भी यमराज को रोक देता है। वह दुर्बल वहाँ होती है जहाँ वह मृत्यु के पहले ही हार मान लेती है। युद्ध के पहले अर्जुनीय मुद्रा में धनुष बाण रखकर बैठ जाता है।"......[37]

'मंजुशिमा' मंजु की जीवन–संघर्ष गाथा हैं वह उसकी किडनी चिकित्सा का वृत्त है। जहाँ 'किडनी ट्रांसप्लांट' से उसे तीन वर्षो तक का आयुष्य–विस्तार प्राप्त होता है, क्योंकि "यह सिर्फ लाइफ को प्रोलांग करने का तरीका है, इलाज नहीं"......[38]

"मंजुशिमा में केन्द्रीय स्मृति मंजु की है। बचपन की मंजु से लेकर उसके युवती होने तक की स्मृति और पुनः रूग्ण मंजु से लेकर 'अलविदा' माँगती मंजु तक की स्मृतिं।

लेखक अपनी स्मृतियों में एक का भी विस्मरण नहीं कर सका है। "बहुत कुछ भुलाना चाहा, सफलता नहीं मिली। घाव कभी भरता नहीं है, उस पर धूल चढ़ती जाती है। जरासा कुदेरने पर टीस जग जाती है।"......[39]

मंजुशिमा स्त्री के महत्व को स्थापित करने वाली शीर्ष कृति है। यद्यपि इसकी भूमि में भारत की शास्त्रोक्त और लोक प्रचलित जैविकहीनता विषयक वह धारणा, जिसे स्त्रीवाद, इंटरनलाइन्ड ऑपरेशन कहते हैं, एकाधिक बार अभिव्यक्त हुई है।
"मंजुशिमा" मृत्युयात्रा की ओर मृत्युबोध के एहसास की कृति है फिर भी इसमें जिजीविषा के लिए जीवन के अन्तिम क्षण तक जीवन के लिए उपाय का

स्वीकार–आग्रह है। यहाँ शिवप्रसाद सिंह का मृत्युबोध अस्तित्ववादी मृत्युबोध नहीं, बल्कि यह आनन्द प्रदायी भारतीय मृत्युबोध है।

"मैने बहुत बाद में जाना कि मृत्यु का सबसे बड़ा परिणाम मानसिक धक्का नहीं होता। मौत की अनिवार्यता को स्वीकार कर हमें तो जश्न मनाना चाहिए।"........[40]

"मंजुशिमा में डॉ० सिंह की बौद्धिक सक्रियता तंत्राचार और ज्योतिष को खारिज करने में भी दिखती है। उसे काले जादू की इस दुनिया में कोई विश्वास नहीं है। यद्यपि वह अपनी पुत्री के उपचार के सन्दर्भ में हितैषियों के परामर्श और अनुरोध के अनुरूप तांत्रिकों और ज्योतिषियों के पास भी जाता है, पर वह प्रेत माध्यम, तंत्रासाधना, ज्योतिष आदि को तर्क पर खरा नहीं उतर पाने और समझ में न आने की चीज होने के कारण अस्वीकार कर देता है।

"मंजुशिमा" डॉ० शिवप्रसाद सिंह प्रार्थना नहीं करते हैं। उनका कोई अभिष्ट आराध्य नहीं है। वह शक्ति के आराधक है। लेकिन जब वह शक्ति नहीं प्राप्त कर पाते है तो उन्हें भी वह उपालभ देता रहता है।

"जिन देवी देवताओं से मै आन्तरिकता से जुड़ा था, हतोत्साहित करने लगी। पर एक विचित्र स्थिति थी। मैं जिन्हें अपना अमोध कवच मानता था विंध्यातवी की माया ने मुँह क्यों फेर लिया? अन्यायी वंचक, शोषक सब हंस रहे है। जीवन भर घूस ले लेकर दर्जनों बैंको में जमा अमित धन से इठलाते रहे है। उनके ऊपर कृपा की वर्षा हो रही थी और मेरे ऊपर निरभ्र वज्रपात"........[41]

मंजु की चिकित्सा के सन्दर्भ में वह अन्त में इस देवी को पुनः पुकारता है।
"देवी योगमाया–माँ अगर कुछ भी पुण्य शेष हो, जो होगा नहीं, तो भी रिक्तहस्त माँग रहा हूँ, तुझसे मंजु को बचा लो, बचा लो माँ।"........[42] पर एक पिता की वह

कातर याचना, वह आर्त पुकार, जो अपनी एक मात्र पुत्री की जीवन रक्षा के लिए परमात्म तत्व से की गयी थी, फलित नहीं हो पाती है।

"मंजुशिमा एक उत्तर आधुनिकतावादी और उत्तर संरचनावादी कृति है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह इस कृति की रचना के पूर्व आंचलिकता, ग्रामीणता, क्षेत्रीयता, स्थलीयता, रोमांसपरकता, सांस्कृतिकता, परम्परामूलकता, ऐतिहासिकता, मध्यकालीनता और आधुनिकता के रचनाकार के रूप में उपस्थित होते रहे है। पर 'मंजुशिमा' में पहली बार डॉ0 सिंह उत्तर आधुनिकतावादी और उत्तर सरंचनावादी के रूप में सामने आयें है।"........[43]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने मृत्यु को विखंडित किया है।

"मृत्यु इतनी आनन्द प्रदायिनी वसा होती है, ऐसा तो कभी जाना नहीं। मैं तो इतने दिनों से इसे प्यार से बुलाता रहा। पर वह शान्ति नहीं मिली। तुलसी बाबा, तुम्हें क्या कहूँ? 'जनमत मरत असह दुख होई' तुझे दुःख क्यों नहीं हुआ बेटी। इतनी खुशी होती है मरते वक्त?"........[44]

"मंजुशिमा" जिस रूप में लिखी गई कृति है वह उसी रूप में लिखी जा सकती थी। यह मंजू की त्रासदी नहीं है, त्रासदी उसकी नहीं होती जिसकी मृत्यु होती हैं, बल्कि उसकी होती है जो उस समय मृत्यु के दुर्वह बोझ को झेलने के लिए रह जाता है, इस दृष्टि से यह पिता रूप लेखक की त्रासदी है।

यह उपन्यास मात्र मंजु की दुःखद कहानी न होकर हमारे बीमार सामाजिक ढ़ाँचे का अनिवार्य हिस्सा बन गया है। आततायी परिस्थितियों से जूझता हुआ पिता तथा असाध्य रोगो को झेलती हुई पुत्री का संघर्ष एक साथ भी है। अलग–अलग भी। दोनों के मानसिक तनाव में कई कारण हो सकते हैं। किन्तु उसके कारण में कोई

फर्क नहीं है। संघर्ष के कई आयाम है। 'सरोज स्मृति' की तरह 'मंजूशिमा' एक संवेदनशील पिता के मानसपटल पर पहली बार अंकित होकर सर्जनात्मकता की दुनिया में आयी।

डॉ0 सिंह ने उन क्षणों को रचना की महत्वपूर्ण इकाई बना दिया है, जिन क्षणों का वह प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं भुक्तभोगी भी है।

"शैलूष"

'शैलूष' का प्रकाशन सन् 1889 ई0 में हुआ था। शैलूष में लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर खानाबदोश नटों के जीवन में संघर्षो को लेखक ने परत–दर–परत उकेरकर संजोया है। यायावरी जीवन में घटने वाली तमाम बाह्य शक्तियों के दबाव, अत्याचार, अन्याय और छल–कपट को डॉ0 सिंह ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन्त कर दिया है। बनारस के निकटवर्ती कमालपुर और रेवतीपुर कथा के केन्द्र में है। इस उपन्यास में जीवन की संवदेनक्षम सच्चाइयों और मानवीय संवेगों का सहज चित्रण भी उभरकर सामने आया है। कबीलाई जीवन के हिस्से में आये आभाव और अस्मिता के संघर्ष को साकार करने वाले डॉ0 शिवप्रसाद सिंह इस सम्बन्ध में कहते है।

"आपको दुःख हुआ कि नटों को बनाफर कहा गया है। मैं आपके क्लेश को समझ रहा हूँ, पर आपको 'राजपूत' शब्द से इतना मोह क्यों हैं? स्मिथ से लेकर 'स्ट्रगल फॉर एन एंपायर' राजपूतों की उत्पत्ति पर तरह–तरह के मत व्यक्त किये गये। 'भर गौड़' 'कंदरवासी', 'पुरातन गिरिजनों' की सन्तानें कहा गया। आप इन लोगों में अपनी गणना कराने के लिए ब्याकुल न हों, अगर आपको कबीलाई संस्कृति का ज्ञान होता तो आप खुद ही राजपूतों के लुभावने सिंहासन को लात मार कर चल देते ईस्वी पूर्व ड़ेढ़ सौ वर्षो से लेकर ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी तक जो साम्राज्य उत्तर भारत पर छाया रहा वह है शक और कुषाण".......[45]

'शैलूष–उपन्यास में समाज में व्याप्त ऊँच–नीच की ऐतिहासिक परिभाषाएं और मान्यताएं कदम कदम पर सिर उठाती है। शिवप्रसाद सिंह ने स्वातंत्र्योत्तर इतिहास को सूक्ष्मता से छुआ हैं जिसमें विषमता, गरीबी, भावुक आशावाद और उच्च वर्ग के लोगों की तिकड़म और चालाकियों को बयान किया है। जीवन्त पात्रों के ईद गिर्द डॉ0 सिंह ने वर्ण–व्यवस्था वर्ग भेद और आजादी के बाद पनपे चालाक लोगों के हाथों छले जा रहे मासूम कबीलाई और निचले तबके को वाणी दी है।

उपन्यास के शुरू से अन्त तक लड़ाइयाँ, कत्लेआम, छुरेबाजी, बन्दूकों, रिवाल्वरों की धाँय–धाँय भालों की नोंक, आगजनी, अपहरण, बलात्कार, हत्या आदि वारदातें कदम–कदम पर पन्ने दर पन्ने होती रहती है। इन लड़ाइयों के मूल में है साठ एकड़ जमींन जो सरकार द्वारा गांव रेवतीपुर में बसे नटों व चमारों को आबंटित है। इसकी बाकायदा लिखा–पढ़ी हो चुकी है। लेकिन गांव के भूमिपत ब्राह्मण घुरफेकन तिवारी इसे हड़पना चाहते है यह लड़ाई घुरफेकन तिवारी और जुड़ावन कबीले के नटों के बीच होती है।

'शैलूष' में नटों के बहाने पूरी निम्नवर्गीय संवेदना के रेशे–रेशे को अलग करके नंगी आँखो से देखने की तकलीफ देह कोशिश है। बहती और बजबजाती हुई सुअर–जिन्दगी की खोह में उतरकर शिवप्रसाद सिंह जी उसकी समूची सत्तालय तथा तमतमाती हुई कोशिशों के सहारे एक ऐसे दृश्य की रचना करते है। जो देखा जाते रहने के बाबजूद अभी तक नहीं देखा गया है। यायावर कबीले शुरू से ही उनकी जिज्ञासा के केन्द्र रहे हैं, अपनी छावनी के इर्द गिर्द मुसहर, कंजड़, नटों के खेमों में रहने वाले सुडौल, गठीने बदन के लोगों, उनकी चुलबुली अदाओ, दोपहर का सुनसान दरवाजों पर बैठकर गाँजे का दम लगाकर आल्हा गाते नटों को उन्होंने बचपन से ही इतना निकट से देखा था, कि उनका तिरस्कृत, उपेक्षित जीवन उनके लिए कभी रहस्य नहीं रहा। मनुष्य के इतने बड़े अंश को पशु के

धरातल पर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करने का जिम्मेदार वे स्वयं को मानते हैं।

'शैलूष' में शिवप्रसाद सिंह ने कमालपुर और रेवतीपुर गाँवों के समसमायिक जीवन यथार्थ को उजागर किया है। दलितों और उपेक्षितों को वाणी देने वाला यह अपने किस्म का जबरदस्त उपन्यास है। शिवप्रसाद सिंह समाज के उपेक्षित तथा निचले तबके के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं। नटों, बंजारो के जीवन में उनकी खसी दिलचस्पी हैं, 'शैलूष' उपन्यास ने ब्राह्मण वर्ग को नाराज किया है, ठाकुरों को नाराज किया है, और समाज के उन वर्गो को नाराज किया है, जो केवल एकाधिकार का पाठ जानते है और विसंगतियों में ही अपनी संगति और अनुराग पाते है। बनाफरों ठाकुरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डॉ0 सिंह के विचारों को लेकर गहरे विवाद का विषय बना।

"एक ओर मुझे ठाकुर कोस रहे है दूसरी ओर ब्राह्मण। अपनी कथा कृति में मैने इन पर जो चोट की है उससे ये लोग रूष्ट हैं।"........[46]

'शैलूष' में सामाजिक यथार्थ और अपने चारों ओर की सही स्थितियों का एहसास बिधरी को मृत्यु–शैय्या पर लेटे–लेटे होने लगता हैं–

"यह सब धोखा है। प्रशासन बिक चुका है। जातिवाद के नाम पर शूद्र हरिजनों और नटों को न्याय दिलाने के लिए कोई उच्च वर्ग का अफसर या वकील तैयार नहीं हो रहा है, क्योंकि न तो नट, न तो चमार, उस तरह का लिफाफा पेश कर सकते है, जैसा कल घुरफेकन जी ने डॉक्टर गुप्ता और डॉक्टर सरोज को धमकाया। यहीं यह संकल्प भी समाचार की सुर्खी बन जाता है, सरकार द्वारा आवंटित भूमि न तो कोई नटों से छीन सकेगा न तो चमारों से".......[47]

उपन्यास के मूल में है साठ एंकड़ की परती जमींन जो सरकार द्वारा रेवतीपुर में बसे नटों व चमारों को आवंटित है। इसकी बाकायदा लिख–पढ़ी भी हो चुकी है। लेकिन गाँव का ब्राह्मण भूमिपत घुरफेकन तिवारी उसे हड़पना चाहता है। वह अकेले नटों से लड़ नहीं सकता था अतः उसकी माँ समझाती है।

"अगर चमारों में भरम फैला सको तो काम बन जायेगा। उनसे कहो कि नट सारी परती पर कब्जा करने के लिए तैयार होकर आये है। बस नटों और चमारों में लड़ाई करवा दो और अलग खड़े होकर तमाशा देखो।"......[48]

'शैलूष' में चित्रित नटों की औरतें लोगो के हमल को गिराने और हमल को बचाने की अचूक दवायें भी देती तथा बाँझपन और नामर्दी मिटाने की दवायें भी यदा–कदा वितरित करती रहती हैं।

"कबीलाई जीवन का पहला हिन्दी उपन्यास परिवर्तन की दहलीज पर कथाक्रम को ले जाता है। पिछले दिनों मराठी में "लक्ष्मण माने" की आत्मकथा छपी, जो इसी कबीलाई जीवन की भीतरी दास्तान है। यह कहा जा सकता है कि 'दया पवार' की अछूत तथा 'लक्ष्मण माने' की पराया और शैलूष की कथा व्यथा की जड़े बहुत गहरे आपस में मिली हुई हैं। अर्थात देश का सांस्कृतिक धरातल सी संवेदना के साथ सांस ले रहा हैं।"......[49]

जीवन की विभीषिकाओं के बीच भी शैलूष–पुत्रों के स्वाभिमान उनके विश्वास उनकी परम्पराएँ व मान्यताएँ भी बरकरार है। लेखक ने इनके चित्र भी पूरी कुशलता से खींचे है।

“औरत”

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह का पाँचवा उपन्यास 'औरत' जो सन् 1990 ई0 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास के माध्यम से डॉ0 सिंह ने समाजशास्त्रियों और सरकारी संस्थाओं के विभिन्न तर्को को खोखला सिद्ध किया है। जो कहते है, कि भारतीय नारी अब अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई है। उसे समानाधिकार मिल गये है। वह पुरूष से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ है। आज की नारी अपनी अस्मिता को पहचानने के काबिल हो गई है। इतना कुछ होने के बावजूद वास्तविकता यह है कि नारी आज भी उपेक्षित है। समाज के कठोर बन्धनों से बंधी है उसका प्रगतिशील होना इस सामाजिक व्यवस्था को सहन नहीं हो पाता है और उसे खींचने के लिए सभी सम्भव प्रयास किये जाते है। भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। यह वह औरत है, जिसका चेहरा, जिसका व्यक्तित्व सरकारी आंकड़ो में दिखाई गई औरत से पूरी तरह भिन्न हैं यह उपन्यास खुशफहमियों के अंधेरे में उजाले की तरह किरण है, जिसके द्वारा पाठक औरत के व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों को वास्तविक स्वरूप में देख सकता है।

उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक औरत का अस्तित्व हावी है, जिसका नायक शिवेन्द्र है, जो एक समाजशास्त्री है और अपने मित्र प्रेमस्वरूप के पी0एच0डी0 शोध प्रबन्ध का निर्देशक है। शोध प्रबन्ध भी नारी विषय से सम्बन्धित हैं। जहाँ प्रेमस्वरूप चाहता है कि वह अपनी शोध सामग्री हेतु गांव गांव घूमकर, महिलाओं से बात करें वहीं दूसरी ओर शिवेन्द्र ऐसे नहीं चाहता, वह एक व्यावहारिक व्यक्ति हैं। वह घूम–घूम कर बात करके सामग्री एकत्र करने का विरोध करते हुए कहता है कि इस शोध प्रबन्ध के निर्णायक वही समाजशास्त्री होते है, जो नारी जागरण पर शोध कराकर विद्या मन्दिरों की ऊँची कुर्सियों पर बैठे रहते है। इस उपन्यास से उपन्यासकार ने कुछ मुख्य तत्वों को प्रमाणित किया है। वर्तमान समय में हर काम स्वार्थ सिद्धि का साधन बन चुका है। चाहे वह शोध कार्य हो, तथाकथित समाज

सेवा या राजनीति हो यहाँ तक की पारिवारिक ढ़ाँचा भी निजी स्वार्थो की चक्की में पिसकर चरमरा गया है। और इन सब बातों से सर्वाधिक प्रभावित है औरत, जिसकी बात इस उपन्यास में की गई है। वह न केवल पूर्वांचल, बल्कि समस्त भारतीय औरतों का प्रतीक है।

शिवेन्द्र को लेकर उसके चरित्र पर कलंक लगाया जाता है पर वह अपने निश्चय पर अड़िग रहती है। उसके व्यक्तित्व के बारे में शिवेन्द्र प्रेमस्वरूप से कहता है।

"वह शायद सोनवाँ, राजी रोशन सबसे अलग किस्म की औरत हैं। वह बहुत साहसी महिला है। उसे कोई चरित्रहीन कहे तो वह तिनककर चंड़ी नही बनती थी, बल्कि प्रतिशोध के लिए चरित्र संचित करती थीं।"........[50]

नारी की दुर्दशा की कहानी न तो राजी, मुखिया चन्द्रा और सोनवाँ से शुरू होती है और न ही खत्म होती है। हजारों वर्षो का भारतीय इतिहास कहता है कि नारी रत्न है इसी रत्न को पाये बिना पुरूषों ने सारी उपलब्धि को बेकार समझा है। बेशकीमती होने की इस मान्यता ने नारी पर कब्जा करने की बेइन्तहाँ इच्छा को जन्म दिया है। हर युग में उस पर ज्यादती की गई हैं उसकी भावनाओं को बुरी तरह कुचला गया है।

नारी के अबलापन के प्रति सहानुभूति ही नहीं, प्रबल आक्रोश भी है। जिसकी अभिव्यक्ति करता हुआ कहता हैं, "इस प्राणी को दारा कहा जाता था। दारा का मलतब होता है 'चीथ फाड़कर फेकने लायक चीज' सारे इतिहास को देखो, जहाँ सीता चीथड़े–चीथड़े कर दी गई, ईश्वर पुत्र को जन्म देने वाली औरत इसीलिए ठोकरें खाती फिरी, क्योंकि उसने बिना विवाह के पुत्र जना था। यशोधरा का सब कुछ लूटकर महामानव उसे तृष्ण कहकर चला जाता है।"........[51]

औरत के लिए तो सारा समाज ही–मकड़ जाल बन चुका है। जिसमें से वह चाहते हुये भी बाहर नहीं निकल सकती है। कभी उसे अबला, सुखिया होकर सुदर्शन की वासना का शिकार होना पड़ता है। कभी वह चन्द्रा बनकर सम्पत्ति के लालची रिश्तेदारों द्वारा प्रताड़ित की जाती है, कभी राजी और रोशन बनकर ससुर के षड़यन्त्रों का निशाना बनती है, तो कभी सोनवाँ के रूप में सोबरन राय जैसे तथाकथित धर्मपिता के हाथों जीते जी मरने जैसी स्थिति में झोंक दी जाती है। शिवेन्द्र जैसा साहसी युवक सुरक्षा का प्रतीक बनकर सामने आता है, पर अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता है। शिवेन्द्र भी अप्रत्याशित परिस्थितियों के सामने कई बार स्वयं को असहाय महसूस करने लगता है। ''इस मुल्क का दुर्भाग्य है कि बिना स्वार्थ के गरीबों और मजलूमों की सच्ची मदद करने वाले बहुत थोड़े लोग है। इसीलिए सुदर्शन तिवारी अगर घनसाम को खरीद लेते है, तो मुझे अचम्भा नहीं होता। मैं क्या करूँ वैसी जहालत में''......[52]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का यह उपन्यास स्त्री पर्याय 'औरत' शब्द से अवश्य अभिहित किया गया है। जिसके नाम से लगता है कि 'औरत' में स्त्रीत्व की कहानी होगी स्त्री जीवन से सम्बन्धित होगी। यह है भी लेकिन सकारात्मक रूप में नहीं नकारात्मक रूप में। यह स्त्री की कथा को प्रस्तुत करता है। 'औरत' में डॉ0 सिंह ने नारी समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास किया है औरत की समाज में क्या पहचान है? इसे शिवप्रसाद सिंह ने विविधतापूर्ण तरीके से व्यक्त किया है।

औरत उपन्यास में डॉ0 सिंह ने समाज में बिगड़ती राजनीति को भी कथ्य के बीच उठाया गया है। जातिवाद का बोलबाला दिखाया गया है। तो दूसरी ओर उपन्यास के नायक शिवेन्द्र का नीची जाति के घरों में बिना छूत की भावना से भोजन करते भी दिखाया हैं। हिन्दू मुसलमानों के आपसी मजबूत रिश्ते को भी डॉ0 सिंह ने बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया हैं। इसके मुख्य पात्र शिवेन्द्र का अपने शोध छात्र से समाज की बुराईयों पर विचार करते हुए–

"सुनो दोस्त, इस मुल्क का दुर्भाग्य है कि बिना स्वार्थ के गरीबों और मजलूमों की मदद करने वाले बहुत थोड़े लोग है। हमारी सरकार को मालूम ही नहीं है। जमींन को फाड़कर पेड़ नहीं उगता है क्या? पेड़ उगकर अपनी जड़ों का ऐसा जाल रच देता है जमीन के गर्भ में, भीतर जो सारी ऊपरी सतहों को फटने या बिलगाने की ताकतों का हमेशा के लिए खत्म कर देता है। ....पंडा पुरोहित, सांमत–महाजन, भूतपूर्व या अभूतपूर्व जमींदार इन जड़ों से नहीं जुड़ते। कभी जुड़े नहीं। क्योंकि ये तो फल खाने वाले और फूल मसलने वाले लोग है। सरकार तो इतनी जुड़ी है कि इनकी रक्षा का ठेका ले लिया है।"........[53]

भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है यह एक वह औरत है जिसका चेहरा जिसका व्यक्तित्व सरकारी आँकड़ो में दिखाई गई औरत से पूरी तरह भिन्न हैं। ऐसा लगता है कि पहली बार एक पुरूष कथाकार ने औरत की मानसिकता के अन्दर झाँककर, उसकी व्यथा के लिए बहुमुखी यथार्थ को कथा की सर्जनात्मकता प्रदान की है।

'औरत' उपन्यास का कथानक देश की मिट्टी से गहराई तक जुड़ा हैं सम्पन्न और ऊँची जातियों के लोग गरीबों व दलितों की इज्जत आबरू से किस प्रकार खेलते है औरत की भी क्या दुनिया होती है। समाज ने हमेशा उसका शोषण किया सामाजिक आर्थिक एंव दैहिक।

"गली आगे मुड़ती है"

'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 सिंह का दूसरा उपन्यास था इसका प्रकाशन सन् 1973 में हुआ था। जो स्वतन्त्रता के बाद वाले वर्षो की एक अहम् राष्ट्रीय समस्या युवा आक्रोश युवा–असंतोष, या युवा–विद्रोह को समर्पित है। एक संवेदनशील समाज चेता कथाकार होने के नाते डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने इस उपन्यास में अपने समय

की चुनौतियों से रूबरू होने का खतरा मोल लिया है। उपन्यास के प्रारम्भ में आयोजित नुक्कड़ सभा में उपन्यासकार ने इस बात की स्पष्ट घोषणा की है कि–

"युवा आक्रोश पूरे समाज में फैली वस्तु और उसको ठीक से समझने के अभाव में न तो उसका सही निदान हो पा रहा है और नहीं उसे सही दिशा देने की कोशिश।"........54

कथाकार ने पूरे विश्व में एक साथ धधकती हुई इस ज्वाला के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण रखते हुए साफगोई ढ़ंग से उसके विभिन्न पहलुओं को न केवल सामने रखा अपितु पाठक वर्ग को निर्णायक स्थिति में ले जाकर स्वयं मौन हो गया है। 'गली आगे मुड़ती है' में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करने में लेखक को अद्‌भुत सफलता मिली है। काशी में गुजराती, बंगाली, मराठी, राजस्थानी, सिंधी, मुस्लिम, बिहारी, नेपाली एवं विदेशी सभी की वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन, संगीत–नृत्य, गीत–साहित्य सबका न केवल विवेचन हुआ है, अपितु उसके बीच तादात्म्य स्थापित किया गया है।

पात्रों के नाम भी गुण और कर्म के अनुरूप है आरती वास्तव में आरती करने लायक है, मन में जो आया उसे बेहिचक कर डाला। काम करके दुःख होने पर भी कोई पछतावा नहीं है। राम कीतर दास आज के दास कहलाने वाले उन महंतों के प्रतीक है जो सन्यासी होने का ढ़ोग खड़ा करके समाज को गुमराह कर रहे है। वहीं भगत कहलाने वाले जमनादास यमुना का प्रतीक अपनी राधारानी रूपी प्रेयसी पत्नी के भक्त है और हर क्षण उसी की याद में तड़पते रहते है। हरिमंगल जब तक रहे, मंगल ही रहा। मरते समय भी अमंगल की छाया उनके पास नही भटकती है। किरण प्रकाश पुंज है। रामानंद के जीवन में जब तक रही प्रकाश फैलाये रही, और सबके ऊपर आनंद ही है जो सबको आनंद देता है परन्तु स्वयं अंत में आनन्दित नहीं हो पाता। वह आनन्द को स्वयं के लिए नहीं सम्भाल पाता दूसरों

को ही देता है निरन्तर प्रयास करने के बावजूद उसे अन्त में पीड़ा ही हाथ लगती है।

काशी के युवा और विद्यार्थी, पंडा, गुंडा, साधु, मठ, विश्वविद्यालय, अध्यापक, मल्लहा, तस्कर की शक्लें यहाँ बतायी गई हैं। इनके क्रिया कलाप गली में है। वास्तव में यह एक राजनीतिक चेतना प्रधान उपन्यास है अर्थात स्वतंत्रता पूर्व की राजनीति गाँवों और सड़कों से होकर शहर की ओर अग्रसर थी परन्तु इसके विपरीत स्वातंन्त्र्योत्तर राजनीति पूंजीपति वर्ग और सत्ताधारी, गुण्डों के हाथो में गिरवी होकर गलियों ऊघती संस्कार विहीन और निरूदेश्य होकर बंधुआ मजदूर के समान उनके हाथों का खिलौना होकर रह गयी है।

'गली आगे मुड़ती है' में अलग अलग वैतरणी के ग्रामांचल से हटकर काशी जैसी सांस्कृतिक नगरी के जीवन्त पात्रों के दर्शन होते है। मुख्य प्रसंग से कथा की शाखाएं निकलती गई और उपन्यास का कलेवर फैला है। कई स्थानों पर मूल कथा मूक हो गई है, और प्रासंगिक कथाएं ही एक पर एक आती गई है। कथाएं अपना उद्देश्य पूरा करके मूल कथा में उसी तरह विलीन हो गई है। आस्था और लोक विश्वास पर भी जोर देकर कहा है–''बोलो–बोलो गंगा मइया की जै, बाबा विश्वनाथ की जै''......[55] बनारस की आकृति व संस्कृति को डॉ0 सिंह ने लिखा है–''बनारस भी क्या अदा से बसा हुआ शहर है।

गंगा को धनुषाकार होना था यही क्यों हुई और यदि हुई ही तो उसने अपने सारे मरोड़ को एक शहर में क्यों बदल दिया? इसे देखकर लगता है जैसे कोई तपस्वी, कुमारी अपनी बलखाती कमर पर संस्कृति का कलश धरे चली जा रही हैं, हाय, यह छत्राकार ज्योति कितनी शाश्वत और अमर है।''.........[56]

युवा आक्रोश जैसी ज्वलन्त एवं सब के लिए सिरदर्द समस्या को इस उपन्यास में सहज एवं निर्लिप्त होकर प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की चिर–परिचित लीक से हटकर डॉ0 सिंह ने समूचे विश्व में धधकती ज्वाला के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखकर साफगोई से उसके विभिन्न पहलुओं की तह तक जाकर मनः स्थिति को दिखाया है। छात्र आन्दोलन चरम सीमा पर पहुंचकर छात्र–नेताओं के हाथ से उसी तरह निकल जाता है, जैसे अपनी सुविधा के जाल में फंसकर आदमी गलत कार्य कर बैठता है। कथा नायक रामानन्द, जो बनारस की एक–एक गली से परिचित हैं, अन्त में जाकर किरण के दरवाजे से निराश मनः स्थिति में लौटते समय गोलघर की भूल–भुलैया में भटक जाता है। सुविधापरस्त जीवन बिताने की चाह एवं मन की अपरिपक्वता उसे कहीं का नहीं रहने देती है। गणेश तिवारी से रक्त की दाद वह पूरे उपन्यास में देता है। परन्तु मृगतृष्णा की तरह कभी स्कॉलरशिप लेकर विद्वान बनने का ख्वाब देखता है, तो टाप न कर पाने पर नेतागिरी करके रोब गालिब करना चाहता है। जीवन साथी के चुनाव में भी निश्चय की दृढ़ता के अभाव में कभी जयन्ती तो कभी किरण के पीछे भागते हुए अन्त तक डॉ0डोल रहता हैं और कहीं का नहीं होता। यही हालत सभी युवा छात्रों की है। छात्र नेताओं की काली करतूतों का बेलाग चित्रण करके कथाकार ने सीधे सादे छात्र छात्राओं को गुमराह करने की उनकी मनोवृत्ति पर करारा व्यंग किया है।

"दिल्ली दूर है"

'दिल्ली दूर है' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1993 ई0 को हुआ था डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 13वीं, 14वीं सदी के संघर्षपूर्ण भारतीय जीवन पर 'दिल्ली दूर है' दिल्ली खण्ड को एक ही उपन्यास के दो खण्डों के रूप में प्रस्तुत किया गया हैं। 'दिल्ली दूर है'– दिल्ली खण्ड है 600 पृष्ठों का उपन्यास है जो उत्तर भारत की सारी राजनीतिक गतिविधियों और सांस्कृतिक संरचना को जीवन्तता के साथ प्रस्तुत कर देता है। यदि दिल्ली सल्तनत की कथा ऐतिहासिक यथार्थ की रोमांचपूर्ण गाथा है, तो सूफी फकीरों बाबा फरीद एवं सीदी मौला तथा नाथ योगी रावलपीर और

ज्ञानेश्वर के द्वारा नई एक मानवीय संस्कृति का स्वरूप सामने आता है, यह सच है कि इन साधु–फकीरों की साधनाजन्य मानवीय संस्कृति का कोई प्रभाव दिल्ली के सुल्तानों, युद्ध, विध्वंस और दीन पनाही के तहत होने वाले जुल्म जजिया पर नहीं पड़ा। नायक अवश्यक ही अनुप्रमाणित होता है क्योंकि उसकी परम्परा में मानवीय सदाशयता, क्षमा एवं करुणा का महत्व है। यह भी सच है कि आनन्द के चरित्र के इस विकास में कल्पना का विशेष योगदान है। यह उपन्यासकार की विशिष्ट उपलब्धि है। जुझौती पर फिर से आक्रमण न हो और देविका का उद्धार हो, इसीलिए आनन्द वाशेक, सफीउल्लाह, वाशखुरासानी बनकर दिल्ली पहुंचता है। उसका रंगरूप, वेश भूषा और भाषा सभी खुशसानी के अनुकूल है वह सन्देह से परे है। इसके पहले भाभी जू पद्यरक्षिता और उनके पति मूर्तिदेव शर्मा दोनों मुसलमान बनकर दिल्ली में यमुना के किनारे नॉन और मिठाई की दुकान खोलकर वाशेक के काम में सहयोग देते है। दूसरी ओर दिल्ली के प्रतिवेगी मेवात के यादव भट्टी शलिग्राम और मल्का के नेतृत्व में दिल्ली हुकूमत के जुल्म के प्रतिरोध में छापामार लड़ाई लड़ते रहते है।

तीसरी ओर कटेहर के राजपूत प्रथुराणा के नेतृत्व में प्रतिरोध करते हुए अवसर मिलने पर तुर्को को हत्याकाण्ड का दृश्य दिखा देते है। जुझौती, मेवात और कटेहर तीन ही संघर्ष केन्द्र बने रहे है। दिल्ली की सल्तनत, अपार शक्ति, मजहबी सियासत और बर्बर आक्रमण के द्वारा इन तीनों को नष्ट कर देने चाहती है।

डॉ0 सिंह ने तीनों के संघर्ष और क्रमिक पराजय का मर्मान्तक अंकन किया है। मेवाती तो नुसरत की कन्या शकीला का अपहरण कर लेते है, पर आनन्द यह अनुचित कर्म नहीं देख सकता। वह शलिग्राम और मल्का से शकीला का उद्धार कर नुसरत को पास भेज देता है। सभी चकित है। देविका के अपहरणकर्ता के साथ ऐसा व्यवहार आश्चर्यजनक है और आनन्द मेवातियों को संगठित प्रतिरोध का परामर्श देता है। इसी प्रकार पृथुराणा को भी। पर ये दोनों तुर्को के अत्याचार से

क्रुद्ध होकर उन पर उसी प्रकार का प्रहार करते है आनन्द परिणाम सोचकर परेशान रहता है।

सफीउल्लाह रजिया सुल्तान का साथ देता है, जिससे हिन्दू राजा और प्रजा, स्त्रियों की रक्षा हो सके। जजिया हट सके। वह मल्का के सहयोग से जजिया के विद्रोहियों को दबाता है। आनन्द ने हरियाणा की ओर जजिया के लिए होने वाले अत्याचारों को देखा है रजिया से अनुरोध करता है पर सुल्ताना जजिया नहीं हटा पाती है।

"आनन्द पीड़ा से मुस्करा पड़ा–कापिल्य (फर्रूखाबाद), उद्देहिक (बुलन्दशहर) की ओर जा रहे है यानी अवध के किसानों ने जी जान से इस सत्ता को उखाड़ फेंकने का निर्णय लिया है।"....[57]

कथानक का दूसरा अंश प्रेम कथाओं का है। नायक आनन्द की प्रथम प्रेमिका और वागदन्ता देविका का अपहरण हो जाता है, चाहकर भी बचा नहीं पाता है। उसे नुसरत की बुन्देली बेगम बनना पड़ता है। वह माँ भी बन जाती है। वह आनन्द को आजीवन प्यार करती रहेगी, पर अब अपना नहीं कह सकती है। दिन रात उसी की चिन्ता बनी है। वह विवाह कर ले उसे देविका एक बार देखना चाहती है साथ ही आनन्द भी उसे देखना चाहता है लेकिन आनन्द साहस नहीं कर पाता। नुसरत की मौत के बाद भी वह आनन्द के पास लौट नहीं सकती। वह हिन्दू विधवा के रूप में रहेगी। माँ का कर्तव्य पूरा कर जोगन बनेगी। आनन्द की मृत्यु के बाद चिता में प्रवेश करना ही हैं।

कथानक का तीसरा अंश सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिनिधि साधु फकीरों से सम्बन्धित है नायक आनन्द युग की महान विभूतियों के सान्निध्य में आता है। लाहौर की प्रथम यात्रा में ही बाबा फरीद से उसका सम्पर्क हुआ था। एक ओर वह

तुरूकों–मुसलमानों से देश व धर्म की रक्षा के लिए आजीवन संघर्ष करता हैं। पर संस्कृति के साधकों के साथ निर्दन्द्व भाव से मिलता जुलता है बाबा फरीद और सीदी मौला मुसलमान है। रावलपीर और ज्ञानेश्वर नाथपंथी है फरीद, सीदी मौला और रावलपीर तीनों साधक आपस में मिलते हैं। धर्म मतों से फर्क नहीं मानते। एक ही मानवता की चर्चा करते रहते है। आनन्द को तीनों का प्यार मिलता है वह तीनों से अनुप्राणित होता है। डॉ0 सिंह सीदी मौला के द्वारा ईरान जरधुस्ती? से धर्मान्तरित परिवार का परिचय देता है सीदी मौला ने अपने परिवार पर हुए अरबी जुल्म और मजबूरी से इस्लाम को अपनाने की कहानी बताई है तो भी वे इस्लाम की ऊँची साधना के पथ पर बढ़ते है। मजहबी सियासत से घबरा कर भारत आ गये है। यहां भी वहीं संघर्ष है पर उन्हें भारत की धरती में शान्ति मिलती है। आनन्द और रावलपीर के द्वारा हिन्दू दर्शन तथा अध्यात्म की जानकारी मिलती जाती है। वे दिल्ली की कुतुबन–उल–इस्लाम मस्जिद यानी मन्दिरों को तोड़कर बनायी मस्जिद को गलत मानते है।

कथानक का विस्तार अल्तमश से अलाउद्दीन खिलजी तक हो गया तो चित्तौड़ का पद्मिमिनी प्रसंग आयेगा ही। पर मार्मिक वर्णन की स्थिति नहीं रहेगी। नायक भी वहां पहुंच नहीं पाता है अतः सूचना मात्र ही दी गयी है। उपन्यास की कथा को बल्बन के काल तक सीमित रखा जा सकता था। इससे कथानक में अनावश्यक विस्तार नहीं हो पाता। एक स्थान पर जुझौती नरेश त्रैलोक्य मल्लदेव के अन्त की सूचना है आगे जीवित रहते है। पर उनकी मृत्यु की पूरी जानकारी मिलती है। हाशिम के सम्बन्ध में भी यही विरोधाभास है। बलबन का दूसरा आक्रमण होता है।

आनन्द के नेतृतव में योजना बनती है। तुरूक परेशान हो जाते हैं। मल्का का सहयोग है वनवासी समुदाय का पूर्णतः सहयोग है। इसके बाद भी कैसे हारहो गयी? स्पष्ट नहीं है केवल सूचना भर है। मकबूल के खुश करने के बाद हरियाणा

का नरमेध रूका या नहीं, स्पष्ट नहीं हो पाता। कथानक की इन त्रुटियों के बाद भी 'दिल्ली दूर है' 13वीं सदी के भारत का प्रामाणिक ऐतिहासिक उपन्यास है।

डॉ0 सिंह आनन्द के चरित्र चित्रण में सफल हुये हैं। कायस्थ कुलभूषण आनन्द सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रमाण अजयगढ़ के पास शिलालेख है उसका एक श्लोक– "अधः कोडवायुः कृपाण विलसंददट्रोकुरोक्षण–न्यग्नामुद्वरित स्म गुर्जरमही मुच्चेस्तुरूस्कार्ण वत् तेज सिंहः तेज सुतः स एष सभरः क्षोणीस्वेश्वर ग्रामीण राधन्ते वलिकर्णयो धुरि मिला गोलाबदानयोधुना।''..........[58]

इस श्लोक से चरित्र के संकेत भी मिल गये हैं इसी आधार पर औपन्यासिक कल्पना और तत्कालीन परिवेश के अनुसार आनन्द का चरित्र निर्मित हुआ है। फलतः आनन्द वाशेक, सफीउल्लाह वासा और हिन्दू खान का व्यक्तित्व प्रभावी से अति प्रभावी होता गया है। वह राजनीति है, वह अन्यतम योद्धा है, सुन्दर व्यक्तित्व वाल सहृदय प्रेमी है, सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञाता है कलाकार कवि तथा महान देशभक्त है।

शिव प्रसाद सिंह संवादों के सहारे कथा को आगे बढ़ते है और ऐसे प्रसंगों को भी उपन्यास में लाते है जिन्हें थोड़ा सख्त सम्पादक करके छाँटा जा सकता है, अतएंव आश्चर्य नही कि उनके उपन्यासों की काया स्थूल से स्थूलतर होती जाती है। लेकिन ऐस वृहदाकार उपन्यास को बिना किसी आवृत्ति या चूक के, पाठक को बाँधते हुए कह जाना छोटी कला नहीं हैं।

दिल्ली की कथा कहते हुए शिव प्रसाद सिंह मानवता के विकास पर सदैव नजर टिकाए रहते है। मध्यकाल की कथा में से वर्तमान हमेशा झाँकता रहता है ऐसी दुखती रग पर उँगली रखना साहस का काम है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का 'दिल्ली दूर है' स्तर पर एक प्रासंगिक उपन्यास है। इसमें है–संवेदना की गहराई और नवीन मूल्यों की खोज का प्रयास। उन मूल्यों की खोज जो देश को एक साथ रख सकें, देश की जनता का प्रेम से रहना सिखा सकें, सब में भाई–चारे का रिश्ता पनप सकें। इसके लिये वे इतिहास के धुन खाए पन्नों में से संजीवनी की खोज के लिए प्रयासरत है। पर यह खोज कितनी सार्थक होगी? कालचक्र में खो तो नहीं जाएगी? क्योंकि न तो आज अमीर खुसरों जैसों का अभाव है–उस अमीर खुसरों का जो अपनी कवित्व शक्ति का उपयोग मानवता के विकास के लिए नहीं अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए, अपने अहं की तुष्टि के लिए, अपनी पदोन्नति के लिए, शासकों को प्रसन्न करने के लिए, उन्हें एक संस्कृति के विनाश के लिए प्रेरित करने में करता है। जमाल फरीद बाबा के शब्दों में खुसरों के व्यक्तित्व के रेशे–रेशे खोलकर रख देता है। उस खुसरों को जो अपने को फरीद बाबा का चहेता, निजामुद्दीन औलिया के मुरीद मोइनुद्दीन कुतुबुद्दीन सभी के प्यारे बताते हैं।

"इसलिए तो वह बात आपसे नहीं की जा सकती खुसरों साहेब। बाबा का कहना है कि लोग अगर तेरी चीज खरीदने को तैयार नहीं है तो उसे मत बेंच। ऊँची जगह पाने के लिए अपने को नीचे मत गिरा। दूसरों का उपकार करते समय तू यही समझा कि तू अपना उपकार कर रहा है। जो तुझसे डरा हो तू उससे डर। अमीरों की संगत में कर्तव्यों को मत भूल यही बाते थी बड़े भाई। लीजिए जनाब खुसरों, जो एक पुजारी को अलग से कहना था आपकी जिद पर सबके सामने कहना पड़ा ऊँची जगह पाने के लिए अपने को नीचे नहीं गिराना चाहिए। सलाम बालेकुम।"....[59]

समस्त भारतीय दर्शन के अध्येता मुस्लिम धर्म के सूक्ष्म से सूक्ष्म सूत्रों के ज्ञाता आनन्द वाशेक की पीड़ा ही आज के बौद्धिक वर्ग की पीड़ा है। यह निःसकोच कह सकता हूँ कि 'दिल्ली दूर है' एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास है जो आज की

समस्याओं का समाधान है जिसमें आज की चेतना जीवंत है और जिसकी पृष्ठभूमि पर हमारी जातीयता अपना समाधान खोज सकती है।

''वैश्वानर''

'वैश्वानर' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1996 में हुआ, प्राचीन काशी को आधार बनाकर वैश्वानर लिखी गयी कृति है, काशी यूँ तो शिव प्रसाद सिंह के साथ सदा–सर्वदा रही है। व्यक्तित्व में भी, जीवन में भी और उनके कृतित्व में भी, किन्तु 'काशीत्रयी' की उनकी योजना इस ओर विशेष रूप से आकर्षित करती है, 'अलेक्जेंड्रियी' से प्रेरणा लेकर उन्होंने काशी पर तीन उपन्यास लिखने का संकल्प लिया जो क्रमशः वैश्वानर नीला चाँद और 'गली आगे मुड़ती है' के रूप में सामने आया। उनके ही शब्दों में मेरी काशीत्रयी संस्कृति आचार व्यवहार तथा सच्चे वातावरण में डूबकर लिखी गयी हैं। मेरी अपनी अभीप्सा रही है काशी को अगर देखना है तो तीनों उपन्यासों में तीन ऐसे समय चुनने होंगे, जो काशी की जनता को समाज को पूरी तरह उथल–पुथल से ऐसा मथ दे कि सबसे निचले वर्ग के सर्वबहिस्कृत चाण्डालों और डोमों से लेकर महिमाशाली ब्राह्मण राजन्य महाजन और सेठों को नग्न खड़ा कर दें।

'वैश्वानर' का फलक बहुत वैविध्यपूर्ण है। इसका कथानक बड़ी सफाई से वैदिक परम्परा को उजागर करता है। उपन्यास में कला इतिहास, प्राचीन संस्कृति की वैचारिकता स्पष्ट रूप से अंकित है इसके अन्तर्गत कथाकार ने अपनी कला की स्पष्ट रूप छाप छोड़ते हुए वैदिक परम्परा का आश्रय ग्रहण करते हुए धनवन्तरी की आयुर्वेदिक परम्पराओं को समेटा हैं।

"एक टोली सामवेदी स्वरों में मंत्रों को गाते हुये चल रही थी–

हे वैश्वानर अग्ने मैं देता हवि तुम्हें

तुम्हारा सेवक मैं दीर्धतमा

उठो प्रज्वलित होकर हविस्य–ग्रहीता बनो

शत्रु पर शासन तेरा

भ्रंश करो कपट का, तमस भेदकर

प्रज्वल ज्वल् ज्वल् जागों

जन कल्याण हेतु तुम जलो।''.......60

कथा का अंश उतना ही है जितना मानव जीवन को प्रस्फुटित करने के लिए अपेक्षित है। इसके अन्तर्गत जीवन दर्शन भी है जो परम्परा से चली आ रही कथा वस्तु है लेखक ने अपेक्षित कथाओं और घटनाओं को तो लिया ही है खास तौर पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को भी लिया हैं डॉ0 सिंह स्वीकार करते है कि सभी आर्यो ने सप्तसिन्धु से ही भारत के विस्तृत भूखण्ड पर अपनी संस्कृति का विकास किया। ग्रत्समद तथा नहुष दोनों सगे भाई हैं नहुष जन भोगवादी, व्यवसाय प्रिय, लोभी तथा आर्य मूल्यों की उपेक्षा करने वाले थे अपने विकास की दिशा में नगर स्थापन, वास्तु विज्ञान, व्यापार में निपुण होने लगें। फलस्वरूप इनको व्यापार के निमित्त अन्य देशों में जाने का भी अवसर मिला। अतः इनके मूल संस्कार दुर्बल होने लगे तथा इतर देशों के संस्कार तथा संस्कृति का प्रभाव इनमें उभरने लगा। अतः इन्हें देश में रहने वाले आर्य व्रात्य कहने लगे।

व्रात्यों से भिन्न वे आर्य थे जो गृत्समद के पुत्र दीर्धतमा के वंशज थे। ये परार्थ प्रेमी सम्पूर्ण मानव जाति को मानव मानकर उनका हित करने वाले थे। क्षयवृद्ध, आर्यजन धन्वनतरि भीम रथ, दिवोदास उपन्यास का नायक प्रतर्दन, शौनक आदि इस आर्य परम्परा के आर्य हैं।

मध्यमेश्वर के वाम पार्श्व में ऊँचे कगार पर मुण्डा तथा किरात आदिवासियों की झोपड़ियाँ है। गोमती तथा गंगा क बाढ़ से सम्पूर्ण क्षेत्र जलमग्न होकर डूब चला है। स्थान–स्थान पर कीचड़ तथा बाढ़ की गन्दगी पसरी हुई है। इन झोपड़ बस्तियों तथा नगर में तक्मा रोग का प्रकोप अपनी चरम सीमा पर हैं। भीषण कंपद ज्वर तथा फफोलों से पीड़ित जन असहाय अवस्था में प्राण त्याग रहे है। इस क्षेत्र का शासन क्षयवृद्ध आर्यजन को तथा प्रतिष्ठान का शासन नहुष को सप्तसिन्धु के आर्यजन ने सौंप दिया हैं क्ष्यवृद्ध आर्यजन का परिवार काशी के लिए प्रस्थान कर दिया। वह प्रतिष्ठान तक आ गया है।

शौनक रात्रि के प्रथम प्रहर में एक छोटी टोली के साथ सामवेदी स्वर में दीर्धतमा के एक मंत्र का गान करता चला जा रहा है–

"मावन स्वामी अग्ने तेजयुक्त तू होता है।
तू ही सबका कल्याण–विधाता
तू सर्वत्र दीप्तिमान, तू सबका संशोधक है।
तू जन्मा पत्थर से, तू जन्मा जल से
तू वन से, तू औषधि से"......[61]

शौनक ग्रप्समद तथा दीर्धतमा की कथा को आगे बढ़ता है दीर्धतमा सरस्वती उपकंठ में घोर साधना करते हैं वे वैश्वानर के तीन रूपों का दर्शन करते है। जल में बड़वानल, अरण्य में दावानल तथा गृह में आवाहनीय अग्नि उसी का रूप है प्राण का संचार सम्पूर्ण प्रकृति में इसी वैश्वानर में होता है।

मध्यमेश्वर में महावन में बसे मुण्डा किरात तथा काशी के बीतिहोत्रों में तक्मा का प्रकोप आर्यजन का ह्वदय दहला रहा है। बीमारी से त्राण–प्राण पाने के लिए आदिवासी वृक्षपूजन तथा बलि का आश्रय लेते हैं। वे अपने द्वार पर ताम्रचूड़ की

बलि तथा दीपक जलाकर बीमारी भगाने का टोटका करते हैं। बलि प्रथा केवल आदिवासियों में ही नहीं बल्कि आर्यो में भी हैं।

नर बलि का विधान वशिष्ठ भी स्वीकार करते है प्रतिष्ठान से गायब क्षत्रवृद्व आर्यजन के काशी आगमन का समाचार लेकर आता है। प्रतिष्ठान में ही धन्वन्तरि तथा काक्षीवान की भेट होती है। कथा के माध्यम से ज्ञान को अक्षुण रखने की परम्परा आर्यो में बहुत प्राचीन है एक बार विलासी देवगण वेद भूल गए। अग्नि का आवाहन तथा अग्नि द्वारा यज्ञ से अपना भाग लेना भी भूल गए। अतः वे ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें पितरों के पास भेजकर वेदों का ज्ञान प्राप्त कराया। पितरों ने देवताओं को पितृलोक से विदा करते समय पुत्र कहा। उस सम्बोधन से क्रोधित ब्रह्मा से शिकायत की। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि पितरों का व्यवहार उचित है। ज्ञान देने वाला पिता होता है। ऋषियों से पितर–पितर देव या असुर, वसु, रूद्र, आदित्य आदि देवता जन्म लेते है। आज धन्वन्तरि की यात्रा पितृयान से नहीं होगी क्योंकि उनकी मृत्यु कृतिकग्नि में हुई हैं, उन्हें मोक्ष होगा। प्रतर्दन, देवयान, पितृयान की चर्चा अपने राजगुरू विश्वश्रुवा से करता हैं।

विश्वश्रुवा कहते है– नागवीथि से उत्तर सप्तर्षियों से, दक्षिण सूर्य से उत्तरायण का पथ देवयान हैं विषुवत वृत्त के दोनों ओर चौबीस चौबीस अंश का प्रकाश मण्डल है। इनमें सभी नक्षत्र और गृह–मण्डल है नक्षत्र सत्ताईस हैं उनमें नौ–नौ नक्षत्र के अनुसार 48 अंश मण्डल के पूर्वोक्ति आकाश–मण्डल को तीन–तीन भागों में बाँटा जाता है। उत्तरवाले तृतीयांश को ऐरावत्, मध्यवाले भाग को जरद्‌भव तथा दक्षिण तृतीयांश को वैश्वानर मार्ग कहते हैं।

पितृयान अगस्त्य ताटक से उत्तर और अजवीथी के दक्षिण तथा वैश्वानर मार्ग से बाहर पितृयान है। पितृलोक को यही मार्ग है–

"हे यजमान तू पितरों के राजा यम की छवि देकर उपासना कर। वे ही उत्तम करने वालों को सुखद स्थान में ले जाते हैं। बहुतों के हितार्थ वे ही मार्गद्रस्टा है। यम ही पाप और पुण्य का भेद करते हैं वे ही अपने पास में मृत्युलोक को बांधे है। उनके इस मार्ग का कोई उल्लघंन नहीं कर सकता। अपने कर्मो के अनुसार उनके द्वारा निर्धारित मार्गो से ही हम जायेंगे । अतः तू भी जा।''.......[62]

पितृलोक का यही मार्ग है। आजीवन वैश्वानर का ताप सहने वाला वैश्वानर मार्ग से ही चला गया।

वैश्वानर का आरम्भ जनपदोध्वंसक तक्मा रोग से ग्रस्त काशी के मुण्डा और किरात आदिवासियों द्वारा शौनक के नेतृत्व में विष्णु देवांश धन्वन्तरि के आवाहन के साथ होता है—

"हे वैश्वानर अग्ने मैं देवा हवि तुम्हे
तुम्हारा सेवक मैं दीर्धतमा
प्रज्वल ज्वल ज्वल जागो जन कल्याण हेतु तुम जलो।........[63]

तक्मा रोग से ग्रस्त काशी के मुण्डा और किरात "काशी नगर जनपदों ध्वसंक तक्मा रोग से ग्रस्त है, नाना प्रकार के संकट प्रतिदिन हमारा पथ रूंध दे रहे हैं।''......[64]

इस संक्रामक रोग से पिछले तीन महिनों से पूरा नगर कुत्सित, दुर्गन्धित पदार्थो से भाराक्रान्त हो गया है।" तीन महीनों से मैनें लोगों को आश्वस्त किया है। तीन महीनों तक भरोसा दिलाता रहा। मैने उनका अपने अग्रज धन्वन्तरि से आगमन का सन्देश दिया।''.......[65]

"वैश्वानर में सामाजिक रीति रिवाजों को भी उचित स्थान मिला है। विवाह संस्था है या नहीं, विवाह के अपरिवर्तनीय नियम, परिवर्तनीय नियम, स्वेच्छाचार, एक–विवाह, बहुविवाह, अविवाहित जीवन, जातीय तथा विजातीय विवाह के कठोर नियम तथा संयम का स्थायी स्वरूप तथा सम्बन्ध निर्वाह अपने अपने प्रौढ़ रूप में है। "

कृषक संस्कृति, पशुपालन, खेती–बारी, नगर संस्कृति, शिक्षा स्वास्थ्य, सुरक्षा लोक मंगल की भावना,

"नन्दा देवी नन्दा देवी। फूल चढ़ों कि पाती। आइना हो है महामाता देह जोइला हाथी, बाट तल्ली दूरे ओशप बार मल्ली सरप, पंछी हून उडिजनों आपकी ओरी, ओरी उन दल मुखदीक तीखी तखा आइना हो, हो, हे महामाता मोरी देवी के आसन आके। एशन भुजान कब कोटो जान। केहके करूं तन मन रहे के अगमान".....[66]

'वैश्वानर' के सामाजिक स्वरूप का हम आर्य, व्रात्य, मुण्डा, किरात, वीतिहोत्र और अभिचारक के सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखकर जानने का प्रयास करते हैं। सामाजिक ढ़ांचा सभी जातियों एवं मूल्यों का मिश्रण है। क्षयवृद्व आर्यजन का परिवार काशी में किरात बन के पास घास–फूस की झोपड़ी में रहता हैं वहां मुण्डा तथा किरात की झोपड़िया पहले से बनी हुई है। पास के घने वन में भीष्म चण्डी का मन्दिर हैं। यहां अकालवृद्ध केश कम्बली नर बलि से देवी की साधना करता हैं पास ही मध्यमेश्वर हैं।

"वैश्वानर की अपनी संस्कृति हैं। कृषक, राजपरिवार, सैनिक, ऋषि, गणिका सबके वेश विन्यास अपने–अपने ढ़ंग के हैं अन्त में वैश्वानर का दण्ड विधान भी नीति

संगत है। मृत्युदण्ड, अंग छेदन, देश निष्कासन तीन प्रकार का दण्ड दिया जाता है।

''कुहरे में युद्ध''

'कुहरे में युद्ध' एक ऐतिहासिक उपन्यास है इसका प्रकाशन सन् 1993 ई0 में हुआ था। मध्यकाल से लेकर आजादी पूर्व तक का भारतीय इतिहास उथल–पुथल युक्त रहा। महमूद गजनबी के साथ आक्रमणों का जो क्रम आरम्भ हुआ उसने भारतीय संस्कृति को जिस प्रकार क्षति पहुंचाने का प्रयत्न किया, उससे पूर्व वैसा कभी नहीं था। इसका कारण है जब हम अपने प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तब पाते हैं कि अलक्षेन्द्र से लेकर शक और हूणों तक उद्देश्य इस देश का लूटना मात्र था। भले ही अलक्षेन्द्र में अपने छत्रप यहां नियुक्त किये थे, किन्तु भारत को पद्दलित कर धन लूटना ही उसका परम उद्देश्य था संस्कृति को ध्वस्त करना उसका उद्देश्य नहीं था। और हूण तो थी ही लुटेरी जाति, रही बात शकों की तो उनके कनिष्क जैसे सम्राट और उसके अनुयायियों ने अपने को यहां खपा लिया।

गजनवी के आगमन के बाद इस धरती में कुछ ऐसे परिवर्तन होने लगे जिनके दूरगामी परिणाम हुए। यह सब आकस्मिक न था, सीमा पार से आने वाले आक्रमणकारियों का उद्देश्य इस देश को लूटना ही नहीं, राज्य की स्थापना और धार्मिकता के प्रचार का आग्रह भी था।

भारतीय शासकों को आपसी कलह का प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभ मिले और दिल्ली का पतन नहीं हुआ परन्तु अनेक सांस्कृतिक गौरव ध्वस्त होकर कुतुबमीनार जैसे गौरव स्थलों का निर्माण हुआ।

"दिल्ली की कुतुबुमीनार एक पहाड़ी पर बनी है। उस पहाड़ी का नाम विष्णु पद था, वहां पर विष्णु का मन्दिर था। विष्णु पद पर स्थित विष्णु मन्दिर तोड़कर

मस्जिद कुस्बते इस्लाम कुतुबुद्दीन ऐवक के समय बनायी गयी थी। इसे अल्तमश ने और बढ़ाया था अलाउद्दीन खिलजी ने उसे और बढाया''।.......67

डॉ0 सिंह ने भूमिका में लिखा है–

''इतिहास में लौटना प्रतिगामिता और ऐसा करने वाले वर्तमान से टकारने में कतराते है, तभी तो बहस का सवाल हीं नहीं है। आज यदि पूरे विश्व के साहित्य को देखें तो अतीत की ओर दौड़ आपको हतप्रभ कर देगी। आज के तथाकथित आधुनिक मूल्यों की कशमकश से घबराकर लोग ऐस चरित्रों को ढूंढ रहे है जो अतीत के होते हुए भी वर्तमान के आदर्श हैं।''.......68

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 'कुहरे में युद्ध' के माध्यम से आज को समझने और समझाने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास के मूल में हैं कालिंजर के शासन त्रैलोकय मल्लदेव, उनके सेनापति आनन्द वाशेक और दिल्ली दरबार। आनन्द वाशेक कथानायक है और अन्त तक यह चरित्र छाया रहता है।

आनन्द वाशेक उद्भट योद्धा, पराक्रमी विद्वान प्रत्यत्यन्नमति, दूरदर्शी कलाकार और सर्वोपरि मानवीय गुणों से युक्त एक ऐसा व्यक्तित्व है जो शत्रु के लिए चुनौती है, समस्या है।

''आतंक है। इल्तुतमिश के सिपहसालार तुर्क सेनापति ग्वालियर का मुक्ता मालिक नुसरत तयासी कालंजर को ध्वस्त करना चाहता है। वह काली सिन्धु पार कर आँधी की भाँति आगे बढ़ता है किन्तु वह सफल नहीं हो पाता हैं। उसकी सेना विशाल है, जिसमें जरीदा सवार भी है। ये जरीदा सवार वे भारतीय है जिन्हें एक वक्त का भोजन भी नसीब नहीं हो पाता है। मुसलमान उन्हें इस लालच में अपने साथ करने में सफल हो जाते हैं कि जनता को खुलकर लूट सकते हैं और लूट के माल का चौथाई माल खलीफा को देकर शेष अपने पास रख सकते हैं।''.......69

इस प्रकार धर्म परिवर्तन की सहज भूमिका की प्रक्रिया के वे शिकार हो जातें हैं। जुझौती की समकालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हुए डॉ0 प्रसाद लिखते हैं–

"मै जुझौती में पिछले दो वर्षो से कई क्षेत्रों में अकाल ग्रस्त लोगों की मृत्यु का समाचार सुनता रहा हूँ मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं हुआ, माहमात्य, मैंने वेश बदलकर चित्रकूट क्षेत्र की यात्रा में सैंकड़ो को अन्न के लिए विलविलाते देखा। शिशुओं के शरीर में केवल अस्थिपंजर दिखा, महिलाओं के ललाट पर भूखे बच्चों की मृत्यु के कारण उभरती तन्तुवाय की चित्रकला देखी जो काले रंगों में उरेही थीं। मैंने भूखी औरतों की छाती का चिचोरते अबोध शिशुओं के गले में घर्र–घर्र की ध्वनियां सुनी, मैने पूरे क्षेत्र में पयस्विनी की सूखी धाराओं में चुल्लूभर पानी के लिए पत्थर के टुकड़ों को खोदते फेंकते, फिर खोद कर निकालते, जी की कामना से विवश, श्रम से असफल पानी के लिए तरसते सूखे कण्डों को अस्पष्ट भाषएं सुनी।"........[70]

'कुहरे में युद्ध' आरम्भ से अन्त तक युद्ध की विभीषिका को वर्णित करता है और तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थितियों को जिस प्रकार चित्रित किया गया है वह लेखक द्वारा थोपा गया यथार्थ नहीं है, बल्कि वह इतना सहज है कि पाठक के लिए इतिहास के गर्भ से उद्‌भूत आज के वर्तमान का सत्य प्रतीत होता है।

डॉ0 सिंह का कर्तव्य इतिहास की उन महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों को एक विशेष दृष्टि देना होता है, जो इतिहास को सन्दर्भगत रखते हुए वर्तमान के लिए संदेश हो। शायद इसीलिए युद्ध की विभीषिका में झुलसती जुझौती के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाले वाशेक को कहना पड़ता है, "मानव ने मानव के विनाश के लिए अस्त्रों–शस्त्रों के क्षेत्र में जितना विकास किया है उतना ही अगर मानव के बीच निःस्वार्थ प्रेम के लिए

करता तो अब तब यह जगत स्वर्ग हो जाता। प्रेम कोई सीधी सादी वस्तु नहीं रहीं। घृणा के कार्य को सम्पादित करते राजे–महाराजे, सुल्तान अमीर बस अपने–अपने निःस्वार्थ प्रेम को जनता तक पहुंचाने का पर्दा डाले वतन, मजहब अल्ला या फिर मातृभूमि को एक दूसरे का शत्रु मानकर ही तो लड़ रहें हैं।''......71
कथानक का विस्तार सन् 1233 से लेकर सन् 1305 तक है प्रथम खण्ड 'कुहरे में यद्ध' संघर्ष का जुझौती खण्ड हैं। जुझौती खण्ड में संघर्ष का विस्तार दिल्ली–पंजाब तक हो जाता है।

मुस्लिम सियासत यानी मजहबी सियासत और हूकूमत के साथ इस्लाम के रूप–स्वरूप का विस्तृत वर्णन इस खण्ड की विशेषता हैं। जिसे समझने और नियंत्रित करनें में हमारा चरित्र नायक आनन्द थककर हताश हो जाता है।

उपन्यास की कथा आनन्द वाशेक के इर्द–गिर्द चलती रहती हैं, देविका, दीप्ति और नजमा उसकी प्रमिकायें है। प्रेम का त्रिकोण उपस्थित है। देविका वाशेक को पाना चाहती है और वाशेक देविका को। लेकिन दोनो की चाहत को तयासी छिन्न–भिन्न कर देता है। अन्ततः देविका को तयासी के बच्चे की माँ बनकर रहना पड़ता हैं। फिर भी डॉ0 सिंह ने देविका को भारतीय नारी के चरम आदर्श पर स्थित किया। वह कभी भी वाशेक को विस्मृत नहीं कर पायी। जिसे जीवित रहते नहीं पायी, जिसकी ज्वाला में आजीवन वह जलती रहती है। अन्ततः उसी की चिता की ज्वाला में वह अपने को समर्पित कर अपना लक्ष्य पा लेती है। इसके लिए उसे जहर का भी सहारा लेना पड़ता है।

देविका का उद्धार हो और जुझौती पर फिर से आक्रमण न हो, इसीलिए आनन्द वाशेक दिल्ली आया था, उस दिल्ली में जहां उसकी आन्तरिक आकांक्षा उल्लास कैद है। उसका अपना जीवन बन्दी हैं, कैद से मुक्त कराने में अपने आपकों असमर्थ पा आनन्द उसी के इर्द–गिर्द मंडराता रहता है।

तेरहवीं सदी के उत्तरार्द्ध और चौदहवीं सदी के पूर्वार्द्ध का भारत आज के भारत से बहुत भिन्न नहीं और आज का भारत, मानवीयता की सरहदें पार करता भारत, एक संवेदनशील रचनाकार को पीड़ित किये बिना नहीं रह सकता।

डॉ0 सिंह आज के इस भारत की दुर्दशा की खोज अतीत के खण्डहरों में करने के लिए प्रयासरत है पर वहां भी उसे मूल्यों के नाम पर मिलता है–

मूल्यों का ध्वंस। अतः रचनाकार स्वयं भूमिका में लिखता है–

"एक बार हम उन नीवों की जांच कर लें, जिनको रखते वक्त शायद गारे की जगह मांस के लोथड़े खून से भिगोकर तहियाये गये थे।"......[72]

अतः प्रमुखतः उपन्यास में संवेदना की गहराई और नीवन मूल्यों की खोज का प्रयास है।

आज के सन्दर्भ में डॉ0 सिंह के उपन्यासों में परिस्थितियों के साथ साथ कथा वस्तु और इतिहास की दृष्टि से 'कुहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है' के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। विशेषकर कि हम जिस स्थिति में है, उसमें अन्दर ही अन्दर उन्माद का जो लावा सुलग रहा हैं, उसे शान्त करने के लिए किसी आनन्द वाशेक की आवश्कयता है। डॉ0 सिंह की उपलब्धियों में दोनों उपन्यास 'तालस्ताय' के 'युद्ध और शान्ति' के निकट की कृतियां है, जिन्हें पढ़ना अपने समयाछन्न अतीत से गुजरते हुए उज्ज्वल वर्तमान के लिए दिशा निर्देश प्राप्त करना है।

5. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दादी माँ सम्पादक डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 12
2. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 46
3. शिव प्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य डॉ0 सत्य देव त्रिपाठी पृ0 14
4. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 135
5. डॉ0 प्रेम शंकर समीक्षात्मक लेख, 'अलग–अलग वैतरणी'
6. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 137
7. हिन्दी उपन्यास उदय और उत्कर्ष डॉ0 सत्य पाल चुध पृ0 30
8. अलग–अलग वैतरणी डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 2
9. वहीं पृ0 2
10. वहीं पृ0 3, 4
11. वहीं पृ0 6
12. वहीं पृ0 6
13. वहीं पृ0 15
14. वहीं पृ0 18
15. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 166
16. वैतरणी से वैश्वानर तक की यात्रा (सन्दर्भ–शिवप्रसाद के उपन्यास आनंद कुमार पाण्डेय पृ 39 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी)
17. उपन्यास का पुर्नजन्म परमानंद श्रीवास्तव पृ0 110 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
18. शिव प्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य डॉ0 सत्य देव त्रिपाठी पृ0 14
19. शिव प्रसाद सिंह का कथा साहित्य डॉ0 सत्य देव त्रिपाठी (प्रस्तावना) पृ0 25
20. स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य और ग्राम जीवन–डॉ0 विवेकी राय पृ0 166
21. अलग–अलग वैतरणी–शिव प्रसाद सिंह पृ0 1
22. अलग–अलग वैतरणी–शिव प्रसाद सिंह पृ0 71
23. अलग–अलग वैतरणी–शिव प्रसाद सिंह पृ0 33
24. अलग–अलग वैतरणी–शिव प्रसाद सिंह पृ0 83

25. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 134
26. वैतरणी से वैश्वानर तक की यात्रा – आनंद कुमार पाण्डेय पृ 43
27. नीला चाँद (भूमिका) डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 1
28. नीला चाँद (भूमिका) डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 3
29. वैतरणी से वैश्वानर तक की यात्रा – आनंद कुमार पाण्डेय पृ 46
30. शिव प्रसाद सिंह का पूर्ववर्ती कथा साहित्य डॉ0 सत्य देव त्रिपाठी पृ0 76
31. शिव प्रसाद सिंह का पूर्ववर्ती कथा साहित्य डॉ0 सत्य देव त्रिपाठी पृ0 79
32. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 190
33. नीला चाँद डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 58
34. नीला चाँद डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 61
35. नीला चाँद डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 52
36. नीला चाँद डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 58
37. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 88
38. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 91
39. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 41
40. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 135
41. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 36
42. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 138
43. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 389
44. मंजूशिमा डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 201
45. शैलूष डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 13
46. बीहड़ पथ के यात्री पृ0 26
47. शैलूष डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 197
48. शैलूष डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 27
49. सम्पादक पाण्डेय शशि भूषण शीतंशु सृष्टा और सृष्टि पृ0 224
50. औरत डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 106, 109

51. औरत डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 77

52. औरत डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 136

53. औरत डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 136

54. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के भाषण पर आधारित

55. गली आगे मुड़ती है–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 5

56. गली आगे मुड़ती है–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 10

57. दिल्ली दूर है–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 39

58. आबू शिला लेख ट्र0ऐ0जिंद 17 पृ0 315 (भूमिका)

59. दिल्ली दूर है–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 542

60. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 15

61. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 17

62. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 335

63. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 15

64. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 15

65. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 16

66. वैश्वानर–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 71

67. कुहरे में युद्ध–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 326

68. कुहरे में युद्ध–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह (भूमिका से)

69. कुहरे में युद्ध–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 93

70. कुहरे में युद्ध–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 94

71. कुहरे में युद्ध–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 270–271

72. दिल्ली दूर है–डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 598

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का चरित्रांकन शिल्प एवं पात्र संरचना

१. उपन्यासों में पात्र चयन

२. प्रमुख नारी पात्र

३. प्रमुख पुरूष पात्र

४. पात्र चयन में इतिहास व कल्पना

   १. अलग-अलग वैतरणी (१९६७)

   २. नीला चाँद (१९८८)

   ३. मंजूशिमा (१९९०)

   ४. शैलूष (१९८९)

   ५. औरत (१९९१)

   ६. गली आगे मुड़ती है (१९७४)

   ७. दिल्ली दूर है (१९९३)

   ८. वैश्वानर (१९९६)

   ९. कुहरे में युद्ध (१९९३)

५. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

तृतीय अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का चरित्रांकन शिल्प एवं पात्र संरचना

1. उपन्यासों का पात्र चयन

कथा की कल्पना में ही चरित्रों की विद्यमानता निहित हैं। अर्नाल्ड बेनेट के शब्दों में – " कथा साहित्य का मूल आधार चरित्र ही हैं, अन्य कुछ नहीं" ।[1]

❋ ❋ ❋

ऐसा इसलिए कहा गया है, कि कथा मूलतः मनुष्य पर आधारित होती हैं। गोर्की भी मानते है कि संसार का हर सत्य मनुष्य के लिए हैं, वहीं हर सत्य का लक्ष्य और उद्देश्य हैं, मनुष्य के बाहर कोई सत्य नहीं। वे अपनी पुस्तक 'द मैन इज आवर गॉड" में लिखते है–"मेरा पवित्रतम आराध्य हैं मानव, उसका शरीर, मेद्या, बुद्धि प्रेरणा और प्यार....." ।[2]

❋ ❋ ❋

अतः अपनी रचना में पात्रों के माध्यम से ही उपन्यासकार मानवता का बहुपक्षीय रूप प्रस्तुत करता हैं। " मनुष्य के चरित्र–विकास की प्रक्रिया का परिचय देता हैं।"[3]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह के लेखन कला का मेरूदण्ड चरित्र ही है "मुझे कहानी लिखने के लिए जो चीज सबसे अधिक विवश करती हैं, वह हैं मनुष्य का चरित्र....। पात्र क्या है, मेरी कहानियों या उपन्यासों के अधिकतर पात्र उपेक्षित–तिरस्कृत माटी के ढेले ही तो हैं अथवा बबूल के सूखे पेड़ जो किसी राह चलते पंथी को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते....।"[4]

डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, व काल्पनिक सभी प्रकार के पात्रों को स्थान दिया है।

पात्र–सृजन की प्रक्रिया को विवेचित करने के लिए, कथाकार चाहें जिस ढंग के चरित्रों की योजना बनायें, वे सभी पात्र वृहद समाज की किसी न किसी सच्चाई को उजागर करते है, अथवा वे किसी न किसी रूप में समाज को एक उद्देश्यात्मक सन्देश देते हैं। ई0 एम0 फार्स्टर ने उपन्यासों के पात्रों का चयन अपने परिवार से किया हैं " उपन्यास में श्रीमती बर्लेट उसकी चाची एमिली थीं, श्रीमती हनीचर्च उसकी दादी माँ थीं।"[5] अर्थात् ई0 एम0 फार्स्टर ने अपने उपन्यासों की चरित्र योजना वास्तविक जीवन के पात्रों से की हैं। डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यास 'मंजूशिमा' में अपनी ही लड़की की कथा लिखी हैं। कथाकार समाज का एक जीवंत एवं विशिष्ट सदस्य होता हैं। वह समाज में फेले हुए विविध मानव चरित्रों को अपनी रचना में स्थान देता है।

"नेन्सी हेल ने पात्र विभाजन इस प्रकार किया हैं –

1. वे चरित्र जो प्रभावित करते हैं। (आदर्श पात्र)
2. वे पात्र जो प्रभावित नहीं करते हैं। (खल पात्र) "...[6]

❋ ❋ ❋

"सपाट और जटिल चरित्र भी दो रूपों में निर्मित होते हैं –

1. अन्तः 2. बाह्या.......[7]

डॉ0 सिंह ने अपने कथा साहित्य में सभी पात्रों को विशेष स्थान दिया हैं।

"अलग–अलग वैरतणी"

उपन्यास में आदर्श पात्र–

'अलग–अलग वैतरणी'में डॉ0 सिंह ने पात्रों को व्यापक मानवीय संवेदना से जोड़ा हैं – जग्गन, मिसिर, मास्टर, शशिकान्त, विपिन, खलील खां, देवनाथ, सरूप भगत,

कनिया, पटनहिया भाभी। निश्चित रूप से ये लेखकीय विचारों को लेकर चलने वाले आदर्श पात्र हैं।

उपन्यास में खल पात्र–

'अलग–अलग वैतरणी' में अच्छे और बुरे विचारों वाले पात्र हैं, जो उपन्यास के अच्छे चरित्रों में कुछ कमजोरियाँ हैं, कुण्ठाएँ हैं, पर वे मूलतः बुरे व्यक्ति नहीं हैं, जब 'अलग–अलग वैतरणी' के खल पात्रों में बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं, शायद भूले से भी कहीं कोई अच्छाई नहीं आने पायी हैं। अधिकांश खल पात्रों में मानवीय संवेदना की कोई झलक तक नहीं मिलती। इसीलिए ऐसे पात्रों के लिए अलग से शीर्षक देना ही उपयुक्त प्रतीत होता हैं। इसके अंतर्गत सुरजू सिंह, सिरिया, मुंशी जवाहिर लाल, बुझारथ सिंह, खुदाबख्श और जगेसर आदि पात्र आते हैं।

उपन्यास में अन्य पात्र–

अन्य पात्रों में डॉक्टर देवनाथ जो गांव में ही प्रैक्टिस करने की कोशिश करता हैं। पुष्पा और विपिन एक दूसरे के प्रति बचपन से ही आकर्षित हैं। सामाजिक मर्यादा के कारण विपिन अपने मूक प्रेम के प्रति मुखर नहीं हो पाता हैं।

"पुष्पा को फँसाने के चक्कर में बुझारथ बुरी तरह घायल हुआ पर कुल की लाज ढकने के ख्याल से विपिन ने सारी स्थिति का उसका प्रेम लुट रहा हैं, और वह असमर्थ हैं, अनकहीं प्रेम वेदना में तड़प रहा हैं, आत्मग्लानि और आत्मदाह में तड़प रहा हैं।.....[8]

डॉ0 सिंह पूरी गाँव की शक्ल उभारने के लिए हर तरह के चेहरों का इस्तेमाल करते हैं। उनमें लुच्चे–लफंगे, कांग्रेसी नेता, अखाड़िये, भ्रष्टाचारी, सेवक वेदना से छटपटाते लोग, चमटोल का निम्न वर्ग, धोबी, चरवाहें, अहीर और गायक सभी प्रकार के पात्र समाहित हैं।

''नीला चाँद''

<u>उपन्यास में आदर्श पात्र</u>–

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने जरूरत के मुताबिक अपने विचारों की पूर्ति के लिए जीवंत पात्र गढ़े है, पर इन सभी रूपों में अच्छे–बुरे, सत्–असत्, पात्रों की घटक बद्धता हमेंशा बनी रही हैं। ''अच्छे–बुरों की यह घटक बद्धता क्यों, जिसमें जीवन खानों में बंट जाये''....[9] साधु प्रवृत्ति वाले पात्रों को, यहाँ पहले से ही अधिक गरिमा मंडित किया गया हैं। चंदेल वंश, गाहड़वाल वंश के लाग सब सत् पात्र हैं।

''नीला चाँद'' की सृष्टि से एक तरफ राम हैं, तो दूसरी तरफ उनके इर्द–गिर्द रहने वाली पूरी वानर सेना हैं। इन पात्रों में देश भक्त, स्वामिभक्त हैं, उनमें सभी सत् गुणों का समावेश हैं। शिक्षित बुद्धिजीवी पात्रों में बलदेव ओझा, विनायक भट्ट, बंधुजीवा, रत्नेश शर्मा, कृष्ण मिश्र, सुबोध देव आदि साधु पात्र हैं।

उपन्यास में खल पात्र –

'नीला चाँद' उपन्यास में जिस तरह चंदेल और गाहड़वाल वंश के लोग सद्पात्र हैं। प्रमुख खल पात्रों में कलचुरी वंश के तथा उनके सभी सहायक हैं। कर्ण–कर्णदेव तथा सहायकों में सेनापति अश्वगंध ही प्रमुख हैं। यह लोग नीचता व अनार्य आचरण के समान हैं, इन्होने पूरे उपन्यास में कोई भी अच्छा कार्य नहीं किया हैं।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के कोई खलपात्र कभी एक भी अच्छा कार्य नहीं करते हैं। जितने भी बुरे कार्य हो सकते हैं, उसने किए हैं–हत्या, षड़यंत्र, स्त्रियों के साथ बुरा आचरण, धोखेबाजी, कृतज्ञता आदि सब कुछ।

उपन्यास में अन्य पात्र–

'नीला चाँद' उपन्यास के अन्य पात्रों में भरत डोम प्रमुख हैं। भरतडोम शील भद्रा माँ के पहले रूप शीला को नाव पर लाकर, और भाई बनकर कृति में प्रवेश करता

हैं। भरत डोम अपनी जाति की सामाजिक मर्यादा को तोड़ता हैं। 'शिंजनी' कर्णदेव के बलाधिकृति अश्वगंध की एक मात्र पुत्री हैं। कीरत की प्रेमिका हैं। गाहड़वाल रानी राल्ह देवी जो कीरत की माँ हैं।

"मंजूशिमा"

'मंजूशिमा' कृति पुत्री 'मंजु' के दुखद अंत के बाद यादों के बल पर लिखी गयी हैं। बीच–बीच में डायरियाँ भी आती हैं। 'मंजूशिमा' एक कथा हैं, जो मंजुश्री की बीमारी की शुरूआत से लेकर उसके इलाज की ढेरों स्थितियों के विशद अंकन के होते हुए, निधन तक के रूप में चित्रित हैं। डॉ0 सिंह ने निजी प्रसंगों का आंकलन कर जो कुछ भी लिखा हैं, उनमें पात्र मुख्य रूप से पिता, पुत्री, भाई–बहन, सहेली आदि हैं। पुत्र नरेन्द्र का जनवादी रचनाकार होना यदि लोग 'मंजूशिमा' के अलावा जानते तो शायद ज्यादा उपयुक्त होता। सबसे यथार्थ आंकलन श्रीमती सिंह का हुआ हैं।

मेडीकल व्यवस्था ने वहाँ एक ऐसा धंधेवाला वर्ग पैदा कर दिया हैं, जो अपनी सम्पूर्ण अमानवीयता के साथ मात्र कमाने के प्रति पूरी कट्टरता से लगा हैं। टैक्सी वाला गरीब–अमीर का कोई ख्याल किये बिना शहर के अस्पताल के लिए जितना संभव हो, खसोट लेता हैं।" साहब, सोच लो। तीन सौ बीस से कम रूपये में आपको टैक्सी नहीं मिलेगी।"......[10]

❋ ❋ ❋

"20 जनवरी 1982 को हमें तीन सौ बीस रूपयें पर उसी टैक्सी वाले की शरण जानी पड़ी जो रात को ही सारा कुछ तय कर लेना चाहता था।"......[11]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह आर्थिक असमर्थता व्यक्त करते हैं " मेरे जैसा प्राध्यापक डेढ़ लाख से भी अधिक रूपये कहाँ से लायेगा।"......[12]

डॉ0 सिंह ने अपनी धोती कुर्ता से बनी सेठ की धारणा का भी दुख बताया है कि इस कारण भी वहाँ के लोग कुछ ज्यादा ही पैसे ऐंठने की सोचते हैं। रिश्तों की, मनुष्यता की, जिजीविषा की यहाँ विषम और अंतरिम पहचान बनती हैं।

''शैलूष''

उपन्यास में आदर्श पात्र–

'शैलूष' उपन्यास में सूरज, नवजादिक, मानिक जैसे कुछ पात्र हैं, जो अच्छाई–बुराई दोनो में जीते हैं। डॉ0 सिंह के प्रवक्ता पात्र भी वहाँ स्पष्ट हैं– सब्बों, सारस्वत और सुरेन्द्र शुक्ल। ''शैलूष'' में सारा दारोमदार सब्बों मौसी पर हैं।''....[13] सब्बों ने मेहनत करके पूरा परिवार संभाला हैं। कितने पात्र सब्बों मौसी के सहारे ही खड़े मिलेगें–अमिरत, ननकू जुड़ावन आदि।

कबीलाई पात्र

नट पात्र कबीलाई जीवन को प्रस्तुत करते हैं। जुड़ावन कबीले में प्रमुख हैं। सभी मौंसी के भक्त हैं। सिर्फ हरिहर का परिवार तथा गोवर्धन हैं, जो मौंसी को नहीं मानते हैं एक पात्र सूरज भी है–जुड़ावन का ही बेटा हैं। इनके अलावा चार–पाँच पात्र है जिनमें – लल्लू काका, सरदार जुड़ावन, ननकू, रूपा, अमिरत आदि। उक्त पात्रों के अलावा माला, मूँगा, जुबेदा तथा अन्य लड़कियां–बहुएँ भी हैं, और कुछ युवक भी, पर ये सब परिवार तथा भीड़ खाना पूर्ति के लिए आते हैं।

''शैलूष' में इतिहास के परिप्रेक्ष्य में ब्राह्मणों की निषेधात्मक भूमिका का उल्लेख भी इतिहास सम्मत और सच हैं। सब्बों मौंसी ब्राह्मण–कन्या हैं। सुरेन्द्र शुक्ल ब्राह्मण हैं।

उपन्यास में खल पात्र

आदर्श पात्रों में भी सभी ब्राह्मण ही थें, और खल पात्रों में भी दो ब्राह्मण हैं—घुरफेंकन तिवारी और नौजादिक पाण्डे।

घुरफेंकन तिवारी एक ऐसा पात्र हैं, जिसके कारण सारी नट बस्ती परेशान हैं— कुछ विशिष्ट पात्रों के कथनों में उसकी विशेषतायें देखी जा सकती हैं, परताप सिंह कहतें हैं— "साले एकदम से भ्रष्ट, चरित्रहीन, और नीच हो तुम। पर पता नहीं क्या हो गया हैं हिन्दुओं को कि वे तुम जैसे नीच व्यक्ति को पुरोहित पद से नहीं हटातें।"...[14]

❋ ❋ ❋

नासिर प्रथम भेंट में घुरफेंकन से पूछता हैं—"वह शातिर, घूसखोर, हैकड़ी दिखाने वाला, सच को झूठ और, झूठ को सच करने वाला मदारी तू हीं हैं। ......[15]

जग्गीसिंह कई बार बोले है। ट्यूबबेल की बावत पूछने पर व्यंग्य में उनका कथन घुरफेंकन तिवारी को प्रचलित और असली तस्वीर सामने आती हैं। – "घुरफेंकन जी केवल सबसे अधिक धनवान ही नहीं हैं, सबसे विद्वान भी हैं। हुजूर वे हमारे ग्राम प्रधान भी हैं। ग्राम प्रधानी उन्हें हरिजनों ने दिलाई क्योंकि घुरफेंकन उन्हें सब्जबाग दिखाते थें। यह ट्यूबबेल हुजूर, सरकार के पैसे से बना है। चार महीने पहले। इसकी ताली—कुंजी सब घुरफेकन जी के पास रहती है।.......[16]

इस तरह से घुरफेंकन तिवारी के चरित्र के बारे में स्पष्ट जानकारी होती है। कि वह एक 'शैलूष' उपन्यास के प्रमुख खल पात्र हैं।

“औरत”

डॉ0 सिंह ने ‘औरत’ उपन्यास के माध्यम से समाज शास्त्रियों और सरकारी संस्थाओं के विभिन्न तर्को को खोखला सिद्ध किया हैं, लेकिन भारतीय नारी आज अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई उसे कुछ हद तक समानाधिकार मिल गये हैं। वह आज पुरूष के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ हो गई हैं। इतना सब कुछ होने के बावजूद वास्तविकता यह हैं कि नारी आज भी उपेक्षित हैं। समाज के कठोर बन्धनों से बँधी हैं। भारतीय औरत की व्यथा और कथा ‘औरत’ उपन्यास में समाहित है।

‘औरत’ उपन्यास का नायक शिवेन्द्र हैं, जो एक समाजशास्त्री है और अपने मित्र प्रेम स्वरूप के पी0एच0डी0 शोध प्रबन्ध का निर्देशक हैं। शोध प्रबन्धक भी ‘नारी’ विषय से सम्बन्धित हैं।

“औरत’ उपन्यास न केवल पूर्वांचल, बल्कि समस्त भारतीय औरतों का प्रतीक हैं। इसमें उन देशों की औरतों को भी शामिल किया जा सकता हैं, जिन देशों का सामाजिक ढाँचा भारत के समान है। मुख्य पात्र का भाई ही उस पर लांछन लगाने लगता है– “बड़ी बहन नहीं, हरजाई और चुड़ैल हैं।”.....[17]

❋ ❋ ❋

हर तरह के अत्याचारों से पीड़ित यह अकेली औरत जहर पीकर अपने जीवन का अन्त कर लेती हैं। उसके भाई को अपनी गलती का एहसास होता हैं। वह कहता है–“रोमैंटिक नहीं थी वह। वह स्वाभिमानी थी। पुरानी राजपूत लड़कियों की तरह स्वाभिमानी थी। उसे लगा कि वह शिबू भाई के योग्य नहीं रहीं, बस उसने जहर खा लिया।”......[18]

शिवेन्द्र को लेकर उसके चरित्र पर कलंक लगाया जाता हैं।" उसके व्यक्तित्व के बारे में शिवेन्द्र प्रेमस्वरूप से कहता है– "वह शायद सोनवाँ, राजी, रोशन सबसे अलग किस्म की औरत हैं, वह बहुत साहसी महिला हैं। उसे कोई चरित्रहीन कहे तो वह तिनककर चंड़ी नहीं बनती थी, बल्कि प्रतिशोध के लिए चरित्र संचित करती थीं।".....[19]

नारी की दुर्दशा की कहानी न तो राजी, मुखिया, चन्द्रा और सोनवाँ से शुरू होती हैं और न ही खत्म होती है। हजारों वर्षो का इतिहास कहता है कि नारी रत्न हैं। इसी रत्न को पाये बिना पुरूषों ने सारी उपलब्धि को बेकार समझा। आज औरत के मन में एक अनकही पीड़ा हैं। आज भी उसकी मानसिकता गुलाम हैं। प्रतिभा जैसी महिला, पुलिस अधीक्षक होने के बावजूद, औरत की इस कथा से अछूती नहीं है।

सुखिया का यह सवाल कि औरत की अस्मत से भी कोई बड़ी चींज होती हैं–उसे एक पल के लिए जड़ बना देता है– " सुखिया और बंसल में कोई फर्क नहीं हैं दोनों की इज्जत का क्या मोल है। बंसल को चरित्रहीन कह दो तो, सुखिया की इज्जत लूट लो तो, क्या फर्क पड़ता हैं।"....[20]

❋ ❋ ❋

शिवेन्द्र भी अप्रत्याशित परिस्थितियों के सामने कई बार स्वयं को असहाय महसूस करने लगता है– "इस मुल्क का दुर्भाग्य है कि बिना स्वार्थ के गरीबों और मजलूमों की सच्ची मदद करने वाले बहुत थोड़े लोग हैं। इसीलिए सुदर्शन तिवारी अगर धनसाम को खरीद लेतें हैं, तो मुझे अचम्भा नहीं होता है। मैं क्या करूँ ऐसी जहालत में।".....[21]

"गली आगे मुड़ती है–

'गली आगे मुड़ती है' में पात्र तमाम परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के तहत वास्तविक मनुष्य की जिन्दगी भोग रहे हैं। अधिकांश पात्र प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुए हैं। जैसे किरण, जयंती व लाजो क्रमशः गुजराती, बंगाली और भोजपुरी संस्कृति के प्रतीक

चरित्र हैं। मधुरेश कहते हैं कि "गली आगे मुड़ती है" में स्त्री पात्रों का विवचेन रोचक भी हो सकता है और संभावनापूर्ण भी है"......[22] पर लाजों के अलावा और किसी नारी पात्र में वैसी कोई सम्भावना नजर नहीं आती—केवल किरण, जयंती के प्रेम प्रसंग रोचक हैं।

प्रारंभिक गतिशीलता के बावजूद अन्त तक आते—आते प्रायः सभी पात्र स्थिर साबित होते हैं। सिर्फ हरिमंगल अंत तक गतिशील रह पाते हैं जिसका मूल्य उन्हें चुकाना पड़ता है।

कुछ चरित्रों की गतिविधियाँ व सोच विचार के ढर्रे अस्तित्ववादी चिंतनशैली से मिलते—जुलते हैं। पात्रों से एक दूसरे के बारे में कहलवाकर उनकी चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट की गयी है। "रजुल्ली, ये हैं रामान्द तिवारी। लोग इन्हें नन्दू भी कहते हैं। रामजी, तुम धोखे में हो। तुम जिस आदमी को खोज रहे हो, वह ये नहीं हैं।"......[23] सभी पात्रों को जोड़ने की कोशिश रामानंद अकेले करता है।

कुछ प्रमुख चरित्र हैं— रामानंद तिवारी, हरिमंगल, जमनादास, सुबोध भट्टाचार्य, देवनाथ (देवू), रजुल्ली, जयंती, किरण, लाजवंती (लाजो) आदि।

"दिल्ली दूर हैं"

'दिल्ली दूर है' उपन्यास में डॉ0 सिंह ने भारत की सारी राजनीतिक गतिविधियों और सांस्कृति संरचना को जीवन्तता प्रस्तुत किया हैं। दिल्ली सल्तनत की कथा ऐतिहासिक यथार्थ की रोमांचपूर्ण गाथा हैं, तो सूफी फकीरों— बाबा फरीद एवं सीदी मौला तथा नाथ योगी—, रावलपीर आता है। उपन्यास का चरित्र नायक आनन्द हैं। आनन्द के ही शब्दों में— " गंगू पंडत, हमारे बिरादरान बाखूबी जानते हैं कि तुम्हारे जैसे पोंगापंथी का हर हुक्म तामील उनका फर्ज नहीं है। बेशक अगर मैं मुसलमानी मजहब के खिलाफ कोई हरकत करता तो इनका हक बनता है कि मुझे गिरफ्तार

करते, मेरी गरदन कलम करतें।''....[24] आनन्द के चरित्र के इस विकास में कल्पना का विशेष योगदान हैं। प्रमुख नारी पात्र देविका हैं। अन्य पात्रों में शकीला, नुसरत, रजिया सुल्तान।

❋ ❋ ❋

आनन्द वाशेक, सफीउल्लाह वासा और हिन्दू खान का व्यक्तित्व प्रभावी से अति प्रभावी होता गया हैं। ''वाशेक, तुम क्या बुन्देली पगड़ी से इतना प्रेम करते हो, कि झटके में तुमने तुर्क शाही पगड़ी की जगह बुन्देली शैली में इसे बांध लिया।.......[25] वह राजनीतिज्ञ हैं, वह योद्धा हैं, सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञाता है, महान देशभक्त हैं।

जुझौती–नरेश त्रैलोक्यमल्ल देव तथा जन सामान्य एवं बनवासी बन्धुओं से प्यार पाकर अपनी प्रतिभा के बल पर अग्रसर होता हैं। ''तुझे अगर कोई बचा सकता है तो केवल हम, किन्तु हम भी इतने संकटपूर्ण कार्य में हाथ डालने से पहले जगज्जननी का आशीर्वाद लेना आवश्यक समझते हैं।''....[26] इससे नरेश की बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता हैं।

चरित्र योजना, मुस्लिम सियासत के भयानक रूप, संस्कृतिक साधना तथा बिखरे हुए, राष्ट्रीय संघर्ष के अंकन की दृष्टि से, यह उपन्यास के पात्र शिखर पर पहुँच गए हैं।

''वैश्वानर''

'वैश्वानर'' उपन्यास का सन्देश है कि जो अपने क्रोध, अहं पर विजय प्राप्त कर, लोकहित के लिए समर्पित होगा, वही आगे याद किया जायेगा जैसे श्रीराम। डॉ0 सिंह ने अपनी कला कौशल के माध्यम से पात्रों का चयन किया हैं। पात्रों की मनः स्थितियों के भीतर भी चिंतन का स्वर दिया हैं। अतः उपन्यास में चिन्तन या दर्शन जीवन का अंग बनकर उभरता हैं। ''प्रतर्दन बोला, आज जाकर मन को शान्ति मिली'' ।......[27]

व्रात्यों से भिन्न वे आर्य है जो गृत्समद के पुत्र दीर्धतमा के वंशज थे। क्षयवद्ध, आर्यजन, धन्वन्तरि भीमरथ, दिवोदास उपन्यास का नायक प्रतर्दन शौनक आदि आर्य पात्र हैं।

वीतिहोत्र, हैहय, पाणि आदि तालजंघ के समर्थक हैं। लूट–पाट, चोरी, हत्या, बलात्कार, डकैती इनका कार्य हैं। ये आर्य मान्यताओं के विध्वंसक हैं। जहाँ कहीं आर्यो का निवास स्थान हैं, अथवा जहाँ कहीं आर्य अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं ये वहाँ उत्पात करके उन्हें तंग करना जानते हैं।

सम्पूर्ण उपन्यास इन्हीं आर्य, व्रात्य, भार्गव, नागवंश, हैंहय, बीतिहोत्र, पणि, तालजंघ, मुण्डा, किरात के घात प्रतिघात का जीवन्त कथा प्रवाह हैं।

अकाल वृद्ध केशकम्बली अपने छल प्रपंच से बाज नहीं आता और अन्त में राजकुमार प्रतर्दन केशकम्बली के पथ के काशी की प्रजा को शान्ति मिली। शौनक, काक्षीवान, राम भार्गव, अश्वतर, नाग सभी प्रतर्दन के अतिथि पात्र हैं।

"कुहरे में युद्ध"

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने 'हनोज दिल्ली दूर अस्त" के दो खंडों – 'कुहरे में युद्ध' और 'दिल्ली दूर है' नामों से प्रकाशित करवाया हैं। इतिहास के माध्यम से आज को समझने और समझाने का प्रयत्न किया हैं। उपन्यास में कालंजर के शासक त्रैलोक्य मल्लदेव, उनके सेनापति आनन्द वाशेक और दिल्ली दरबार का चित्रण हैं। आनन्द वाशेक कथा नायक हैं। नायक की वीरता का चित्रण हैं। "जुझौती ने इस बार जिस ढंग से सेनापति आनन्द वाशेक और राजा अजयहरि के नेतृत्व में तुरूस्कों की राजनीति का जबाब हैं।"...[28] डॉ0 सिंह कहीं भी तत्कालीन सामाजिक संरचना के अंग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्व आदि में से किसी के प्रति संकुचित दृष्टि का परिचय नहीं देते है।

जो खल पात्र है उनमें प्रमुख सुफलक चंदेल, उपेक्षिताचार्य, देवशर्मा के पुत्र गंगाधर आदि का पात्रानुकूल चित्रण किया गया हैं। ''ये जरीदा सवार वे भारतीय हैं, जिन्हें एक वक्त का भोजन नसीब नहीं हो पाता है। मुसलमान सेना उन्हें इस लालच में अपने साथ करने में सफल हो जाती है, कि जनता को खुलकर लूट सकते हैं और लूट के माल का चौथाई भाग खलीफा को देकर शेष अपने पास रख सकते हैं।''......[59]

''वैश्वानर'' का नायक वाशेक कहता हैं– '' मानव ने मानव के विनाश के लिए अस्त्रों शस्त्रों के क्षेत्र में जितना विकास किया हैं, उतना ही अगर मानव के बीच निःस्वार्थ प्रेम के लिए करता तो अब तक जगत स्वर्ग हो जाता।''....[30]

डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से विश्व कल्याण की भावना को भी उजागर किया हैं।

2. प्रमुख नारी पात्र –

डॉ0 सिंह के पात्र नर और नारी प्रेम के पर्याय हैं। उपन्यासों में नारी पात्र अपनी–अपनी भूमिका निभाते हैं। भारतीय नारी सुलभ गुणों की समष्टि होने के कारण इनका अंकन प्रायः आदर्शवाद के धरातल पर हुआ हैं। सरलता एवं सौहार्द इनकी चरित्रिक विशेषतायें हैं। बहुत सी स्त्रीं पात्रों की स्थिति अजीबोगरीब हैं। नारी वर्ग के विभिन्न रूप है–

(अ) स्नेहमयी मातायें
(ब) कठोर प्रकृति की गृहिणियाँ
(स) सीधी–सादी प्रेमिकायें
(द) कर्कशा वृद्धायें

वैसे से तो नारी अपनी प्रकृति के अनुसार कोमल स्नेह और सजग स्वभाव की होती है। स्त्री पात्रों का शरीर भी पुरूष पात्रों की तरह हाड़मांस का बना हुआ होता हैं, परन्तु उनका व्यक्तित्व, स्नेह, ममता से निर्मित होता हैं। स्त्रियों का वात्सल्य केवल अपनी संतान तक सीमित न रहकर किसी भी बालिका व बालक के लिए उमड़ सकता है। डॉ0 सिंह के बहुत से नारी पात्रों में संकुचन, स्वार्थ, कटुता हैं, इनमें लोभ और क्रोध विकारों की प्रधानता हैं। कुछ नारी पात्रों का स्वाभाव ही हैं, जो कलह, संग्राम के लिए सदैव तत्पर तैयार रहती हैं। ऐसे नारी पात्रों के मानसिक संस्थान में रागात्मक वृत्तियों का अभाव और ईर्ष्या, द्वेष, पाप का साम्राज्य हैं। लेकिन डॉ0 सिंह ने नारी शक्ति का अनुभव किया है। इसका क्रमिक विकास उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। "नारी की दीनता, उनकी नियति, उसकी ट्रेजडी एक जैसी है।"......[31]

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में नारी की कर्तव्यपरायणता को उजागर किया गया है–"औरत की जिन्दगी में भी एक चीज है सूरत से जुड़ी यानी उसकी मांग का

सिन्दूर। इस सिन्दूर की रक्षा के लिए औरत अपने प्राणों को भी दांव पर लगा देती है।''......32

अलग–अलग वैतरणी के नारी पात्र

पटनहिया भाभी (दीपा)

पटनहिया भाभी का असली नाम दीपा हैं। पर पटना में मायका होने के कारण ससुराल (करैता) में उसे पटनहिया भाभी कहते हैं। शरीर की बनावट अच्छी हैं "कितनी लम्बी है यह औरत। खड़ी हो जाये गली में तो हाथ उठाकर ओरी छू लें।''.......33

❋ ❋ ❋

सास के लिए गाँव की औरतों के बीच बड़ वर्गी दिखाने के लिए वह गुन–सहूर से भरी–पूरी, सुन्दर पढ़ी लिखी, कपड़ा–वपड़ा भी ढ़ंग से पहनने सबख से रहने, वाली आज्ञाकारी बहू हैं। गाँव के शोहदों के लिए पटनहिया भाभी बड़ी चार्वाक औरत हैं– "अरे नाहीं भौजी! हाथ जोड़ते हैं। गलती हो गयीं''......34

❋ ❋ ❋

पटनहिया भाभी जिस दुख से पीड़ित है, वह शादी के खोखलेपन के रूप में सामाजिक विसंगति से उपजा हैं। अच्छे परिवार में लाड़ प्यार से पली यह लड़की कल्पनाथ जैसे नामर्द के पल्ले से बाँध दी जाती हैं। भाभी को तन की प्यास, मन का खालीपन, जिन्दगी भार लगने लगती हैं, "पटनहिया भाभी की कुण्ठाएँ कुछ तो परिस्थितिजन्य हैं और कुछ शहरी वातावरण और शिक्षा से उत्पन्न अर्धचेतना का परिणाम।''........35

❋ ❋ ❋

सही नहीं लगता बच्चों के नंगे अंगों को कनखियों से देखते हुए उनकी डबडबायी आँखे, इस अवचेतन चालित व्यापार की वास्तविक पीड़ा को प्रकट कर देती है, "पटनहिया भाभी के लिए जैसे इशारा होता और वे कमर में हाथ डालकर भगई या धोती, नेकर या जाँघिया खींचकर नीचे कर देती।''.........36

पटनहिया भाभी का चरित्र इतना यथार्थ और जीवंत है कि उपन्यास का कोई भी चरित्र इस सूक्ष्मता को छू नहीं पाता। नारी सुलभ निष्ठा के साथ भाभी में बड़ी तीव्र संवेदनशीलता भी हैं "मैने अपना दुखड़ा सुना दिया। दिल का पत्थर हट गया। आगे तू जान तेरा विश्वास जाने"........37 स्थितियों को अपने काबू में लेने की अद्‌भुत क्षमता भी उसके पास हैं।

धनेसरी–

चमटोल के सभी पात्र श्रमजीवी ही हैं, धनेसरी बुढ़िया तो कर्मठता और जिजीविषा की मिसाल हैं। "धनेसरी गाँव में किसी से नहीं डरती। कोई उससे छेड़खानी करें, डाँटे तो वह एक के दो जबाब देने के लिये तैयार रहती हैं। लड़कों फड़को को भला वह क्या समझती? जब वह उनके बाप–चाचाओं के एक–एक करम से परिचित हैं"........38

❋ ❋ ❋

भरी जवानी में पति की मौत के बाद जिस साहस, धैर्य और मर्यादा के साथ, उसने अपनी जिन्दगी को संभाला हैं, वह उसकी कौम के लिए तो क्या, पूरी मानवता के लिए स्पृहणीय हैं। "उमर सत्तर के पार हुई। सर के बाल सन की तरह सफेद हो गये है.........39

❋ ❋ ❋

ढलती उम्र और छिपती शक्ति के मुताबिक उसे कितने पेशे बदलने पड़ते हैं, पर वह जीवन से न तो मुख मोड़ती है न ही निराशा, अवसाद को पास भटकने देती। "कौन है रे मुँह झौंसा! तेरे सात पुश्त को गंगा के दहाने में डारूँ। बूढ़ी औरत से ठिठोली करता हैं।"........40

धनेसरी चमारों के बंधुआ जीवन के मुकाबले छुट्‌टा जीवन की हिमायती हैं, पर गाँव घर छोड़ने को कायरता मानती हैं–"जहाँ मन आये, वहाँ जाकर कमाओ–खाओ, पर फुर्सत मिलते ही अपनी मँड़ई में लौट जाओ। तबै सान हैं, नहीं कसाई सोचेंगे कि

तू हार के भाग गये।''......[41] इस प्रकार सरूप और धनेसरी के रास्ते थोड़े भिन्न भले हों, पर मुकाम दोनों का एक ही हैं। उपन्यास में धनेसरी का जीवन्त चरित्र हैं।

दुलारी–

दुलारी का चरित्र अपने उन्मुक्त स्वाभाव, निश्छल प्रकृति और संतुलित विचारों से संचालित व्यवहारों के कारण हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेता हैं। दुलारी सरूप भगत की बेटी हैं – वैसी ही विचारशील, कर्मठ। ''चमार आदमी नाहीं है का भौजीं?'' ऊ खिलखिलाकर हँसती– ''दुनिया तो हमें दुतकारती ही है अछूत कहकर''......[42]

❋ ❋ ❋

युवा शरीर के सहज आकर्षण को संजोने योग्य कठोरता और शालीनता के साथ उसमें नारी सुलभ संवेदन–शीलता भी हैं। यह चमटोल को अपनी उन्मुक्त हँसी और रोचक कहानियों से गुलजार ही नहीं करती, तर्कपूर्ण विचारों से उसका पथ–प्रदर्शन भी करती हैं, '' औरत खुद न ढरक जाये तो मरद की क्या हिम्मत है कि वह कुछ कर सकें।''......[43] रचना प्रक्रिया में वस्तुगत दृष्टि से, कहानी को निर्णायक मोड़ देने में, उसकी भूमिका चमटोल के हास विलास पूर्ण जीवन खंडो को दर्शाने में महत्वपूर्ण बन गयी हैं।

कनिया –

कनिया पारम्परिक लोक चरित्र हैं। वह भारतीय नारी के त्याग, सहनशीलता, दृढ़ता, पवित्रता और पारिवार के प्रति कर्तव्यनिष्ठा आदि गुणों से युक्त आदर्श पात्र हैं।'' कनिया का व्यक्तित्व भी अजब पारदर्शी आइना हैं। पता नहीं इस चेहरे पर जो कुछ झलकता है, वह खुद के अर्न्तमन मन का प्रतिबिम्ब हैं, या दूसरे के मन की छाया।''......[44] डॉ0 सिंह ने बड़े सायुज्य कौशल से कनिया के व्यक्तित्व को अत्यंत गरिमामय बना दिया हैं। उपन्यास की हर घटना, हर चरित्र, गरिमा से अभिभूत हैं। वह जलती शिखा की तरह हैं, जिसके सामने पति बुझारथ आदि घुग्घु की तरह आँखे मुलमुलाते हैं, तो उनकी कुमार्गगामिता शायद इसका कारण हो। बिपिन छोटा

है, कनिया ने उसे माँ की तरह प्यार दिया हैं। पूरे परिवार के दुश्मन सुरजू सिंह कहते हैं– "क्या औरत हैं यह भी ....गम्भीर इतनी कि बड़ी से बड़ी आफत भी जैसे हिला नहीं सकती।"........45

❋ ❋ ❋

बंशीबो कनिया को गऊ लक्ष्मी मानती हैं। "बहू सुन्दर हैं। पढ़ी लिखी है। कपड़ा–वपड़ा भी ढंग से पहनती हैं।"........46

पति से इस कदर टूटकर भी वह मीरपुर के बबुआने की इज्जत की खाति सास की ममता और ससुर की सहानुभूति के सहारे वहीं पड़ी हुई हैं। अपने को भीतर से तोड़कर भी परिवार को जोड़े, हुए है। यही भारतीय नारी का आदर्श है।

नीला चाँद के नारी पात्र

श्री माँ शीलभद्रा

नीला चाँद उपन्यास में स्मरणीय चरित्र माँ शीलभद्रा का ही हैं। श्री माँ शीलभद्रा के दो रूपों की महिमा उपन्यास में व्याप्त हैं। अपने जीवन में बिघाधर देव की प्रेमिका तथा साधना क्षेत्र में वासुदेव की आराधिका, इन दोनों के मूल में उनका स्वरूप हैं, जो पति के अत्याचारों को झेलती, दुर्दनीय यातनाओं को सहती पत्नी का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिसका परिणाम, समाज व राष्ट्र के मंगल रूप में डॉ0 सिंह ने जोड़ दिया हैं, जिसके नाम लेने भर से– "शीलभद्रा का नाम सुनते ही गोविन्द काँप उठा"......47 उथल–पुथल मच जाती हैं।

❋ ❋ ❋

श्री माँ का चरित्र जीवन में मध्यकालीन साधनाओं का अवतार है, "माँ शीलभद्रा के दर्शन के परिणाम स्वरूप उपलब्ध आपकी अतुलनीय इच्छा शक्ति और आत्मबल की जागृति का संकेत दे रहा हैं।"........48 माँ के दर्शन से शक्ति उत्पन्न हो जाती हैं। साहित्य में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी की महामाया का

पुनरावतार भी, डॉ0 शिवप्रसाद की सृजन मौलिकता से ओत–प्रोत हैं। दोनों मध्य कालीन संदर्भो की ही उपज हैं।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने श्री माँ शीलभद्रा को महान और बहुगुण सम्पन्न बनाने में ढेर सारा कुछ भर दिया हैं। "कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है माँ, जो आपके प्रति अतुलनीय निष्ठा से आपूरित न हों।"........[49]

❋ ❋ ❋

"माँ, तूने मेरे बच्चे को यमराज की दाढ़ो से निकालकर बसंती के आँचल में डाल दिया हैं।........[50]

❋ ❋ ❋

शीलभद्रा माँ का शरीर बंगाल का है। "उस समय उनकी आयु कदाचित बीस वर्ष की होगी शुद्ध गौर वर्ण, नीले रंग के किनारे वाली श्वेत शातिका (साड़ी) श्वेत रंग का ही वैकक्ष्य और ऊपर श्वेत दुकूल।"......[51]

❋ ❋ ❋

माँ की आत्मा काशी की है "मुझे तूने अभी–अभी बहन कहा है न माँ, मै पार्वती नहीं दीन–हीन ब्राह्मण बालिका हूँ।"........[52] माँ का दिल जुझौती का। लेकिन यह सत्य है। विद्याधर देव को दिल देकर शीलभद्रा ने एक प्रेमिका का धर्म इस खूबी से निभाया हैं, कि आज भी उस प्रेम से दुनिया सीख लें।

शीलभद्रा स्त्री पात्र को डॉ0 सिंह ने भटकाया न होता, तो यह ज्यादा प्रभावी बन पाता। डॉ0 सिंह ने ही, मोह या महत्वाकांक्षा, पर प्रभाव डाला है। श्री सत्यकाम कहते है– "कहीं–कहीं लेखक ने इस चरित्र को अनावश्यक विस्तार दे दिया हैं।"......[53]

❋ ❋ ❋

लेकिन मधुरेश जी कहते हैं – "शीलभद्रा का चरित्र अरविन्द दर्शन के असर का सूचक हैं।"......[54]

गोमती–

गोमती के चरित्र – विस्तार व शारीरिक गठन, सौन्दर्य का चित्रण "एक अलौकिक तेज से उसका मुखमण्डल दीप्ति हो रहा था। सुनहले केश पीठ और कंधों पर बिखरे हुए थे।"......[55]

❋ ❋ ❋

गोमती अपनी पिता की अकेली सन्तान थी" कान्यकुब्ज के अप्रतिम योद्धा सोमेश्वर की वह इकलौती सन्तान थी।......[56] कान्यकुब्ज की अनाथ हो गई प्रतिहार वंशी कन्या चंदेल वंश की वधू बनीं। लड़ाई में भाग लेकर वह विजय में सहायक भी बनती है, और कीरत को कई आवश्यक तथा प्रजाहित – मानवहित के रूप में राजधर्म निभाने के अवसर भी दिलाती है। इससे कीरत की कीर्ति में चार चाँद भी लगते है।

गोमती की चरित्र सृष्टि एक उपयुक्त कलाकर्म लगती है– "मैं जाति–पाँति नहीं मानती। मैं शैव नहीं हूँ। पाशुपत भी नहीं हूँ। मैने तो केवल यह कहा था कि भोजन स्त्रियों को बनाना चाहिए।"........[57]

गोमती के चरित्र में पारम्परिकता और आधुनिकता का सुन्दर समन्वय उसके आचरण से भी प्रकट हुआ है। पतिव्रता व सती के दुःख–सुख में सहभागिनी बनकर वहाँ पत्नी धर्म का कुशल निर्वाह करने में इन दोनो दृष्टियों का समन्वित रूप को प्रस्तुत करती ही हैं, पर शीलभद्रा माँ के पाँव छूने के साथ ही सूरज गौड़ का भी स्पर्श करती हैं। अपनी जीत का आभास कराती हैं, "यह हमारी विजय का शुभारंभ हैं, इसमें संकट कैसा?"......[58] लोगों की उचित बातों को मानना, पर अपनी इयत्ता को भी जरूरत के अनुसार स्थापित करने में उसका रूप खूब निखरा हैं।

लांठनी (वेश्या) –

डॉ0 सिंह के उपन्यास में नारी पात्र 'लांठनी' का चरित्र साफ–सुथरा हैं, जो अपने जीवन में संघर्ष से सदा जूझती रहीं है। उसका पति एक सन्तान माँगता है तो वह कहती है–"जा,जा हिजड़ा कहीं का। हमसे लड़ना मत, नहीं तुम्हारे तीन पीढ़ी को तार दूँगी।"......[59]

❋ ❋ ❋

"दिन भर बिना हाथ गोड़ चलाये नशे में धुत्त रहता है, अउर अपने को साकत कहता हैं।"......[60]

❋ ❋ ❋

लांठनी (वेश्या) होते हुए भी पुत्र कामना भगवान से करती है–"मैं पुत्र–कामना से यक्षराज की पूजा करती हूँ। वे मेरे मनोरथ को पूर्ण करे।"......[61]

सहायक पात्र के रूप में लांठनी के चरित्र का उभार आया है। जिसे डॉ0 सिंह ने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया हैं।

मंजूशिमा के नारी पात्र

मंजु –

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की पुत्री मंजु का चरितांकन हैं। जो एक कृति के माध्यम से, डॉ0 सिंह ने अपने दुःख को प्रकट किया हैं। "दर्द कभी मीठा भी होता हैं"......[62]

❋ ❋ ❋

मंजू की शिक्षा–दीक्षा अच्छे वातावरण में हुई थीं। जो हमेशा प्रथम श्रेणी प्राप्त करती थी। " मंजू कुछ खिलाओं – पिलाओ, प्रथम श्रेणी प्राप्त किया है तुमने"......[63]

मंजू की बीमारी का पता तो साधारण चिकित्सक ने ही बता दिया था, "मंजू को कल लंग्स वाले विभाग में ले जाइए और किसी अनुभवी डॉक्टर से चिकित्सा

कराइए।''.....[64] मंजू को भी अपनी मृत्यु का एहसास हो गया था, ''बाबू जी, आप रोइए नहीं, मैं कुछ दिनों की मेहमान हूँ''......[65]

❋ ❋ ❋

मंजू को अपने पिता की आर्थिक स्थिति का आभास था बीमारी में इतना पैसा खर्च हो गया था कि और पैसा, उसके पिता कहाँ से लाएगें, ''आप डेढ़ लाख रूपये कहाँ से लाइयेगा।''......[66]

❋ ❋ ❋

चिकित्सा सम्बन्धी अपनी बीमारी के बारे में कहती हैं– ''मरे हुए लोगो को बहलाने के बहाने है सब''....[67]

❋ ❋ ❋

मंजू कृतज्ञ भी थीं बीमार होने पर भी अपना कर्तव्य पूरा करती थीं। वायुयान में यात्रा करते परिचायिका को धन्यवाद देती है और कहती है, ''आप जैसी ममतालु महिला मैंने नहीं देखी।''......[68]

डॉ0 सिंह के 'मूजशिमा' उपन्यास में मंजू एक आदर्श पात्र है जो अन्त में धरती माता की गोद में सदैव के लिए सो जाती है।

शैलूष के नारी पात्र

सब्बो मौंसी उर्फ सावित्री शर्मा उर्फ नट्टिन

सावित्री का चरित्र उपन्यास में उच्च कोटि का हैं, परन्तु पूरी कृति में वह शुरू से झूठी जिन्दगी को ढो रही हैं। जुड़ावन सरदार के जवान जिस्म पर रीझकर ही, वह पंडित जगदीश शर्मा की पुत्री से भागकर सावित्री नट्टिन बनती हैं, पर तभी से डॉ0 सिंह सावित्री को नकली जिन्दगी का खोल ओढ़ा देते है। वह प्रेमी जुड़ावन से संतान न उत्पन्न करने का वचन ले लेती हैं– ''यहीं कि तन–मन सब तुम्हारा होगा, पर सावित्री को कोई संतान नहीं होनी चाहिए।''......[69] सावित्री संतान–संबंध

तक इसलिए नहीं जुड़ना चाहती क्योंकि उसकी संतानों को लोग दोगला कहेंगे। नट जाति में आना सावित्री के लिये गौरव की बात थी, क्योंकि जुड़ावन के पुरखे मटरू ने अपने अपने बेटे से कहा था– "तुझे प्रेम ही करना था, तो किसी ऊँची जाति की छोकरी से करता"......[70]

❋ ❋ ❋

सावित्री अपने को नट जीवन में मिला ही नहीं पाती, तो बार–बार लोगों के सामने नट्टिन कहने की जिदभरी औपचारिकताएं निभाकर एक ढ़ोग को जीती हैं। नटों के जीवन में बदलाव चाहती है, " लगता है, तेरे हिस्से का दूध भी तेरा बाप पी जाता हैं।"......[71]

❋ ❋ ❋

संग्राम व्यवस्था भी वह खुद संभालती है, " मैं समझाऊँगी उन्हें कि यह लड़ाई कैसी होनी चाहिए और कौन–सा मोड़ लेने पर किस तरह पैंतरा बदलकर खड़ा होना होगा हमें।"....[72]

गहने और पैसे, जो गाढ़े दिनों में हमेशा 'सरवाइबल' के आधार बनते हैं। नट जाति में जेठरी कहती है – थोड़ी अनबन होते है तो "तू रंडी है कमीनी! तेरे गहने थे पेशाब की बूँदे, जिसके लिए जुड़ावन और बसावन जैसे रंडीबाज चुनौटी उठाये इन्तजार करते है।"......[73]

❋ ❋ ❋

सावित्री के जीवन में कई व्यवहारिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। सावित्री के अस्तित्व का यथार्थ अपने आप प्रकट हो जाता हैं। "सब्बो चाची के चेहरे पर जरा भी सिकन नहीं पड़ी। वे अखबार को पढ़ती रहीं, पढ़ती रहीं। उनका चेहरा गंभीर था। मतलब सूरजभान और परताप में ठन गयी।"......[74]

ब्राह्मणों की तरह नट जाति में भी उनका मान–सम्मान होता हैं, "मौसी कह रही थीं कि नट युवक, बहुएं सब उसे धुरफेकन की तरह ब्राह्मण समझते हैं और उसके चरण छूते हैं। उसकी जजमानी पूरे महाइच में है और मेरी नट परिवारों में।"....[75]

❋ ❋ ❋

सब्बो मौसी के ह्रदय में ममता भी कहीं–कहीं फूट पड़ती हैं, "बकुल को उठाकर छाती से लगा लिया। पहली बार वह छोटी बच्ची की तरह फूट–फूटकर रोने लगी।"......[76]

डॉ0 सिंह के शैलूष उपन्यास में सब्बो मौसी एक जागृत और सशक्त पात्र हैं, जो राजनीति में पारंगत हैं।

रूपा –

शैलूष उपन्यास की रूपा कबीले की सबसे सुन्दर और तेजतर्रार लड़की हैं। वह नट जाति की लड़की नहीं लगती, किसी गृहस्त की बेटी बहू लगती हैं। "सादगी और सुन्दरता दोनों हैं इसमें............गुजरात से लेकर बंगाल तक के नौजवान जिसे पाने के लिए अपनी कुर्बानी के लिए तैयार हैं।......[77]

❋ ❋ ❋

रूपा सबसे तेज व पक्की छुरेबाज लड़की हैं, "यह मर्दो का घमण्ड हैं। इसे रूपा जैसी लड़किया ही तोड़ सकती हैं। ये मर्द दुकड़हे बिना पूँछ के जानवर है। रूपा वहाँ मर्दो को छुरे की नोंक पर नचाती हैं।.....[78]

❋ ❋ ❋

रूपा अत्याचार के खिलाफ भी लड़ती है तो सब्बों मौसी कहती हैं– "हमारी रूपा केवल नट कन्या नहीं हैं। वह अत्याचार के खिलाफ जेहाद बोलने वाली पलीता हैं।"......[79]

'तेरी छुरेबाजी का जबाब नहीं हैं। ऐसा निशाना मारती है कि चाकू बीस हाथ दूर रखे कुम्हड़े में धँस जाता है। जीती रह बेटी।''......[80] बुद्धिमान नट युवक मनिका की वह प्रेमिका हैं। उसका एक पालतू तोता भी है, जिसे वह बहुत चाहती है। और जो रूपा से सीखकर सबके बारे में मुँह पर बोल देता हैं।

औरत के नारी पात्र

प्रतिभा बंसल

औरत उपन्यास में डॉ० सिंह ने नारी के रूप में प्रतिभा बंसल को प्रमुख नारी पात्र बनाया है। जों एक जाग्रत और सामाजिक महिला होने के नाते समाज में अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाती हैं। पुरूष वर्ग पर छींटा कसी करती हैं, ''सोबरन तुम तो एक खून चूसने वाली जोंक की तरह पिलपिले आदमी लगते हो.....[81]

❋ ❋ ❋

पुलिस विभाग की एक अफसर होने के नाते अपना फर्ज समाज के प्रति निभाती हैं, ''प्रतिभा बंसल औरत के सही हक को दिलाने के लिए ही पुलिस में आई हैं।.....[82]

❋ ❋ ❋

समाज में हिंसा न पैदा हो तो अहिंसा का रास्ता भी अपनाती हैं, ''आपके समधी लोग और बहनोई आपसे क्षमा मांगना चाहते हैं अपने पिता और ताऊ को भी लेते आओ।''.....[83]

❋ ❋ ❋

शारीरिक रूप से भी स्वस्थ और चेतन मन कर्तव्य परायणता उनके रग–रग में भरी थीं। ''यह तो बहनी जी मरद लोगन के नाक पर बूट से मार देती है। उनके बदन में तो हड्डी है नहीं नहीं। सुनते है कि कूदती है तो बाँस बराबर हवा में उड़ जाती हैं।''......[84]

महिलाओं का अपमान नहीं सह सकती थीं, "तूने सरकारी काम करने वाली महिला को रंडी कहा।".....[85]

❋ ❋ ❋

समाज में लोगो के अन्दर खौंफ पैदा हो गया, "चुप हो जाइए तिवारी बाबा। आप तो जायेगे ही। मेरी भी लुटिया डुबोयेगे। आप इतनी बड़ी पुलिस ऑफीसर को रंडी कह रहें है बेसवा कह रहे हैं, शर्म की बात हैं।".....[86]

सोना–

औरत उपन्यास की दूसरी स्त्रीं पात्र सोना हैं। जो एक विधवा के रूप में जीवन व्यतीत कर रही हैं, "सफेद साड़ी में लिपटी, पीठ पर कजरारे बालों को फेंकती एक युवती खड़ी हैं।".....[87]

❋ ❋ ❋

सच्ची प्रेमिका के रूप में भी पहचान बनाई हैं, शिवेन्द्र के लिए कहती हैं– "शिबू मेरे लिए संजीवनी की तरह थे। वे आते तो जीते जी मुर्दा बनने के लिए विवश नहीं होती।".....[88]

❋ ❋ ❋

आजादी के लिए अंहिसा का नहीं हिंसा का रास्ता अपनाने की सोचती हैं, "आज तक सत्याग्रह से किसका ह्रदय परिवर्तन हुआ........सोनवाँ को तो मैं अंगारा बनते देखना".......[89,]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह ने स्त्री पात्रों को मनोवैज्ञानिक चारित्रिक आधार प्रदान किया हैं। स्त्री पात्र सोचती बहुत हैं कि समाज में स्त्री जाति का उद्धार कैसें हों।

गली आगे मुड़ती हैं, के नारी पात्र

जयंती

जंयती गांगुली परिवार की निहायत शालीन सुशील स्वभाव वाली बंगाली लड़की हैं। "जयन्ती, हिन्दी से एम0ए0 कर रही हैं।"......90

❋ ❋ ❋

बचपन सें ही परिवार का भार आ जाना, और उसे दायित्व पूर्ण निभाना, "गाँगुली महाशय कई बार कह चुकें है कि अब उनकी पत्नी बूढ़ी हुई, लड़की जयन्ती को अपनी पढ़ाई–लिखाई देखनी है ।"......91

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह की योजना के अनुसार जयन्ती का सृजन बंगाली खाने का चटोर लगता हैं"......92

❋ ❋ ❋

जयन्ती रामानन्द से कहती हैं अपनी संस्कृति में खान–पान की बड़ाई करती हैं। नारी चेतना की भावना भी उसमें विद्यमान है, "तुमने अपने को किसी नारी की अवस्था में रखकर सोचा है। कितनी असहाय, मूक और करूणा की पात्र होती हैं वह।"......93

❋ ❋ ❋

वह नारी स्थिति शौषण व स्वातंत्र्य को लेकर प्रश्न उठाती हैं। जयंती यह जानते हुए भी कि रामानन्द किरण से प्यार करता हैं, फिर भी वह उसकी तरफ आकृष्ट बनी रहती हैं, "नहीं दे सकते वचन तो जाने दो, इतने दु:खी क्यों हो रहें हों।"........94

❋ ❋ ❋

जयंती पूरी युवा पीढ़ी को सेक्स में डूबने पर कोसती है और अपने इष्ट मित्रों की कामना करती है, "मैं सिर्फ तुम्हारी बंधु हूँ। इसलिए मुझे तुम्हारी प्रतिभा से मोह हैं। मैं चाहती हूँ कि तुम नयी–नयी निकलती अमोली आग्रगाछ की तरह बढ़ते रहो,

और वह एक दिन मोजरों से लद जाए और तुम्हारी मादक सुगंध से दुनिया भाव–विभोर हो उठें।''.....[95]

किरण

किरण एक गुजराती लड़की है जिसे अपनी संस्कृति से बहुत लगाव हैं, गुजराती संस्कृति का गरबा नृत्य एक अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया हैं, " मैं गरबा से बहुत प्रेम करती हूँ। शायद ही कोई गुजराती लड़की हो जो गरबा के नाम पर थिरक न उठती हो, पर दुनिया भर के तमाम लोगों के सामने मैं यह सब दिखाने की स्थिति में अब नहीं रही......मैं नाचना चाहती हूँ, रिझाना चाहती हूँ।''.......[96]

❋ ❋ ❋

प्रेम के क्षेत्र में भी वह भूमिका निभाती है सुबोध भट्टाचार्य ट्यूशन पढ़ाते हैं उन्हीं से प्रेम करने लगती हैं, ''.......रात दिन तुम्हें रटती रहती हूँ पर तुम्हारा नाम नहीं जानती''.......[97]

❋ ❋ ❋

किरण नटखट, शरारती व विद्रोही स्वभाव की लड़की हैं, शारीरिक बनावट भी अच्छी हैं, " वह पतली छरहरी, भरे मुख की युवती थीं, बड़ी–बड़ी आँखें, सुती हुई नासिका''.......[98]

❋ ❋ ❋

किरण कुछ ज्यादा मुखर है और प्रेम प्रसंग भी अधिक है। अनिंध सुंदरी तो वह है ही। जमना के अलावा जयंती भी उसकी प्रशंसा करती हैं। "किरण बहुत अच्छी है आनन्द।''.....[99]

कुल मिलाकर सभी मायने में वह अपने वर्ग से संबद्ध गुजराती समाज का सफल प्रतिनिधित्व करती हैं।

लाजवंती (लाजो)

लाजो का चरित्र अकेले ही समाज में नारी के साथ हो रहें अत्याचारों का दस्तावेज बन गया हैं। अनमेल विवाह के साथ जुड़ी आंतरिक पीड़ा की आनुभूतिक सच्चाई को लाजो के माध्यम से, डॉ0 सिंह ने सहज ही व्यक्त कर दिया। लाजो विरोध करती है, " अगरवाल और ओकरे बेटवा के नाँवें हमार बाप पट्टा नाहीं लिखाय गवा है जौन तू हमें हुआँ निलामी चढ़ाय के भेज दिहो।"......[100]

❋ ❋ ❋

फिर इसके परिणामों के तहत शारीरिक यातना और मानसिक यंत्रणा का सिलसिला भी हैं, जिसे झेलना उसकी दुर्निवारता है। इस रूप में लाजों सम्पूर्ण निम्न वर्ग की नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। हरि मंगल को खाना परोसती कहती हैं, " सोच लो बाबू, जिंदा ड्योढ़ी डाँके वाली तिरिया के हाथ से खाना खाए के बारे में तोहार सास्टर कहीं रोक—टोक न करत होय।"......[101] सामाजिक जुर्म—और—सितम की आग में तपते—तपते लाजों की काया भले ही दुनिया की निगाहों में भ्रष्ट—कलंकित हो गयी हो पर उसके विचार तो कंचन की तरह निखर आये हैं।

दिल्ली दूर हैं, के नारी पात्र

देविका

डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यास 'दिल्ली दूर है' में देविका नारी पात्र को सम्पूर्णता प्रदान की हैं। जो नियम—पालन, पाठ—पूजा में नियमित और आदर्श नारी हैं, "देविका ने सदा की तरह अपने कमरे में अगरबत्तियां जला दीं।"......[102]

❋ ❋ ❋

वह तेजस्विनी नारी हैं, " देविका में भी देखी मैंने। कितनी ऊर्जस्विता नारी हैं"......[103]

❋ ❋ ❋

धर्म और अधर्म की लड़ाई लड़ने में संघर्षरत हैं, " लड़ाई धर्म और धर्म के बीच नहीं थी। यह लड़ाई धर्म और अधर्म के बीच थी।"......[104]

राज–काज और राजनीति में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेती हैं, और राज्य की गुप्त योजनाओं को बनाकर सही क्रियान्वित करवातीं है। अपनी दासी को डाँटती और फटकारती है जो रणनीति में विफल हैं, ''जाकर वहीं ग्रामीणाओं के साथ गोटियाँ खेल''....[105]

❋ ❋ ❋

प्रेमिका का भी धर्म निभाती हैं आनन्द बाशेक के प्रति अपना प्रेम जाहिर नहीं करती, कहती हैं– ''सब मेरे भीतर के अन्तर्यामी का खेल हैं। मैं यदि आनन्द के साथ सुख से रहना चाहूँ तो इस बार कोई ऐसा तूफान आएगा कि मेरे साथ अमात्य भी बवण्डरों के बीच घिर जाएंगें।''.....[106]

❋ ❋ ❋

अपने प्रेम को छुपाये रहती है कहती है–''मैं तो नारी हूँ इसलिए गोपनीयता में जीना आता हैं''...[107] अपने राज्य के प्रति पूर्ण समर्पित है जो जुझौती है आज बुन्देलखण्ड के नाम से जानी जाती है।

बुन्देली बेगम

डॉ० शिवप्रसाद सिंह का बुन्देली बेगम स्त्री पात्र एक काल्पनिक पात्र हैं, जो राज्य रक्षा के लिए आता है। '' मैं बुन्देली वेगम कहलाती हूँ।''....[108]

❋ ❋ ❋

अपनी संस्कृति का परिचय देती है, '' मैं एक औरत हूँ मुसब्बिर जो खाना परोसती हैं, कभी किसी का छीनती नहीं।''......[109]

❋ ❋ ❋

''आपने अगर बुन्देलखण्ड नहीं देखा है मुसब्बिर तो आपको वेतवा और धसान के मुहाने का इतना साफ मंजर दिखा कैसे। ''......[110]

शकीला के और बुन्देली बेगम के वार्तालाप में शकीला को बोलने के बेजुबान कर देती हैं कहती हैं, "किर्र.....तो आदमी की कटती गर्दन पर कहा जाता है गुलबदन, घोड़े की गर्दन के लिए क्या कहोगी?"....[111] के आक्रमण से भयभीत हैं, "रात में बुन्देली बेगम सो नहीं पाई। उसकी आँखों में उजड़ी हुई बस्तियाँ और उनकी बीरानी छाई हुई थी।".....[112] राजनति में पारंगत होते हुये भी अपने कर्तव्य बोध पर खरी नहीं उतरती हैं। लेकिन अन्त में जीत 'जुझौती' की होती है जिसमें बुन्देली बेगम का महत्वपूर्ण योगदान है।

दीप्ति

डॉ0 सिंह की कृति 'दिल्ली दूर है' में दीप्ति का परिचय इस प्रकार मिलता है, "दुधही के चन्देल वंश के अमात्य की पुत्री हैं".....[113]

❋ ❋ ❋

उसके रूप–रंग और गुण का तो कोई जोड़ ही नहीं था कायस्थ जाति में तो वही एक हीरा थी, "कायस्थ में उतनी सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न दूसरी कोई युवती नहीं।".....[114]

❋ ❋ ❋

दीप्ति अन्याय के खिलाफ भी आवाज उठाती हैं, पुरूष वर्ग को ललकारती हैं " मर्दानगी बुरी नहीं है। नारी की रक्षा भी अपना कत्तर्व्य है, पर शत्रु–पुत्री को जानते हुए उसके लिए आत्महत्या करने की आवश्यकता कौन सी कूटनीति है अमात्य?".....[115]

❋ ❋ ❋

आत्मग्लानि से कुंठित हैं " मै स्वयं इस प्रकार कुपित हूँ कि एक ऊँटनी से हारकर मुझे आत्महत्या कर लेनी चाहिए।".....[116]

बैद्य दवा देने के लिए आते है और वैद्य से अपनी पीड़ा व्यक्त करती है" कहीं उस ऊँटनी के अभाव में विरह–ज्वर तो नहीं हैं?''......117 दीप्ति और वाशेक प्रेम की डोर में बंधे गये थे, दीप्ति और वाशेक का मिलन इस प्रकार हुआ, " न दीप्ति अपने अस्तित्व को ढूढ़ पा रही थी न तो वाशेक ही।''......118 फिर दीप्ति ने अपने राज–काज मर्यादा हेतु अपना सर्वस्त्र त्याग दिया।

वैश्वानर, के नारी पात्र

सिन्धुजा

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह की कृति 'वैश्वानर' में नारी पात्र सिन्धुजा का व्यक्तित्व धरातलीय हैं। उसका व्यक्तित्व आकाश में धुव्रतारे के समान हैं, "सिन्धुजा वह ध्रुवतारा है जो आर्यवर्त की जातियों के वैषम्य मिटायेगी।''.......119

❋ ❋ ❋

शक्ति तथा स्फूर्ति उसके चरित्रमें समाहित हैं। वह आर्य संस्कृति की प्रतीक है। शारीरिक दृष्टिकोण से भी बहुत सुशील हैं " साँवले सुघड़ चेहरे पर दोनो नैन खंजन की तरह चिलक उठे और दुग्ध–धवल दंत पंक्ति से अधरों के कोर को दबाते हुए''.....120

❋ ❋ ❋

सिन्धुजा अपनी बातों से प्रभावित कर देती है, "सिन्धुजा की वार्ता का ऐन्द्रिजालिक प्रभाव था''.......121

❋ ❋ ❋

सिन्धुजा आर्य कन्या है। उसका जीवन नियोजित एवं सचेष्ट हैं, सिन्धुजा को अधिक से अधिक व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक ज्ञान है वह कहती है, "कैसा संत्रास है बाबा! माना कि मनुष्य मर रहे हैं पर पेड़ों पर पक्षी जड़ बने बैठे है। आँगनों में काक कही उछल–कूद नहीं कर रहे हैं। जूँठन के लिए छीना–झपटीं कई–कई बार सब कुछ तो बन्द है क्या हो गया हैं?''......122

सिन्धुजा की वाणी मृदुभाषी है तथा उसका स्वरूप बहुआयामी तथा बहु–व्यक्तित्व से जुड़ी हैं। वह काम–वासना के तृष्णा से विवेक को हर लेती है, "मयूरी है क्या प्रकाश मुझे इस अवस्था में भी भरमाया ही रहेगा।"......[123] सिन्धुजा भी एक उच्च कोटि की योगिनी हैं।

कुहरे में युद्ध, के नारी पात्र

कल्पलता

'कुहरे में युद्ध' के नारी प्रमुख पात्र, नायक की भाभी कल्पलता हैं। जो अपने राज्य पर न्यौछावर होने के लिए तत्पर रहती है। जुझौती राज्य के लिए कहती हैं, "मै। माँ हूँ वत्स, जुझौती की हर नारी की तरह मैं भी माँ हूँ।"......[124]

अपने देवर आनन्द पर पूर्ण मामृत्व और विश्वास रखती हैं, "वत्स कि तुमने मेरे परोसे कलेवे को ठुकराया हो?"......[125]

❋ ❋ ❋

अपनी प्रजा पर भी अटूट विश्वास रखती है राजेश्वर के बारे में कहती है– "जहाँ तक मैं राजेश्वर को जानती हूँ वे जुझौती के सच्चे और निर्हेतुक प्रजा पालक है।"......[126]

❋ ❋ ❋

अपने पुत्र की रणनीति और युद्ध नीति की जानकारी स्वयं जाकर लेती हैं। भोज से पूछती है, "भोज देव क्या आप हमें सत्य–सत्य बताएँगें?"......[127]

❋ ❋ ❋

सलाहकार के रूप में भी कल्पलता का कोई जबाव नहीं हैं, वह आनन्द को समझाती हैं, "वत्स, बड़े दायित्व के संकट भी बड़े होते हैं। निर्णय भी तुम्हीं को लेना हैं।"..[128]

आनन्द तारीफ करते हुए कहता हैं– "आपकी प्रेरणा ही मुझ अकिंचन की थाती हैं।"...[129] कल्पलता का चरित्र पूरे उपन्यास में सरल और सादगी पूर्ण दर्शाया गया हैं।

देविका

डॉ0 सिंह की अन्तिम कृति 'कुहरे में युद्ध' में देविका का चरित्र उज्जवल हैं। देविका का चरित्र 'दिल्ली दूर है' में प्रमुख पात्र के रूप में स्थापित किया गया हैं। देविका आनन्द वाशेक की प्रेमिका हैं, अन्त में आनन्द वाशेक के सेनापति से कहती है, क्योंकि उसे अपनी मातृभूमि और वहाँ के लोगो से लगाव हैं जो एक सच्चे देशभक्त है।, "मैं आनन्द वाशेक से सौ बार कह चुकी हूँ, कि हमारे गाँव के लोग अपने स्थान से, अपनी जड़ से, कट कर कहीं भी जायेगे, तो वे शरणार्थी ही कहलायेगे। जो हमें मरते दम तक स्वीकार्य नहीं है।"......[130] पलायन देविका को स्वीकार नहीं कि क्योंकि वह अपनी मातृभूमि से अन्तिम समय तक जुड़ी रहती हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की चरित्रिक दृष्टि व्यक्तित्व सम्पन्न और जीवंत हैं। स्त्री पात्र योजना में व्यक्तित्व सम्बन्धी सभी तत्व उभरकर सामने आये।

३. प्रमुख पुरूष पात्र

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में पुरूष पात्रो के व्यक्तित्व गठन में नारी का महत्वपूर्ण योगदान है। डॉ0 निर्मला शर्मा ने लिखा है "बचपन में माँ और युवावस्था में पत्नी के रूपों में नारी अगर उसे सहारा न दे तो पुरूष बाहरी वातावरण में कहाँ खो जाये, इसका अस्तित्व ही न रहें! शायद".....[131] नारी पात्र एवं पुरूष पात्र एक दूसरें के पूरक होते हैं।

डॉ0 सिंह के पुरूष पात्र उतने ही समर्थ एवं श्रेष्ठ हैं, जितने उनके नारी पात्र। पुरूष पात्रों के लिए नारी पात्रों को संघर्षमयी एवं प्रेरणामयी बताया है।

पुरूष शब्द की उत्पत्ति में मूल शब्द है 'पृषन' पृ + षन = पुरूष (साझा) पुरूष। मराठी कोश के अनुसार 'पुरूष' शब्द इस प्रकार आया है " पु + वृष से यह शब्द बना है। वैदिक भाषा में पृ + वृष ऐसी इसकी व्युत्पत्ति की गई है।....[132]

आप्टे के संस्कृत कोश के अनुसार – " पुरूष, शी + ड़, वृषो। पुर + कुशन, इसकी व्यत्पत्ति बताई गई है। आप्टे कोश में अर्थ इस प्रकार है।

(अ) नर, मनुष्य, मर्द

(ब) मनुष्य, मनुष्य जाति

(स) किसी पीढ़ी का प्रतिनिधि

(द) अधिकारी, कार्यकर्ता, अनुचर

(य) मनुष्य की ऊँचाई या माप

(र) आत्मा

(ल) परमात्मा .....[133]

प्रकृति की महाशक्ति को भी पुरूष रूप में देखा गया हैं। प्राकृतिक शक्तियों को नियंत्रण करने वाला देवता भी पुरूष रूप हैं। ऐसा मानकर वेदों में भी पुरूष की

प्रार्थना की गई हैं। सोम, अग्नि, सूर्य, सरिता, ऊषा, वायु, पृथ्वी। ये सभी प्राकृतिक शक्तियां हैं। इन शक्तियों को नियंत्रित करने वाले देवता, इन्द्र, वरूण, वृहस्पति, आदि पुरूष रूप में ही हैं। ऋग्वेद के अनुसार " पुरूष का मुख ब्राह्मण का है, क्षत्रिय उसकी छाती से है, पेट से वैश्य है और उसके पैरो से शूद्र उत्पन्न हुये हैं, और उसके मन के भीतर से चन्द्र, आँखों से सूर्य, मुख से अग्नि, इन्द्र प्राण से, वायु नाभि से अंतरिक्ष, सिर से स्वर्ग, पैर से भूमि और नाक से दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं। ''....134

डॉ0 सिंह ने विभिन्न प्रकार के पात्रों की मानसिकता का चित्रण किया है जो एक दूसरे की अतः प्रवृत्ति भिन्न होती हैं।

1. अलग–अलग वैतरणी के पुरूष पात्र

1. जैपाल सिंह

ठाकुर जैपाल सिंह एक चरित्र ही नहीं, बल्कि एक युग हैं। डॉ0 सिंह ने उनके चरित्र निर्माण से जमींदाराना रूतबा को जाहिर किया हैं। जैपाल सिंह सुखदेव से कहते है। "सुना आपके स्वागत में जलसा हो रहा है, तो मै भी आ गया। आपने गाँव के तुम रतन हो। देशभक्त के स्वागत–सत्कार में गाँव का मुख्यिा ही न रहे, तो कितनी बुरी बात होगीं।....135

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह ने ठाकुर जैपाल के चरित्र–निर्माण के माध्यम से एक जमींदार की छवि का चित्रण किया है दयाल पंडित कहते है–"ऊ गोरा भीषण शरीर, दपदप मलमली साफा......यह–यह मुठिया गलगोच्छे, काले–काले जामुन की तरह......बड़ा ताप था बुढ़ऊ मालिका का।''......136

लेखक ने जैपाल को जमींदारी के सम्पूर्ण प्रतिनिधि के रूप के चित्रित किया है। इसलिए उनका समस्त आचरण मृदुता–कटुता, व्यवहार कुशलता

काइयापन, वाक्पटुता–समझदारी आदि को दिखाने के लिए एक स्थल पर जमींदार को बाघ और सम्पूर्ण गाँव को मेमने का रूपक देते हुये कहते है। "यहाँ कभी किसी ने यह सवाल नहीं किया कि कृपया अपने इस नक्शे में वह रास्ता बताइए जिससे होकर बाघ बिना रास्ता भूले मेमने को पास पहुँच जाये। यहाँ तो भूल–भुलैया में रास्ता ढूँढकर मेमने ही बाघ की माँद में आया करते हैं। 137

❋ ❋ ❋

इस हिंसक रक्त पिपासु–रक्तच्छता चर्चित चण्डचंचु–बाघ का आतंक इस कदर छाया है कि जमींदारी टूट गयी फिर भी किसी को विश्वास नहीं होता था कि मांसाहारी बाघ शाकाहारी हो गया। आदि के अंत तक जैपाल सिंह जमींदारी रूतबा और ज्ञान के प्रतिरूप है। जमींदारी टूटने के बाद कहते है–"अपनी जिंदगी के ज्यादा दिन लोगों के झुके माथे और झुकी आँखों को देखकर बिताये है" 138

❋ ❋ ❋

ठाकुर जैपाल सिंह का रूतबा करैता गाँव में इतना बढ़ा हुआ था कि अफसरान भी उनके खिलाफ नहीं जा सकते थे, "जज–कलक्टर का हाथ पकड़कर फैसला बदलवा दें, दरोगा–थानेदार की तो बात ही क्या? चाहें थानेदार नया हों, चाहे पुराना, करैता गाँव में अपने के पहले ठाकुर जैपाल के बारे में सब कुछ जान लेना उसका फर्ज था।".....139

उपन्यास में यही ऐसा चरित्र है, जो डॉ0 सिंह की कहानियों की तरह मन में पहले उभरा–सा लगता है और उसकी परिणति भी भैरों पांडे के समान होती है–फर्क सिर्फ इतना है कि वहाँ अपने पारंपरिक आदर्शो के खिलाफ जीवन की प्रवृत्तियों को लेकर विरोध है, और उपन्यास में जीवन की प्रवृत्तियों के खिलाफ झूठे आदर्शो से पलायन हैं।

2. विपिन

विपिन उपन्यास का सबसे प्रमुख पात्र है, लेकिन कमजोर भी हैं। डॉ0 सिंह विपिन के सम्बन्ध में इस तरह नहीं सोचते हैं वे कहते है, "विपिन सफल नहीं, पर वह साधारण पात्र नहीं है".....[140]

❋ ❋ ❋

दयाल महाराज को लगता है कि यह लड़का कुछ करेगा वे कहते है, "बड़ा तेज 'रोवॉ–पाकी' का आदमी है। सत्य पर अड़िग रहने वाला मरद है यह।".....[141]

उपन्यास के बारह–तेरह महीने की कालवधि में विपिन ने सिर्फ चार काम किये हैं– चार सौ रूपये देकर पुष्पी का घर कुर्क होने से बचाना, जग्गन मिसिर को लेकर थानेदार को ललकारना, कुल मर्यादा के लिए बुझारत का दोष आपने माथे पर लेना, हवालात से छुड़ाकर घर लाना। वह अपना कर्तव्य समझता हैं।

विपिन ग्राम सुधार का सपना लेकर गाँव आता हैं। पूरे गाँव में उसकी प्रतिभा साफ–सुथरी हैं। गाँव के सम्मानित व्यक्ति इसका प्रमाण देते है। जग्गन मिसिर पूरे गाँव का जैसे प्रतिनिधित्व करते हुए सबके मन में विपिन के प्रति आस्था और विश्वास प्रकट करते हुए कहते है – "यह बड़ा भयानक सैलाब है भइया, इसे रोको। तुम्हीं रोक सकते हो इसे।".....[142]

विपिन का गाँव के प्रति लगाव भी नितांत बौद्धिक होकर रह गया है। गाँव ही क्या परिवार – भाभी, कनिया तक के रिश्तें में बौद्धिक लगाव स्पष्ट हो गया हैं, वरना वह इतनी जल्दी और आसानी से सबसे कट नहीं पाता।

3. जग्गन मिसिर

जग्गन मिसिर के चरित्र में छिपाव–दुराव कुछ नहीं था। वह पहलवानी करते थे, शरीर से हृस्ट–पुष्ट थे। मिसिर को अपने तथा पराये का ज्ञान है वे कहते है–"यह सब कुछ झूठ हैं, फालतू है, बेकार है। अचानक मिसिर को अपना ही शरीर बेगाना लगने लगा"...[143] उनको जीवन की सच्चाई का ज्ञान है। वह शान्ति और सन्तोष का जीवन बिताना जानते हैं।

मिसिर के हाव–भाव ग्रामीण परिवारों की संस्कृति से मिलते–जुलते है। वे सोचते है– "गर्मियाँ निकट आती। शादी ब्याह की बात चलाने के लिए लोग–बाग दौड़ धूप करते है।...[144]

❋ ❋ ❋

गाँव की दुर्दशा और गरीबी का विवेचन तथा शोषक वर्ग की मानसिकता का दो टूक खुलासा करते है। लेकिन चिंतन का सर्वाधिक उद्वेग दो स्थलों पर फूटा है– 1. शशिकांत तथा विपिन के साथ देवनाथ के घर में 2. थानेदार के दूसरी बार आने पर उसके सामने। डॉ0 सिंह प्रत्येक जगह संकेत करते रहते हैं कि मिसिर गाँव की बदलती स्थितियों के बारे में गहराई से सोचते हैं। गाँव के प्रति पूर्ण समर्पित होकर कहते हैं– "सब कुछ दे दिया। वर्तमान भी भविष्य भी"......[145]

❋ ❋ ❋

जग्गन में प्रतिकार की भावना प्रबल है जो पौरूष और कर्मठता में इस हद तक गतिशील रहती है कि एक सीमा तक वे भाग्यवाद में अविश्वास प्रकट करते है–"जर्बदस्ती मेरा कोई कुछ छीन ले, और के नाम पर हाथ धोकर बैठा रहूँ।...[146]

4. खलील खाँ

करैता गाँव की तमीज–ओ–तहजीब, शराफत और ईमानदारी के एक मात्र अवशेष खलील चाचा के माध्यम से मानो डॉ0 सिंह समकालीन युग में इन सबकी समीक्षा कर लेना चाहते हो। विपिन सोचता है–"खलील चाचा की दाढ़ी करैता के उत्थान–पतन की प्रतीक हो जैसे।"....147

❋ ❋ ❋

करैता खलील चाचा की सुसराल है, जहाँ वे रहते है। विपिन से कहते है–"वैसे करैता गाँव के शोहदे तो कहते हैं कि खलील मियाँ को ससुराल के अलावा कहीं अच्छा नहीं लगता ही नहीं।"....148

❋ ❋ ❋

वे अपने वेशभूषा के बारे में भी विपिन को बताते हैं, " क्या जलवे थे। गोल चौड़ी मुहरी का पायजामा, कलाबत्तू के गोटे वाला तंजेबी कुरता, कान में हिना का इत्र, पैरों में वियाग्रा, वाह बा।.....149

❋ ❋ ❋

'अलग–अलग वैतरणी' के खलीन खाँ याद किये जाएँगे – अपने उसूलों के लिए ही। बदरूल की बातों में आकर करैता वालो को काफिर न मानना, जगेसर के किये से पूरी हिन्दू कौम को गुनहगार न ठहराना आदि। विपिन कहता है, "आप हिन्दुओं की सभ्यता और तहज़ीब की तारीफ ही करते जायेंगे खलील चाचा।"......150

चाचा सिर्फ कोरे आदर्शवादी, भावुक, अतीतोन्मुखी और सांस्कृतिक मानस सम्पन्न व्यक्ति ही नहीं है, जमाने में 'तबदीली के मुंतजिर' भी हैं। उन्हें नये जमाने के परिवर्तनों से गिला नहीं है। खलीन खाँ प्रगतिशील पात्र हैं।

5. मास्टर शशिकान्त

मास्टर शशिकांत करैता गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक हैं। शशिकांत अपनी नियुक्ति को 'डंप' नहीं मानता। वह विश्वास करते हैं, कि " इंसान के लिए उसकी प्रतिभा और शक्ति के अनुसार कार्यक्षेत्र सौंपने का काम कोई अदृश्य शक्ति किया करती हैं।"......151

❋ ❋ ❋

लेकिन दृश्य शक्तियाँ जब अदृश्य बनकर प्रतिभा और शक्ति को पहली बार कुचलती है तो मास्टर हतोत्साहित होते हैं। डॉ0 सिंह कहते है, "शशिकानत का पहला दिन, करैता के बदनाम स्कूल का पहला अनुभव।"......152

शशिकांत का व्यक्तित्व विद्रोही जरा भी नहीं है, बिल्कुल समझौतावादी जैसा हैं। वह मुंशी जवाहिर लाल की सारी ज्यादतियों को नजर अंदाज करता है, सिरिया, बुझारथ–सुरजू के बीच में नहीं पड़ना चाहता है। इस तरह 'अपने काम से काम' निकालकर वह परिस्थितियों में से बीच का रास्ता निकालना चाहता हैं। गाँव में नयी रोशनी लाने, बच्चों के भीतर दबी चिनगारी को जगाने के सपनों को अपने सद्गुणों के बल पर पूरा करना चाहते हैं।

मास्टर हमारे आजाद देश के भ्रष्ट अध्यापक समाज में एक अध्यापक के आदर्श की याद दिलाता हैं। सादगी से भरा उसका स्वावलंबी जीवन गाँधी शैली की याद ताजा करा देता हैं। कुशल अध्यापक के गुणों से ओत–प्रोत, बच्चों के सर्वांगीण विकास को करना चाहते है।

शशिकांत की व्यवहार कुशलता, विनम्रता, सहनशीलता, संयम, विवेक और सामर्थ्य भर दूसरों की मदद करने की तत्परता साफ दिखाई देती है।

6. दयाल महराज

डॉ० सिंह ने दयाल महराज को कालजयी बनाकर पेश किया हैं। महराज सिर्फ गोपनीय कामों के ही साक्षी नहीं हैं, वे करैता की हँसी–खुशी के सफरमैना हैं। यदि करैता गाँव में कोई शादी–ब्याह हो, कोई मुण्डन–जनेऊ हो, कोई व्रत–त्यौहार हो या कोई उत्सव समारोह हो, वे सबसे आगे रहते हैं। डॉ० सिंह कहते है " दयाल महराज उनमें सबसे पहले तैयार दिखेंगे........ ....किसी को किसी चीज की जरूरत हो, दयाल महराज से कहे। वे आकाश–पाताल छानकर चीज बरामद कर देंगे।"......153

❋ ❋ ❋

ये सभी कार्य महराज द्वारा सोद्‌देश्य अपनाये गये है, "क्या करूँ भाई! बाभन हूँ। हरवाही–चारवाही कर नहीं सकता। मिहनत–मजदूरी कोई करायेगा नहीं। ऊपर–झापर के कुछ काम कर देता हूँ। इसी से तो दो प्रानी का गुजर चलता है।.....154

❋ ❋ ❋

दयाल महराज सारे कार्य सिर्फ धंधे के तौर पर रोजी–रोटी के लिये करते है वे कहते हैं "महँगाई में तो वह भी गया। कितने लोग है जिन्हें बाजार से सौदा–सुलुफ मंगवाना रहता हैं"......155

❋ ❋ ❋

डॉ० सिंह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं "दयाल महराज की आत्मा में ऐसे नेक कामों की खुशबू ही गमकती है। उस तरह के काम तो दयाल महराज नहीं, उनका शरीर कर रहा होता हैं।"......156

इस प्रकार सभी गतिविधियों में दयाल महराज का चरित्र 'अलग–अलग वैतरणी' की चरित्र–दृष्टि के अनुरूप लेखनी योग्य बनकर रहा गया है।

7. सुरजू सिंह

सुरजू सिंह को खल पात्रों के सरगना के रूप में प्रस्तुत किया गया हैं। प्रथम परिचय ही इस रूप में सामने आता है, और साथ में पूरी खल सेना का परिचय मिल जाता हैं – सुरजू सिंह ने अपनी अलग पाल्टी बना ली है जिससे सदस्य इस प्रकार है "हरिया, सिरिया, छविलवा, शशधर और सूरत"...[157] सुरजू सिंह अपने बेलज्जत गुनाहों के इतिहास की साक्षी में निहायत मूर्ख–नादान, कायर–कृतघ्न, कंजूस–नीच, तुच्छ–स्वार्थी और ढ़ोंगी–तिकड़मी के रूप में ही उजागर होते हैं। इनकी सब बेशर्मी का उदाहरण–सुगनी के साथ सरेआम पकड़े जाने पर कोठरी से बाहर निकलते हुए कहते हैं, "जो कुछ हाथ लगा, वह उनके चेहरे पर बेशर्मी की चादर की तरह फैल गया। भीड़ ने उनका यह रंग देखकर खुद गर्दन झुका ली। बेशर्मी की चादर ने हजारों चिनगारियों को अपने ऊपर झेल लिया।"......[158]

गाँव को साकार करने के लिए गँवई चंडाल चौकड़ी के अड्डै की जरूरत थीं और जमींदारी युग की खांदानी अदालती के लिए प्रतिवादी की। सो, सुरजू सिंह का किरदार प्रतिवादी के वंशज और अड्डाधिपति, दोनों की पूर्ति एक साथ ही कर देता हैं।

8. सिरिया

सिरिया सुरजू पार्टी का सबसे 'सीनियर' और 'ऐक्टिव' सदस्य हैं। इस पद की गरिमा हेतु अनिवार्य योग्ताएँ उसके अन्दर हैं। वह छँटा बदमाश है। धूर्त, काइंयापन, लुच्चई, लफंगई से लेकर बेवजह लोगों को तंग करने की सभी कलाओं में उस्ताद हैं।

सिरिया अपनी योग्यताओं वफाओं की पूरी कीमत भी लेना जानता हैं। इस 'फील्ड' में उसका उसूल हैं–"हम तो भाई जिसका हाथ पकड़ते हैं,

ओरे–माथे तक उसका साथ देते हैं, चाहे ऊ डाका डाल के आवै तो, कतल करके आवै तो।.....[159]

पूरे गाँव की नजरों में बदनाम और गिरे हुए सुरजू सिंह का ऐंन मौके पर स्वागत करके सहारा वहीं देता है–"आओ सुरजू भइया, अपनी ढ़ेढ़र कोई नहीं देखता। दूसरों की फुल्ली सभी देखने चले आते हैं, जेबा से".......[160]

सिरिया जहाँ कहीं भी हो, उपेक्षित रहना या हेठी का व्यवहार, उसे सहा नहीं हैं। तब वह मुँहफट होने की सीमा तक जा सकता है। ठकुराना 'अह्म' भी इस शान को मजबूत बनाता है। वह सिर्फ जग्गन मिसिर से डरता है और हरिया के फन का मुरीद हो चुका हैं। वरना और किसी को कुछ नहीं समझता हैं। सिरिया अंत में सरूप भगत का कत्ल करके बेहद डर जाता है और फिर गाँव छोड़कर भागता है।

9. मुंशी जवाहिर लाल

करैता गाँव के प्राइमरी स्कूल में एक साधारण अध्यापक हैं। जिनकों कुछ समय बाद हेडमास्टर बनाया जाता है। गँवई स्कूलों के अध्यापकों का प्रतिनिधित्व जवाहिर लाल के माध्यम से हुआ हैं। उपन्यास के मुंशी जी बिल्कुल यथार्थ पात्र हैं।

मुंशी जी का पूरा व्यक्तित्व, बातचीत और कार्य व्यवहार के एक बेहद 'टिपिकल' गँवई प्राइमरी मास्टर का हैं। मास्टर शशिकांत से कहतें हैं, " मैं यहाँ का हेडमास्टर हूँ मास्टर साहब!.... मेरा नाम तो आप जानते ही होगें।....[161]

डॉ0 सिंह ने मुंशी जी के व्यक्तित्व और वेशभूषा को इस प्रकार व्यक्त किया हैं, " हेडमास्टर मुंखी जवाहिर लाल अधेड़ उमर के आदमी थे। उनकी खोपड़ी पर बोचोंबीच बाल नदारत थे और चौगिर्द बचे हुए बाल कुछ इस कदर उठे हुए थे कि जैसे उन्होंने कोई धूल सनी काली टोली पहन रखी है। उनका शरीर काफी झुका था, पर तोंद काफी उभरी थी।"......[162]

10. जगेसर

जगेसर का चरित्र तमाम गलत–सही कामों के बल पर आगे बढ़ने वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हैं। वह अपने फायदे के लिए अनैतिकता–अत्याचार–अनाचार की किसी भी हद तक जा सकता हैं। वह अपनी पत्नी से कहते हैं, "साली ज्यादा जबान मत चला। नहीं सट से खींच लूँगा जीभ राखी लगाकर हाँ।"....[163]

❋ ❋ ❋

जगेशर अभिमानी और बड़प्पन के नशे में मस्त है, वह अपनी पत्नी से कहता है, " मैं इन बेवकूफ जाहिल लोगो के सामने माथा नहीं झुका सकता। ई बाबू साहब है। ई पण्डित जी है। ई मुखिया जी है,......मैं क्या किसी का नौकर हूँ, कि इनके पीछे–पीछे हाथ जोड़कर घूमता रहूँ।......[164] जगेसर 'अलग–अलग वैतरणी' का प्रगतिशील पात्र हैं।

11. बुझारथ सिंह

बुझारथ सिंह एक अमीर घराने के पात्र हैं, जिन्हें बिगड़े बेटे की तरह दिखाया गया हैं। पिता जैपाल सिंह सोचते हैं – जाने क्या सोचकर इसका नाम बुझारथ रखा था। जैपाल सिंह बुझारथ को डाँटते हुए कहते हैं – "इस सूरत हराम, नालायक कमीने को। देवीचरण के वंश में यही जन्म लेने को था"....[165]

बुझारथ सिंह के चरित्र पर दयाल महराज के विचार बिल्कुल ठीक है–पूरे गाँव का प्रतिनिधित्व सा करते हैं – "बुझारथ को गाँव जानता नहीं क्या? एक लुच्चा और बदमाश है ई आदमी।".....[166]

❋ ❋ ❋

बुझारथ सिंह के चरित्र में ठकुरपन भी है जिसकी शान सरपंच चुनाव के मौके पर हरिया के साथ उछाल मारती हैं। बुझारथ की शान हमेशा उनके और परिवार के लिए बड़ी महँगी साबित हुई है, खुदाबख्श प्रसंग में बुझारथ दाँत पीसते हुए, बोले "नीच आदमी को सिर चढ़ाने का यही नतीजा होता है।".....[167]

❋ ❋ ❋

अय्याशी, फिजूल खर्ची, आवारागर्दी, गैर जिम्मेदारी पर उनकी पत्नी कनिया समझाती हुई कहती हैं, "कहाँ जा रही है यह बन्दूक? अभी एक मामले–मुकदमें से पेट नहीं भरा क्या? जो कुछ दो–चार थान गहना–गुरिया था घर में, वह पुलिस दरोगा के पेट में गया। सिर पर जवान लड़की खड़ी हैं।..........चैन की सांस तो लेने दीजिए।".....[168]

2. नीला चाँद के पुरूष पात्र

1. चंदेल कुमार कीर्ति वर्मा उर्फ कीरत सिंह

मध्यकालीन काशी की समग्र स्थितियों व गतिविधियों को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से डॉ0 सिंह ने नीला चाँद को पूरी तरह से कीरत–गाथा बना दिया हैं। कीर्ति वर्मा ही 'नीला चाँद' की सबसे बड़ी शक्ति हैं और शिंजनी कीरत की शौर्य, शक्ति, सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है, केवल चित्र के माध्यम से अभिव्यक्त करती है, "सचमुच शौर्य और सौन्दर्य का ऐसा सम्मिलन नहीं देखा.....यह चन्देल राजकुमार कीति वर्मा का चित्र हैं।".....[169]

अश्व संचालन के साथ तीरंदाजी का अद्‌भुत कौशल भी कीरत का वैशिस्ट्‌य हैं। इन्हीं गुणों के बल पर वह अपने बड़े भाई देव वर्मा की हत्या व भाभी–जू के आत्मदाह का बदला लेता हैं, अपना खोया हुआ राज्य हासिल करता हैं। अत्याचारी कर्ण कलचुरी को मारकर गाहड़वालों को राज्य वापस दिलाता हैं।

सभ्यता और संस्कृति के अनुसार चरण स्पर्श करता है। संग्राम स्थल में जाते समय भी सम्मान करता है " राल्ह के चरण छुए। फिर उन्होंने पृथ्वी देवी के चरण छुए।''.....[170]

पूरे उपन्यास में कीरत सर्वगुण सम्पन्न, सर्वविद्या विशारद ही सिंह हुआ हैं। उसकी खूबिया और गतिविधियों 'तुलसी' के राम की याद दिलाती हैं।

कहीं–कहीं सीधे डॉ0 सिंह ने राम का साक्ष्य भी दिलवाया है। चंदेल राजाओं के एक पत्नी व्रत होने को लेकर कलचुरी कर्णदेव जब उसका मजाक उड़ाते हैं। उसका हवाला देते हुए शिंजनी पूछती है चंपक ''कर्णदेव ने चन्देलों का उपहास करते हुए कहा था कि सुनता हूँ चन्देल राजा एक पत्नीव्रत का पालन करते हैं। मैने पतिव्रता नारी के बारे में तो सुना था पर पत्नीव्रत पुरूष का तात्पर्य हैं षठ।.....क्या राम षठ थे, चम्पक? भारतीय इतिहास के सबसे महान मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने एक पत्नीव्रत का रूप दिखाने के लिए अवतार लिया था।''.....[171]

डॉ0 सिंह की चेतना में राम का असर कीरत में जरूर कहीं न कहीं रहा है। जो अपना धर्म आखिरी समय तक निभाता हैं।

डॉ0 सत्यकाम जी कुछ ऐसा मानते हैं–"वह पूर्णतः राम का प्रतिबिम्ब है। वस्तुतः इस पात्र के प्रति पाठक के मन में कौतूहल तो उत्पन्न होता है, पर वह उसे विश्वास के साथ ग्रहण नहीं कर पाता हैं। कीरत का रामत्व ही उसके चरित्र की सबसे बड़ी कमजोरी हैं।"......[172]

2. कर्ण–कर्ण देव

कर्ण–कर्ण देव उपन्यास में नीचता व अनार्य की पूँजी जमा करता हैं। अपने जीवन में कोई भी अच्छा कार्य नहीं किया। डॉ0 सिंह के खल पात्र कभी एक भी अच्छा कार्य नहीं करते हैं। जितने बुरे कार्य हो सकते है, उसने किए हैं – हत्या, षड्यंत्र, स्त्रियों के साथ बुरा आचरण, धोखेबाजी, कृतघ्नता आदि आदि सब कुछ हैं।

कर्ण के दुष्कमों का यह ऐसा फल हैं। जहां राजा भोज से लेकर देववर्मा की हत्या व उनकी पत्नी चिता पर जल जाने की स्थितियों की सारी जिम्मेदारी सरेआम उसके सिर पर सिद्ध कर दी जाती हैं। योगी भरथरी कहते हैं, "कर्ण तुम नीचता और अनार्य अचारण के पुंजीभूत धन विग्रह हो। तुमने चन्देल राजेश्वर देववर्मा की हत्या क्यों कराई? जिससे उस दिव्य युवती ने अपने मृतक पति के शव को लेकर जौहर कर दिया था।"......[173]

❋ ❋ ❋

कर्ण की रानी हूणों की बेटी है और यशः कर्ण नामक उसी का पुत्र उत्त्ताधिकारी भी है, पर हूण रानी विषयक कथा भी कल्पष से भरी होने का ही संकेत देती है। वह धर्म संस्कृति को भ्रष्ट करने वाला तो है ही वह गुरू को भी भला बुरा कहता है–"तू अत्यन्त शीघ्र काशी छोड़कर निकल जा, नहीं तो महायोगिनी के साथ महायोगी का शव भी साथ ही फिकवाना पड़ेगा।"......[174]

3. मंजूशिमा के पुरूष पात्र

1. पिता डॉ0 सिंह

डॉ0 सिंह की प्रस्तुति चाहे जैसी भी हो, लेकिन सुखद यह है कि ऐसा व्यवहार (ट्रीटमेन्ट) लेखक ने सिर्फ अपने (शिवप्रसाद सिंह) के पात्रत्व के साथ ही किया हैं। बाकी सदस्यों के व्यवहारों बातों में कोई अतिरन्जना न होकर पर्याप्त संतुलन बनाये रखा गया हैं। भाई–बहन के लगाव–प्यार सहेली व शुभचिंतकों की सदिच्छाएँ का असीम सहयोग, बनारस के स्वजनों की तत्परता आदि रूप में चित्रित हैं। अपना बनारस का परिचय इस प्रकार देते है, "मैं उन्नीस सौ पचपन में प्राध्यापक की नौकरी पा गया था और दुर्गाकुंड के सामने कामा कोठी में रहता था।"...[175] पूरे भारत का भ्रमण किया हैं। "पंजाब से तामिलनाडू तक जो एक सीधा मेरूदंड खड़ा हैं उसे मंजु के साथ कैसे देखा है"...[176]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह का परिचय श्रवण अपने मित्र को देता है "सामने है अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक"....[176]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह स्वीकारते है कि वह हर विपत्ति सह सकते है, "मै यथार्थवादी हूँ। ऊपर कह चुका हूँ कि मैं हर विपत्ति सहने के लिए तैयार हूँ।"....[178]
बीमारी में बहुत पैसा खर्च हो गया तो मंजू को दिलासा देते हुए कहते है– "तुम्हें इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए, अंतिम क्षण में अगर निराशा ही मिलेगी तो भी मैं आश्वस्त हूँ। मैं यह मकान बेच दूँगा।"....[179]

डॉ0 सिंह ने अपना कर्तव्य बड़ी ही चतुराई से निभाया है। जो एक पिता का कर्तव्य होता है। उस पर खरे उतरे हैं।

4. शैलूष के पुरूष पात्र

1. लल्लू काका

लल्लू नट उर्फ काका के नाम से मशहूर हैं। अपने कबीले में ही नहीं पूरे उत्तर भारत के नट–कबीलों में समादृत हैं वे वैद्य हैं, पुरोहित है और इन रूपों में उपन्यास व कबीले दोनों के लिए बेहद उपयोगी हैं। उनके आदर और सम्मान का हाल कबीले के पात्र की जुबानी ''लल्लू दादा सिर्फ जुड़ावन के कबीले के प्रधान ही नहीं हैं, हिन्दुस्तान में फैले तमाम कंजड़ और नट उन्हें पीर–फकीर की तरह पूजते है–चाहें वे हिन्दू हों या मुसलमान।''[180]

❋ ❋ ❋

काका आज कबीले के सबसे बड़े व्यक्ति हैं, शुरू से ही ऐसे नहीं थें उनके बचपन के हाल का अति संक्षिप्त, पर बहुत सधा हुआ वर्णन हुआ है – ''लल्लू नट बौड़म थे। उन्हें दीन मजहब, धरम–करम, न कभी बाँध पाया, न उसे बाँधने या ढ़ोने को वे तैयार हुए।''[181]

❋ ❋ ❋

रज्जब काका हँते हुए कहते है, ''तू साला बौड़म, झेंपू, यह भी कोई मर्दानगी हैं। तू तो लजाने में छोकरियों को भी मात कर रहा है। डरपोक''[182]

काका जवान औरत को देखकर बेहद शरमा जाते थें। एक शोख लड़की सकीना थी, जो लल्लू को खुले आम चूम लेती थीं। अंत में उसी से शादी हुई इकलौता पुत्र कोमल बनाफर हुआ।

हिन्दू–मुस्लिम के मिश्रित रक्त से जनमें लल्लू काका फक्कड़पने के साथ ही पढ़े–लिखे थे। उर्दू उन्हें आती थी। रामायण को कई सालों से पढ़ते हुए उस पर उर्दू में अपनी टिप्पणियाँ तक लिखते थें।

2. सरदार जुड़ावन

जुड़ावन सच्चे अर्थो में पत्नी भक्त और सेवक हैं। इनकी पत्नी सब्बों भी इन्हें अपने इष्ट देव कन्हैया का सखा मानती हैं। सरदार के रूप में वे कबीले के लिए खुद को न्यौछावर करने और कुछ भी बर्दास्त करने के लिए तैयार रहते हैं। वह मृत्यु से नहीं डरते है अपने आप से कहते है "जब तक जीना है, जी लेगें। जब मरना होगा तो मर जायेंगे।"......[183]

❋ ❋ ❋

वे बहादुर, निडर, साहसी तो है ही। दरोगा कुबेर सिंह को ललकार कर फटकार देते हैं, " छोड़िए दरोगा जी, स्थिति बहुत डांवाडोल हैं।"......[184]

सब्बों के अलावा उनकी नट जाति की पत्नी बेला है और जुड़ावन सरदार दो बेटों तथा दो पोतों के बाप व दादा हैं। इस भरे पूरे परिवार में खुश भी हैं। सब्बो को अपने जीवन का आदर्श व उद्देश्य मानते हैं। उसी की निगाहों में इनके शरीर व आकर्षण के चित्र सांकेतिक है–"ब्राह्मण कन्या सब्बों गठीने बदन और कुश्ती के बादशाह जुड़ावन को देखकर लुभा गयी है।"......[185]

❋ ❋ ❋

सच है जुड़ावन तन से नहीं मन से तो बादशाह था ही। वे सामाजिक हित का विशेष ध्यान रखते थे।

3. घुरफेंकन तिवारी

घुरफेंकन तिवारी ही एक मात्र ऐसा पात्र है, जिसके कारण सारी नट बस्ती परेशान हैं उपन्यास में चमार भी इन्हीं के कारण नटों से लड़ते है। फिर वे समझ जाते हैं, कि तिवारी ही हरिजनों को हजम करना चाहता हैं। तिवारी

जी सम्पूर्ण पिछड़े, भूमिहीन वर्ग के खिलाफ वह अकेले शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

तिवारी जी के सारे कर्तव्य के पीछे दो उद्देश्य है– वह शोषक पूँजीपति की भूमिका में चालीस एकड़ परती जमींन को हथियाना चाहते हैं। दूसरा उद्देश्य अपनी मौसी से बदला लेना चाहते हैं। जो नट जाति में शादी करके चली जाती हैं। वह कहते है, "हम लोग कोई सेठ साहूकार नहीं हैं। एक से आज सोलह घर हो गये है तिवारी खानदान के, फिर भी इज्जत के मामले में सब एक हैं।"......[186]

❋ ❋ ❋

आज के युग में उपलब्ध और आवश्यक सारे संसाधन उसके पास हैं। रूपयें–पैसे, बेहयाई, भ्रष्टता, कूट बुद्धि, नीचता और निर्दयता आदि सब कुछ मौजूद हैं। दसों गुण्डों का समूह बुला सकता है, सारी पुलिस को खरीद सकता है। लल्लू काका कहते है कि तिवारी कौरवों की तरह है, "जिनके पास तीनों है यानी धन भी, धरती भी और धरम भी – वे कौरव है"......[187]

❋ ❋ ❋

परताप सिंह तिवारी को डाँटते हुए कहते है–"स्साले अपने आप को क्या समझते हो, तुम जिसे चाहे कुलटा कह दो, जिसे चाहे वेश्या कह दो, यही है ब्राह्मण की भाषा"......[188] तिवारी जी अपनी इज्जत की कोई परवाह नहीं करते थे, डॉ0 सिंह कहते है "वे इज्जत के लिए जान देने वाले आदमी नहीं थे।"......[189]

तिवारी बूढ़ी सब्बों का अपहरण, मासूम बच्चों की हत्या, कुमारियों का बलात्कार, आगजनी तक के कार्य करने की नीचता–निद्रयता से भी उसे गुरेज नहीं है। परताप सिंह धिक्कारते हुए कहते हैं– "साले एकदम से भ्रष्ट,

चरित्रहीन और नीच हो तुम, पर पता नहीं क्या हो गया है हिन्दुओं को कि वे तुम्हारे जैसे नीच व्यक्ति को पुरोहित पद से नहीं हटाते।''......[190]

❋ ❋ ❋

जग्गी सिंह दरोगा से कहते हैं, ''हुजूर, यह आदमी दो तीन महीने से इस तरह के कारनामें कर रहा है.........आप सदा के लिए निपटारा कर दीजिए।''....[191]

❋ ❋ ❋

व्यंग्य करते हुए जग्गीसिंह कहते हैं, ''घुरफेंकन जी केवल सबसे अधिक धनवान ही नहीं, सबसे बड़े विद्वान भी है। हुजूर वे हमारे ग्राम प्रधान भी है और ग्राम प्रधानी हरिजनों ने दिलायी क्योंकि उन्हें तिवारी जी ने सब्जबाग दिखाये थे।''.....[192]

❋ ❋ ❋

उक्त कथनों से तिवारी जी के चरित्र की सभी जानकारी उभरकर सामने आती है, कि यह उपन्यास के एक खल पात्र ही नहीं, बल्कि एक राक्षक के रूप में जनता के सामने प्रस्तुत होते हैं।

5. औरत के पुरूष पात्र

1. डॉ0 शिवेन्द्र

डॉ0 सिंह के उपन्सास 'औरत' में प्रमुख पुरूष पात्र शिवेन्द्र ही हैं। जो एक सीधा–सादा, ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। वह सभी को प्यारा हैं। डॉ0 सिंह कहते हैं ''शिवेन्द्र मेरा दोस्त है। बहुत प्यारा आदमी हैं''...[193]

शिवेन्द्र बहुत सोचता है, दुनिया को छोड़कर आध्यात्मिक सोच में डूबा रहता है वह कहता है, ''इस दुनियावी पनघट से परे कोई और पनघट होता

होगा''......[194] आज की नारी समस्या पर उसके विचार इस प्रकार है, ''अब नारी समस्या नामक कोई चीज बची ही नहीं।''......[195]

❋ ❋ ❋

डॉ0 शिवेन्द्र के परिवार वाले भी बड़ा होनहार और विद्वान समझते हैं गाँव में चाचा कहते हैं, ''तू तो हमरे खानदान के हीरा हो।''......[196]

❋ ❋ ❋

शिवेन्द्र के विचार से व्यक्ति को समय-समय पर परिवर्तन करना चाहिए, ''हम अवसर आबे परशुराम भी बन सकते है।''......[197]

❋ ❋ ❋

शिवेन्द्र प्रगतिशील युवक है अपने विचारों के माध्यम से तिवारी चाचा से कहता है-''किसी के आशीर्वाद से तिवारी चाचा न तो आदमी कुशल से रहता है, न तो आशीर्वाद बिना वह अकुशल रहने को मजबूर होता है।''......[198]

❋ ❋ ❋

समाज की एकता बरकरार रखने के लिए डॉ0 शिवेन्द्र कहते है, ''पेड़ की जड़ो को सींचो। गरीबों को खाद-पानी दो, समाज की एकता अपने आप बनी रहेगी।......[199]

6. गली आगे मुड़ती है, के पुरूष पात्र

1. रामानंद तिवारी

डॉ0 सिंह के उपन्यास 'आगे गली मुड़ती है' के प्रमुख पात्र नायक के रूप में रामानंद तिवारी उभरते हैं। तिवारी सभी जगह मौजूद हैं, किरण-जयंती से संबद्ध प्रेम प्रसंग हो या सांस्कृतिक आयोजन, छात्रों का जूलूस हो या आरती की पार्टी, कुछ भी बिना रामानंद के पूर्ण नहीं होता हैं। सभी अच्छे कार्य जैसे झुलनी बुढ़िया को बाढ़ से बचाने, झूरी-दम्पति की दवा-दारू से लेकर श्रीकांत को पागलपन और रूपचंद को रेलवे पुलिस के एक कर्मचारी के

चंगुल से छुड़ाने तक के सारे कार्य रामानंद ही करते है। जयन्ती इनके बारे में परिचय देती हुई कहती है–"ये है श्री रामानन्द तिवारी, मेरे सर्वोत्तम विद्यार्थी और मेरी कल्पना के सही छात्र.....[200]

❋ ❋ ❋

रामानन्द तिवारी भट्टाचार्य जी की नजरों में बड़े विद्वान और सज्जन पुरूष जो भी सवाल पूछो तुरन्त उत्तर मिल जाता है, "मिस्टर इन्साइक्लोपीडिया".....[201]

❋ ❋ ❋

देश को स्वतंत्र कराने की ज्वाला उसके ह्रदय के अन्दर दहकती रहती है तिवारी स्वयं कहते है, "हम अपने देश में अंग्रेजी का आधिपत्य हटाना चाहते हैं।.....[202]

❋ ❋ ❋

अभी रामानन्द के अन्दर अनुभव की कमी है शर्मा जी कहते है, "सुनों तिवारी, तुम स्मार्ट तो हो, अनुभवी बिल्कुल नहीं हो।".....[203]

रामानंद की प्रस्तुति एक साधारण आदमी के रूप में हुई है, जो किसी भी प्रकार की दुष्प्रव्रत्ति में नहीं हैं सच्चे अर्थो में वह इंसान है और बनकर रहना चाहता हैं।

2. हरिमंगल

'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास में एक ऐसे युवा के रूप में हरिमंगल का प्रस्तुतीकरण हुआ है, जो सभी तरह की कठिनाइयों तकलीफों को सहर्ष झेल सकता हैं। वह किसी भी प्रकार की कुरीतियों भ्रष्टाचार को किसी भी रूप में देखने को तैयार नहीं–"उन्हें आगे बढ़ने की हविश होती तो समझौते कर लेते.........पर उन्होंने समझौतों की जगह ईमानदार बने रहने की गलती की।".....[204] तिवारी पूछते है आपने नौकरी क्यों छोड़ दी तो हरिमंगल कहते

हैं, "भई, मुझे क्षमा करना। मैं जब से नौकरी से निकाल दिया गया तो बहुत दुखी हुआ।"......205

❋ ❋ ❋

हरिमंगल में वर्तमान समाज के इस ढ़ाँचे की बड़ी गहरी समझ हैं, जिसके कटु अहसास ने उनकी नस–नस में कड़वाहट भर दी हैं। वे अन्दर से बेचैन और तिमिलाये रहते हैं। सोते हुये सपने देखते हैं, "हरिमंगल ने छटपटाते हुए करवट बदला। यह विद्यार्थी नेता कह गया कि किसी ने उँगलियों में बघनखा पहनकर उस पर पीछे से बार किया।......206

❋ ❋ ❋

हरिमंगल अपनी स्वाभाविक दृढ़ता और कठोरता के भीतर छिपे एक कोमल दिल के मालिक भी है, प्रेमी और संवेदनशील। लाजों के प्यार में कहते हैं, "हम तो लाजो, जनम से शास्त्र–विरोधी हैं, इसी से न तो घर के हुए न घाट के।"......207

इससे स्नेह की झलक मिलती हैं साथ ही समर्पण की ईमानदारी का पुट पाकर हरिमंगल के चरित्र की प्रगतिशीलता भी परिलक्षित हो जाती हैं।

7. दिल्ली दूर हैं – के पुरूष पात्र

1. आनन्द वाशेक

डॉ0 सिंह का उपन्यास 'दिल्ली दूर है' के प्रमुख नायक पात्र आनन्द वाशेक हैं। अपने राज्य की रक्षा के लिए वह सफीउल्लाह वाशाखुरासानी बनकर दिल्ली पहुँचता है। कोई उसे पहचान नहीं पाता है, "उसका रंगरूप, वेशभूषा और भाषा खुरासानी के अनुकूल है।"......208 अत्याचार को सहन नहीं कर पाता है। मेवाती तो नुसरत की कन्या शकीला का अपहरण कर लेते है। आनन्द शालिग्राम और मल्का से शकीला का उद्धार कर नुसरत के पास भेज देता

है। शकीला अपने चचाजान से आनन्द के बारे में कहती है। "चचाजान इन नौजवान साहेब का शुक्रिया अदा करिए जिन्होंने जान पर खेलकर मुझे बचाया।"....209

❋ ❋ ❋

आनन्द की वीरता और पराक्रम का जिक्र शकीला करती कहती है – "जो आदमी तलवार चलाने में पचीसों से अकेले भिड़ सकता है। एक झटके से घोड़े की गर्दन काट सकता हैं।"......210

आनन्द सामान्य प्रजा की रक्षा के लिए चंगेज खान से युद्ध करता है। अमीर का साथ देता है लेकिन तुर्क सल्तनत की राजनीति नहीं बदलती हैं। जुझौती पर आक्रमण होता है आनन्द पश्चिम जुझौती की रक्षा का भार लेता हैं और विद्याधर देव के प्रति कृतज्ञ हैं। वह कहता है "मैं प्रातः स्मरणीय विद्याधर देव के वंशज का नमक खाने वाला अमात्य और सेनापति हूँ।"......211 नायक आनन्द की प्रथम प्रेमिका देविका का अपहरण हो जाता है, चाहकर भी बचा नहीं पाता है। उसे नुसरत की बुन्देली बेगम बनना पड़ता है। लेकिन नुसरत की मृत्यु के बाद वह विधवा के रूप में रहती है वह आनन्द के पास नहीं लौटती है। आनन्द बहुत निराश होता है। लेकिन फिर भी अपना कर्तव्य पालन करता हैं।

2. राजा त्रैलोक्य मल्ल

राजा को भारतीय संस्कृति एवं धरोहर से प्रेम है। उनके विचारों में गौरव तथा श्रेष्ठता का संरक्षण हैं। उसे हिन्दुस्तान की संस्कृति की ध्वज से प्रेम हैं। वह कर्त्तव्यनिष्ठ, अपारनिष्ठ तेजस्वी व्यक्ति है "जुझौती खण्ड में ही उसकी

राजनीति, बुद्धिमत्ता, साहस तथा वीरता का परिचय मिलता हैं।''.....212 वे एक ऐतिहासिक पुरूष है उसमें वीरोचित एवं पुरूषोचित गुण विद्यमान है।

त्रैलोक्यमल्ल को गरीबी और अमीरी का ज्ञान था। उन्होंने गरीबों को कन्द–मूल फल खाते देखा है। उनके अच्छे कर्मो के कारण एक तांत्रिक कहता है– ''त्रैलोक्य मल्लदेव की आयु पर्याप्त अवशिष्ठ है वत्स, उन्हें कोई चिन्ता तो करनी ही नहीं है।''.....213

त्रैलोक्य मल्ल को कूटनीति का अच्छा ज्ञान है। उन्हें ब्राह्मणत्व का अच्छा ज्ञान था तथा योग्य ब्राह्मणों का सम्मान करते थे। ब्राह्मण तथा बुद्धिमान व्यक्तियों के समक्ष हमेशा राजमुकुट एवं शीष झुकाते थे, जो अभिनन्दन एवं स्वागत का प्रतीक था।

४.वैश्वानर के पुरूष पात्र

1. शौनक

डॉ0 सिंह के उपन्यास 'वैश्वनार' में प्रमुख नायक पात्र शौनक हैं। काशी के महावन के पास शौनक का आश्रम है। महावन तथा सम्पूर्ण काशी तक्मा रोग से आक्रान्त हैं। ''काशी नगर जनपदोध्वसंक तक्मा रोग से ग्रस्त है। .....214 शौनक सभी को अपना भाई समझता है तथा सभी का समान आदर सम्मान भी करता है और वेदों मंत्रों का उच्चारण गाकर सुनाता है। आंगिरस साधु आग्रह करते हुए कहते है–''शौनक तू ऋक् के मंत्रों को बड़े सहज ढ़ंग से गाता है, और मेरे प्रथम सूक्त को तो तूने जैसे अपना जीवन मंत्र मान लिया है''...............

मनुष्य योनी पर जोर देते हुए मंत्र उच्चारण करते है......

मानव स्वामी अग्नेतेजयुक्त तू होता है

तू ही सबका कल्याण–विधाता।''....215

❋ ❋ ❋

शौनक के अग्रज समझाते हुए कहते है। ''मोहभंग होने के पहले मोह तोड़ ले पगले।''.....216

❋ ❋ ❋

शौनक महात्मा और ऋषि भी उच्चकोटि के है डॉ0 सिंह कहते हैं– ''इतने यथार्थवादी ऋषि बहुत कम होते है। उसने अग्नि को रक्षक के स्थान पर भक्षक कह दिया। हमें अब रहस्य लोक में नहीं लौटना है। हम देखे पदार्थो की प्रतीक बनाकर भी सत्य ढूढ़ सकते हैं।''.....217

❋ ❋ ❋

सादा जीवन उच्च विचार को शौनक अपनाते थे वे पैरों में सदा लकड़ी के बने जूते या चप्पल पहनते थे। उनके द्वार पर कोई बुलाता है तो वे बाहर निकलते तो ''शौनक ने काष्ठ–पादुका पहनी और द्वार को खोलकर पूछा''.....218

❋ ❋ ❋

आगे आने वाली पीढ़ी के लिए कहते है, ''आगे बढना नई पौध को है, जो कच्ची है, रसहीन है,''....219

❋ ❋ ❋

वे अपनी प्रजा–जन को खुश देखना चाहते है, ''प्रजाजन संतुष्ट और प्रसन्न है यह नृपति के लिए पुत्रोत्सव जैसी कल्याणकारी और मंगलदायक वस्तु है''.....220

2. राजकुमार प्रतर्दन

डॉ0 सिंह की कृति 'वैश्वानर' में प्रमुख गौण पात्र राजकुमार प्रतर्दन हीं हैं। जो वैदिक परम्परा का समर्थक है और अपनी संस्कृति से उसे बहुत लगाव है, सौमित्र से कहते हे, "मैं परम्पराओं को तोड़ना नहीं चाहता। स्वयं यज्ञ–संस्कृति का समर्थक हूँ। ......[221]

❋ ❋ ❋

अपने कर्तव्य के प्रति सदा सजग रहता है। राज्य की अशांति भंग होते ही अपने परिवार जनों के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करते है, "नगर की स्थिति बहुत गम्भीर हैं। अराजकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी हैं। एक साथ कई समूह चारों ओर उत्पात मचाये हैं। मुझे इस विस्फोटक स्थिति को रोकना होगा।"......[222]

❋ ❋ ❋

राजकुमार अपने राज–काल व सेना का कुशल नेतृत्व भी करते है वे किसी प्रकार के मजाक को पसन्द नहीं करते है। वेशमणि को फटकारते हुए कहते हैं, "मैं उन लोगों में नहीं हूँ जो गणिकाओं के बीच आने को आनन्द का पर्व मानते हैं।"......[223]

❋ ❋ ❋

राजकुमार शत्रुओं से निडर मुकाबला करते थे और उन्हें सजा के रूप में मृत्युदण्ड ही देते थें। दुर्दम अपने आपको काशी नरेश मानता हैं। प्रतर्दन उसे पकड़वा लेता है और कहता है– "नीच! सम्बोधन का शिष्टाचार भी भूल गया। मै प्रतर्दन तेरी मृत्यु हूँ"......[224]

❋ ❋ ❋

राजकुमार राजनीति में कूटनीति का भी सहारा लेता है। "तुम लोग यही कहना कि प्रतर्दन सन्यासी हो गया।"......[225]

उपन्यास में राजकुमार का चरित्र आदर्श, समाजोउत्थान, कुशल राजनीतिक और भावी समय में आने वाला राजा हैं।

९. कुहरे में युद्ध के पुरूष पात्र

1. महामात्य वाशेक

वाशेक पूरी कृति में बुद्धिमानी व चतुराई से प्रत्येक कार्य करते है क्योंकि वे कायस्थ थे, "पास बैठे वृद्ध वाशेक कायस्थ बोल पड़े।"......[226]

❋ ❋ ❋

उनके विचारों में दार्शिनिकता भी झलकती है और एक ज्योतिषी भी, "तुर्क की बीबी हिन्दू नारी ही बन सकती है क्योंकि नारी का मन चन्द्रमा की तरह घटता—बढ़ता रहता हैं।"......[227]

❋ ❋ ❋

अपने प्रजापालक राजा के ऊपर कोई भी संकट आता है तो वह पहले अपने ऊपर लेते है। डॉ० सिंह ने चित्रित किया है, "महामात्य वाशेक कायस्थ तलवार खींचकर राजा के बगल में खड़ा हो गया।"......[228]

माहमात्य वाशेक वृद्ध होने के साथ—साथ शारीरिक बल तो अवश्य कम हुआ लेकिन बुद्धिबल भी उतना ही प्रबल हुआ हैं

2. वीर वर्मा

वीर वर्मा बहुत ही साहसी और कर्तव्यनिष्ठ युवक है जो कहता है, "मैं वीर वर्मा हूँ तलकी—मलकी का पुत्र।"......[229] देश विद्रोहियों के प्रति उसका व्यवहार सदा सख्त रहता है। आचार्य के कक्ष में जाता है और बोला—"आप दूसरों को शान्ति और सुख का उपदेश देते है गुरू—पुत्र और स्वयं आतिथेय के

साथ छल करते हैं।........ आप निश्चित ही विभीषण है......आप निकृष्ट देशद्रोही है। आप पिता पुत्र बन्दी बनाये जाते है।''.....[230]

वीर वर्मा का चरित्र देशहित और समाजहित में सर्वोत्तम हैं। वह एक कुशल योद्धा व राजीतिज्ञ भी हैं।

3. आनन्द और वाशेक

आनन्द और वाशेक दोनो भाई है जो कांलजर नरेश के राज्य में रहते है जो कुशल योद्धा के साथ वीर पुरूष भी हैं जो अपनी नमक हलाली का प्रमाण देते हुये कहते है–''वाशेक और आनन्द के रहते कालंजर नरेश की ओर कुदृष्टि डालने वाली आँखों को ऊँगली डालकर निकाल लेंगे हम दोनों भाई।''.....[231]

* * *

दोनों भाइयों में सबसे बड़े भाई वाशेक और छोटे भाई आनन्द हैं। आनन्द की अवस्था अभी पच्चीस वर्ष है वाशेक कहते है, ''आनन्द अभी पच्चीस वर्ष पूरे नहीं कर सका हैं।''.....[232]

* * *

राजा के यहाँ आए हुए अतिथि आनन्द वाशेक की बड़ाई करते हुये कहते है, ''आनन्द वाशेक मुझे वीर पुरूष लगते हैं......ये चतुर व्यक्ति हैं''.....[233]

* * *

देव शर्मा कहते है कि ये दोनों भाई ही जुझौती की रक्षा करेंगे – ''आनन्द को निश्चय ही तुरूस्क भाषा और इतिहास का ज्ञान है......वे जुझौती की सेवा में ही उस ज्ञान का उपयोग करेंगे।''......[234]

* * *

आनन्द को भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, ''आनन्द फारसी के बहुत अच्छे ज्ञाता है।''.....[235]

आनन्द से त्रैलोक्य मल्ल कहते है तब तुम बारह वर्ष के थे मैने तुम्हें विद्या सीखने के लिए भेजा था, ''इस अन्धतमस् की प्रक्रिया को जान सको। इसके छल–छद्म को समझ सको।''.....[236]

❋ ❋ ❋

राज राजेश्वर कहते है कि आनन्द वाशेक हमारे पुत्र के समान है–''आनन्द वाशेक आज मेरे पुत्र से भी बड़े, मेरे पूर्वजो की कीर्ति और यश के श्लाका पुरूष बन गए हैं, मैं इस ऋण से कभी मुक्त नहीं हो पाऊँगा।''.....[237]

4. पात्र चयन में इतिहास और कल्पना

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के पात्र ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के हैं। अलग–अलग वैतरणी, शैलूष, औरत, गली आगें मुड़ती है और वैश्वानर आदि उपन्यासों में स्त्री और पुरूष पात्र अधिकतर काल्पनिक हैं। परन्तु समाज की किसी न किसी घटनाओं, दुर्घटनाओ, जीवन की उन्नति एवं अवनति से सम्बन्ध रखते है। दिल्ली दूर है, वैश्वानर, नीला चाँद, कुहरे में युद्ध उपन्यासों में सभी पात्र ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रखते हैं।

डॉ0 सिंह के उपन्यासों मे पात्रों का निजी चरित्र, व्यक्तित्व भी उदघाटित होता है। पात्रों का चयन विषयवस्तु के अनुकूल हुआ हैं।

ऐतिहासिक पात्र वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा के श्रोत है। जो मानवीय समाज से विभिन्न प्रकार से जुड़े हुए हैं। ऐतिहासिक पात्र अपने संवाद एवं संदेशों के द्वारा नई पीढ़ी में विभिन्न प्रकार के बदलाव लाते है।

लेखक अपनी प्रतिभा के बल पर शब्दों के सहारे एक काल्पनिक वस्तु में यथार्थ का भ्रम पैदा करने वाली शक्ति का निर्माण करते हैं और अपने पात्रों को काल्पनिक नाम देते हैं। डॉ0 त्रिपाठी कहते है–''लेखक के बदले पात्र बोलें, तो भोक्ता के रूप में सीधी अभिव्यक्ति ज्यादा प्रमाणिक होती है।''.....[238]

काल्पनिक पात्रों के रूप में डॉ0 सिंह शब्दों की मूर्तियाँ गढ़ते हैं। उनमें आपस में बात–चीत करवाकर उनमें चेतना भरते हैं। जीते जागते मानवों का व्यवहार करने वाली ये शब्द मूर्तियों ही उपन्यास के ऐतिहासिक एवं काल्पनिक पात्र कहलाते हैं। अग्रेंजी के विद्वान 'फोरेस्टर' लिखते है –

"The Novelest makes up a number of word masses roughly describing himself.......gives them names and sex assigns them plausible gestates and causes them to speak by the use of inverted commas, and perhaps to be have consistently, these word masses are his characters."......[239]

डॉ0 सिंह के औपन्यासिक पात्र जो काल्पनिक है और कुछ ऐतिहासिक पात्र है जो ईश्वर द्वारा निर्मित दोनों में समय, स्थान और कार्य के अनुसार अधिक अन्तर दिखाई नहीं देता हैं। दोनों में अंतर बस इतना है, कि ईश्वर की सृष्टि के जीवित पात्र अपने मन का कार्य करते है। उपन्यासकार तो कई जीवित व्यक्तियों के आकार–प्रकार और गुणों को एक पात्र मे लाकर उसको अपनी कल्पना के आधार पर रंग भर देता हैं। कभी–कभी पात्र यथार्थ होते हुए भी यथार्थ नहीं लगते हैं। निर्मित की कला इतनी जटिल है कि थोड़ी कल्पना अधिक हो गई तो पात्र इस धरती के लगते ही नहीं हैं। थोड़ा यथार्थ अधिक हो गया तो पाठकों के लिए अपच्चय बन जाते है।

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में पात्र यथार्थ होते हुए भी यथार्थ नहीं लगते और काल्पनिक होते हुये भी यथार्थ के दर्शन कराते है।

डॉ0 सिंह ने पात्रों की सर्वव्यापकता, सार्वभौमिकता और स्वच्छन्दता रहस्यमयता आदि गुणों की कल्पना करते हुये उसे अन्तिम सीमा तक ले जाकर उसे व्यवस्थित किया हैं।

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक श्लोक के माध्यम से पात्रों की मनोदशा को बताया हैं–

"गंगा यमुना मोर्मध्ये बालरंडा तपस्विनी
बलात्करणे गृहणीयता तटविष्णों परम्पदम्।।"......[240]

डॉ0 द्विवेदी एवं डॉ0 शिवप्रसाद सिंह में इतिहास और कल्पना को आपस में जोड़कर पात्रों में अपनापन अधिक दिखाया हैं। पात्रों की विकासशीलता के कारण वे पुतले जीते–जागते इंसान लगते हैं। फिर भी प्रत्येक पात्र चाहे वह काल्पनिक हो या ऐतिहासिक अपनी जगह खास अहमियत रखते हैं।

अलग–अलग वैतरणी – को अनादिकालीन इतिहास और पुराण की करवटों में सोई काशी अंचल की संस्कृति, जिसकी झलक उसके वर्तमान भूगोल और जन–जीवन में अपना स्थान रखती हैं। "उपन्यास में विभिन्न संस्कृतियों, सम्प्रदायों, सभ्यताओं, जातियों, वर्गो, संस्कारों, भाषाओं एवं बोलियों का समन्वीकरण हैं"[......241] उपन्यास में अधिकतर पात्र काल्पनिक ताना–बाना से रचे गए हैं, लेकिन परिस्थितियों के अनुसार कुछ पात्र अपना ऐतिहासिक अस्तित्व भी रखते हैं। बुझारथ सिंह पूरे नट जाति का नेतृत्व करते है और वहीं घुरफेंकन तिवारी एक काल्पनिक खल पात्र के रूप में दिखाई देते हैं।

नीला चाँद – डॉ0 सिंह ने नीला चाँद में इतिहास के सम्बन्धित पात्रों को विशेष स्थान दिया हैं और इतिहास के निर्वाह से अधिक काशी की प्रतीकात्मक सत्ता को महत्व दिया हैं। कोई–कोई पात्रों को कल्पना के आधार पर जीवंत कर दिया हैं। ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों की दृष्टि से पूरी कथा का समकालीन जीवन से जुड़ाव हैं। ऐतिहासिक पात्रों का सम्बन्ध काशी के अलावा महोबा, खजुराहों आदि चंदेल राज्यों से हैं।

मंजूशिमा – मंजूशिमा उपन्यास में सभी पात्र काल्पनिक होते हुए भीं, जीवन मूल्यों को दर्शाते हैं। ऐतिहासिक पात्रों को स्थान नहीं दिया गया हैं, क्योंकि यह कृति डॉ0 सिंह ने अपनी पुत्री मंजू की बीमारी की करूण कहानी को समर्पित की हैं। एक पिता अपनी पुत्री के लिए क्या–क्या कर सकता है या किया हैं, वह डॉ0

सिंह ने शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। डॉ0 पाण्डेय के अनुसार "मजूशिमा" में लेखक की बौद्धिक सक्रियता का परिचय मिलता है।"......[242]

शैलूष – 'शैलूष' उपन्यास के माध्यम से डॉ0 सिंह ने गाँवों के समसामयिक जीवन के यथार्थ को उजागर किया हैं। जिसमें समाज के उपेक्षित तबके के प्रति विशेष सहानुभूतिशीलता रखते हैं। इसमें काल्पनिक पात्रों के आधार बनाकर ग्रामीण जीवन की यथार्थ और सच्ची तस्वीर को प्रस्तुत किया गया हैं। डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के अनुसार "एक ओर मुझे ठाकुर कोस रहे है दूसरी ओर ब्राह्मण।"......[243]

औरत – 'औरत' उपन्यास की काल्पनिक पात्रों के माध्यम से रचना की गई हैं। ऐतिहासिक पात्रों का कोई जिक्र नहीं मिलता है, हाँ कह सकते हैं कि नारी की भूतकाल की स्थिति का वर्णन मिलता है। उपन्यास का नायक शिवेन्द है जो एक काल्पनिक पात्र हैं, और भी अधिकतर सभी पात्रों का आधार कल्पना मात्र हैं, जो जीवन के मूल्यों पर प्रकाश डालते हैं। ऐतिहासिक पात्र न होते हुए भी ऐतिहासिक यथार्थ को उजागर करते हैं।

गली आगे मुड़ती है – डॉ0 सिंह ने 'गली आगे मुड़ती है' नामक उपन्यास में मानवीय जीवन की सजीवता और उनकी सुबोधता को विभिन्न पात्रों के माध्यम से दर्शाया हैं। मनुष्य अपने जीवन में कई गलियाँ बनाता हैं, हर गली का अपना एक महत्व हैं। हर मोड़ पर मनुष्य को चुनौती देती है, जो जीवन मूल्यों को विचारों से गौरवान्वित करता है। डॉ0 सिंह ने पात्रों को कल्पना के ताना–बाना में बुना हैं। किरन कृति की नायिका है लेकिन वह एक काल्पनिक पात्र होते हुये भी ऐतिहासिक यथार्थता को प्रस्तुत करती हैं। डॉ0 सिंह ने पात्रों के माध्यम से उत्तरदायित्व का बोध कराया है। डॉ0 त्रिपाठी कहते है – "लोक भाषा के प्रयोग को 'गली आगे मुड़ती हे' जैसे उपन्यास की संभ्रान्त भाषा में सम्प्रेषण के लिहाज से ही समाहित किया गया है।"......[244]

दिल्ली दूर है – 'दिल्ली दूर है' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का ऐतिहासिक उपन्यास है इस कृति में इतिहास और कल्पना दोनों ही प्रकार के पात्रों को सम्मलित किया गया है। काल्पनिक पात्रों के रूप में त्रैलोक्य मल्लदेव, आनन्द, वाशेक तथा तासी, भोज आदि को लिया गया है और कुछ पात्रों को काल्पनिक रूप दिया गया है जिनकी पृष्ठभूमि एकदम खाली हैं। 'दिल्ली दूर है' उपन्यास में कथा–क्रम में कई इतिहास विश्रुत चरित्र आते है इल्तुतमिश, शम्सुद्दीन, फीरोजशाह, रूकनुद्दीन, रजिया बेगम, बलवन, जलालुद्दीन खिलजी, अमीर खुसरों और निजामुद्दीन औलिया भीं। इस उपन्यास की कथा पूरी इतिहास पर आधारित हैं।

वैश्वानर – डॉ0 सिंह ने 'वैश्वानर' उपन्यास में ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से भारतीय वैदिक परम्परा को उजागर किया हैं। कुछ काल्पनिक पात्रों को गढ़कर अपने उद्देश्य को पूरा किया हैं। कथाकार का संदेश है कि जो अपने क्रोध – अहं पर विजय प्राप्त कर लोक हित के लिए समर्पित होगा, वहीं आगे याद किया जायेगा जैसे भगवान श्रीराम। हिंसा से अहिंसा और मानव–कल्याण की यात्रा ही 'वैश्वानर' हैं। काल्पनिक पात्र शौनक कथा नायक है जिसके माध्यम से डॉ0 सिंह ने समाज को संदेश दिया है कि प्रत्येक भारतीय को अपनी संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। डॉ0 पाण्डेय ने कहा है – 'वैश्वानर के विराट् तथा लघु दोनों रूपों की एकात्मता का निर्देशन है जिसका अर्थ है लोक–मंगल।''....[245]

कुहरे में युद्ध – कुहरे में युद्ध के अधिकतर पात्र ऐतिहासिक है और उसमें इतिहास की समृद्ध परम्परा प्रभावी ढ़ंग से मुखरित हुई हैं तथा वर्तमान की स्थितियों का भी सजीव चित्रण हैं। इतिहास पुरूष कोई नहीं है न कभी था न कभी होगा। ऐतिहासिक पात्र घटनाओं से सम्बन्धित नहीं है तो वे काल्पनिक पात्र कहलाते है। अगर मन ही मन निश्चय कर लिया है कि इतिहास में लौटना प्रतिगमन है और ऐसे करने वाले वर्तमान से टकराने में कतराते है। आज पूरी विश्व में देखें कि साहित्य तो अतीत की ओर दौड़ आपको हतप्रभ कर देगीं। आधुनिकता और

तकनीकी प्रोन्नति से जन्म वातावरण में सांस लेना कठिन हो गया हैं। वैसे ही आज के तथाकथित आधुनिक मूल्यों से घबराकर लोग ऐसे चरित्रों को ढूढ़ रहे है जो अतीत के होते हुये भी हमारे वर्तमान के आदर्श हैं। अशोक, चाणक्य, महाभारत तथा रामायण के अनेक ऐतिहासिक चरित्र इतने सशक्त कैसे बन गये। यदि विश्व के ऐतिहासिक पात्रों को देखें यीशु, बुद्ध, गाँधी, नानक, अशोक आदि ने अपनी एक ख्याति बनाई हैं। डॉ0 सिंह लिखते हैं – "लेखक का कर्तव्य इतिहास की उन महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों को एक विशेष दृष्टि देना होता है जो इतिहास को सन्दर्भगत रखते हुए वर्तमान के लिए संदेश हों।"......[246]

चरित्रांकन शिल्प

शिल्प कथाकार के अनुभव को प्रक्षेपित करने का उपयुक्तम आधार हैं। "शिल्प ही केवल साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय एवं अपने अभिप्रेत को प्रस्तुत करने का माध्यम बनता है।"......[247] एक अच्छे शिल्प के द्वारा वह अपनी बात को अधिक तीखे और तेबर के साथ रख सकता है। "शिल्प प्रयोग का एक स्तर मानसिक संरचना की कई बारीक परतों को पार कर रूपांकित होता है।"........[248]

पात्र सृजन की प्रक्रिया को विवेचित करने के पूर्व हम यह मानकर चलते है कि रचनाकार चाहे जिस ढ़ग के चरित्रों की नियोजना करें, वे वृहत्तर समाज की किसी न किसी सच्चाई को उजागर करते हैं। ऐतिहासिक पात्रों की रचना में इस युक्ति से काम लिया जाता है कि वे हमारे जाने पहचाने से लगते हैं। शिल्प शब्द के प्रयोग के बारे में डॉ0 कोटये ने लिखा है – "शब्द कल्पद्रुम में शिल्प शब्द कलादिक कार्य के रूप में स्पष्ट किया है।"......[249] ऐतिहासिक उपन्यास के पात्रों के सृजन में लेखक को अधिक सजगता की आवश्यकता होती है। क्योंकि प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्रों को दोहरे व्यक्तित्व के साथ उजागर करना रहता हैं। एक तो उन्हें अपने ऐतिहासिक व्यक्तित्व की रक्षा करने का प्रश्न रहता है। दूसरी ओर

अतीत के व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करना रहता हैं। यदि लेखक चित्रित अतीत के परिवेश और उसके यथार्थ से हट गया, या चित्रित पात्रों की सूचियों, व्यवहारों और सम्भानाओं को अतीत के समकक्ष न रखा पाया एवं उसकी सम्पृक्ति समकालीनता के साथ न कर पाया, तो उपन्यास का समाधान भी प्रस्तुत करना रहता है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने चरित्रांकन शिल्प अपने अमूर्त अनुभूतियों, भावों और विचारो, मनः प्रभावों को मूर्तरूप देकर अपने कलात्मक अभिप्राय को पूर्ण किया हैं। इन सबको अधिकाधिक स्पष्ट और सौन्दर्यपरक बनाने वाले माध्यमों की खोज में शिल्पविधान का निर्माण किया है। साहित्यकार अपने जीवन में जिन अनुभूतियों को पाता हैं। वहीं अनुभूतियाँ दूसरों के लिए भी संवेदनीय बन जाती हैं, तो उन्हें अधिकाधिक सम्प्रेषणीय बनाने के लिए साहित्यकार को शिल्प का आधार अनिवार्य हो जाता है। आप्टे के अनुसार – "शिल्प शब्द की व्युत्पत्ति शिल् + पक हैं। जिसका अर्थ है कला, ललित–कला, यांत्रिक कला, कुशलता, कारीगरी आदि।"....[250] शिल्प के माध्यम से ही हम प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तकगीत, आख्यान, नाटक उपन्यास और कहानी मं अन्तर कर पाते हैं। वैदिक कोश के अनुसार – "शिल्प कला के लिए आया है, इसके तीन प्रकार है, नृत्य, गीत और वादित (बोलना)।"....[251] नई–पीढ़ी शिल्प विधान के प्रति अधिक सचेष्ट है और नित्यप्रति उसके नूतन प्रयोग की खोज जारी हैं। स्वातन्त्र्योत्तर नयी पीढ़ी के रचनाकारों ने नये भाववस्तु को सार्थक बनाने के लिए शिल्प स्तरों की गवेषणा की है। अब वह अपने उपन्यासों में पात्रों की भीड़ एकत्रित नहीं करता बल्कि कम से कम पात्रों के द्वारा मनुष्य की खण्ड–खण्ड जिन्दगी को चरिचार्थ करता हैं। कथा नियोजन भी विवरणात्मक या तथ्यपरक विस्तार के साथ प्रस्तुत नहीं होती, बल्कि चरित्र के मानसिक घटकों से साक्षात्कार कराया जाता हैं। 'अलग अलग वैतरणी' के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है –"यह कोई, छोटी नहीं, बड़ी बात है। यह खेल नहीं, इसमें जींवत चरित्रों की सृष्टि उपलब्धि हैं।"....[252]

उपन्यास वस्तुतः मनुष्य जीवन को ही रूपायित करता है। चाहे उसका रूप किसी ढ़ग को हो, अतः उसमें मानवीय पात्रों का अनिवार्य रूप से उपयोग होता है। प्रतीकात्मक उपन्यासों में जहाँ मनुष्येतर पात्रों के क्रिया–कलाप चित्रित किये जाते हैं, वे भी मनुष्य जीवन के क्रिया–कलाप को प्रतीकात्मक ढ़ंग पर व्यंजित करते हैं। इसीलिए काल्पनिक पात्र भी जीवित से दिखाई देने लगते हैं।

कथाकार समाज का एक जीवंत एवं विशिष्ट सदस्य होता है। वह समाज में फैले हुए विविध मानव चरित्रों को अपनी रचना में स्थान देता हैं। अर्थात उसके उपन्यास में जिन पात्रों का चित्रण होगा, वे समाज के ही एक अंग होंगे।

युग और परिवेश के अनुसार लेखक पात्रों का निर्माण करता है। लेखक की संवेदना युग परिवर्तन में और उससे उत्पन्न जीवन वैविध्य तथा समस्याओं को जीवन्त रूप से जागृत करती हैं। पाठक यह देखना चाहता हैं। कि आज क्या हो रहा है? और जो कुछ हो रहा उसके कर्ता मनुष्य पात्र ही है। इसीलिए स्वाभाविक रूप से उपन्यास में चित्रित पात्र युगानुरूप होंगे। डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव कहते हैं – "पुरूष पात्रों के मुकाबले नारी पात्र प्रबल सशक्त नहीं हो पाये हैं चरित्रों की यह विशेषता हैं, कि उनमें हर एक की अपनी अद्वितीयता हैं।"....[253]

स्वातन्त्रोंत्तर हिन्दी उपन्यासों में चरित्रांकन प्रक्रिया और पद्धति में अनेक नवीन परिवर्तन देखे जा सकते हैं। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में यह बदलाव सजगता से उभारा गया हैं। प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता हैं, पात्रों के चरित्र का परिवर्तन घटनाओं की प्रधानता है, पात्रों के चरित्र का परिवर्तन घटनाओं की नवीन स्थिति के कारण होता हैं। लेकिन आलोच्यकालीन उपन्यासों में घटनाओं का स्थान गौण होकर कथाकारों का सम्पूर्ण परिश्रम चरित्र गठन में केन्द्रित होता हैं।

आलोच्यकाल के अधिकांश मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र दुर्बल और असाधारण है। लेखकों ने जनबूझ कर उन पर किसी वस्तु का आरोप नहीं किया है। समाज में जो ऐसे है, उन्हें किसी भी रूप में कमजोर, हीन और कुंठाग्रस्त दिखाया है। असाधारण पात्र समाज के कोई दैवी पुरूष नहीं है, बल्कि अपनी हीन भावना और कामग्रंथियों के शिकार होकर दोहरे–तिहरे व्यक्तित्व में जीते हैं। चेतन–अवचेतन के अतः सघर्ष और आत्मावलोकन के द्वारा असहाय और अप्रत्याशित गति से विकसित होते है। वे जो चाहते है, कर नहीं नहीं पाते और जो नहीं चाहते वह हो जाता है।

अधिकांश उपन्यासों को वर्णनात्मक शिल्प विधान से लिखा गया है। उनमें पात्रों की जटिल मानसिक स्थिति का चित्रण करने के बजाय यथार्थपरक चित्रण हुआ हैं। 'वैश्वानर' उपन्यास के लिए डॉ0 शीतांशु कहते है–"डॉ0 शिवप्रसाद जी आस्थाशील रचनाकार हैं।"....[254]

कथा वर्णन में पाठक का तादात्म लेखक से होता है, किन्तु संवादों के द्वारा पाठक से सीधा साक्षात्कार करता हैं। उन दोनो के बीच से लेखक का हस्तक्षेप हठ जाता है। डॉ0 सिंह ने अपने सभी उपन्यासों में पात्रों का चरित्रांकन अधिक शक्तिशाली ढ़ंग से सम्प्रेषित किया है। " उपन्यासकार स्वाभाविकता उत्पन्न करने के लिए ऐसे पात्र द्वारा उनका वर्णन करा देते है जो उस घटना से परिचित होता है।".....[255]

आलोच्य काल के उपन्यासों में कथानक की अपेक्षा पात्रांकन को अधिक महत्व देने का प्रयास किया जा रहा हैं, और पात्रांकन की अपेक्षा मनुयय की सच्चाईयों को अर्थ औरव्यंजना के स्तर पर उभारा जाता हैं।

डॉ0 सिंह की रचना–कौशल की दृष्टि से वातावरण यथार्थ को निर्धारित करता है। रचनाकार का एक सुनिश्चित श्रेय होता है, पर उसकी अभिव्यक्ति के घटकों को

यथार्थ के धरातल पर परखना अनिवार्य होता हैं। इसीलिए कथाकार उपन्यासों में भाषा को जीवन स्तर पर जोड़ने की कोशिश करते हैं।

चरित्रांकन शिल्प के माध्यम से ही कथाकार ने वैदिक कालीन आर्यो की काशी का वर्णन किया है और साथ–साथ आयुर्वेदिक परम्परा को भी समेटा हैं। डॉ0 सिंह के साहित्य लेखन की ओर इशारा करते हुए डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद कहते हैं– ''प्रेमचन्द्र की तरह जीवन में न उतार–चढ़ाव आया और न अमृतलाल नागर की तरह एकदम स्वतन्त्र और अलमस्त रहें।''......[256]

5. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्य कोश – प्र0सं0 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा – पृ0 447–48।
2. कहानी : स्वरूप और संवेदना– राजेन्द्र यादव– पृ0 105–6
3. कहानी कला – डॉ0 प्रताप नारायण टंडन – पृ0 289
4. चतुर्दिक – डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 202
5. Allen, Welter/Writers at work/page no. 32
6. Hale, Nancy/the realities of ficition/ page no. 23
7. C.H./ Froms of Madorn-ficition Page No. 281
8. अलग–अलग वैतरणी – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 27
9. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह का कथा साहित्य– सत्यदेव त्रिपाठी, पृ0 242
10. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 56
11. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 58
12. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 60
13. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य – डा0 सत्यदेव त्रिपाठी पृ0 171
14. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 39
15. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 152
16. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 234
17. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 26
18. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 179
19. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 106–109
20. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 123
21. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 136
22. समीक्षा– नवम्बर–दिसम्बर 1974, पृ0 27
23. 'गली आगे मुड़ती है' –डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0 129
24. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 15
25. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 21

26. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 57
27. ''वैश्वानर– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 47
28. 'कुहरे में युद्ध'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 9
29. 'कुहरे में युद्ध'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 93
30. 'कुहरे में युद्ध'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 270–271
31. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 37
32. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 43
33. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 18
34. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 18
35. सम्मेलन पत्रिका–भाग 57, संख्या 1 –2 कुसुम वार्ष्णेय का लेख, पृ0 85
36. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 151
37. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 462
38. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 167
39. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 164
40. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 164
41. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 524
42. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 178
43. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 179
44. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 124
45. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 148
46. 'अलग–अलग वैतरणी'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 149
47. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 158
48. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 158
49. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 225
50. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 267
51. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 293
52. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 293

53. समीक्षा जुलाई सितम्बर 1990 पृ0 261
54. समीक्षा जुलाई सितम्बर 1989 पृ0 18
55. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 135
56. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 135
57. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 239
58. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 229
59. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 61
60. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 61
61. 'नीला चाँद'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 61
62. 'मंजूशिमा' (भूमिका)– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 5
63. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 3
64. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 11
65. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 30
66. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 30
67. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 32
68. 'मंजूशिमा'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 55
69. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 4
70. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 159
71. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 19
72. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 21
73. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 273
74. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 47
75. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 49
76. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 59
77. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 186
78. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 20
79. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 20

80. 'शैलूष'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 30
81. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 49
82. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 49
83. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 56
84. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 116
85. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 117
86. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 118
87. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 15
88. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 16
89. 'औरत'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 18
90. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 42
91. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 18
92. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 18
93. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 60
94. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 61
95. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 61
96. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 47
97. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 47
98. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 45
99. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 59
100. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 97
101. 'गली आगे मुड़ती है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 99
102. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 153
103. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 157
104. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 171
105. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 172
106. 'दिल्ली दूर है'– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 174

107. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 178
108. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 96
109. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 96
110. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 96
111. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 130
112. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 132
113. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 170
114. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 170
115. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 135
116. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 135
117. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 139
118. 'दिल्ली दूर है'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 143
119. 'वैश्वानर'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 59
120. 'वैश्वानर'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 59
121. 'वैश्वानर'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 64
122. 'वैश्वानर'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 73
123. 'वैश्वानर'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 74
124. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 69
125. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 103
126. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 103
127. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 153
128. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 104
129. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 104
130. 'कुहरे में युद्ध'— डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० 143
131. ''सरल एवं जैनेन्द के उपन्यास में वस्तुशिल्प, डॉ० निर्मला शर्मा पृ० 174, भावना प्रकाशन दिल्ली
132. 'मराठी व्युत्पत्ति कोश, कृ०पा० कुलकर्णी, पृ० 545

133. 'मराठी व्युत्पत्ति कोश, कृ0पा0 कुलकर्णी, पृ0 973
134. भारतीय संस्कृति कोश खण्ड–5, महादेवी शास्त्री, जोशी, पृ0 627
135. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 45
136. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 28
137. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 47
138. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 32
139. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 83
140. 'कल्पना'–197 जून 1968 में छपी 'सेतु' की गोष्ठी की रिपोर्ट से उद्‌घृत पृ0 4
141. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 299
142. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 134
143. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 227
144. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 225
145. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 228
146. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 316–17
147. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 187
148. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 188
149. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 188
150. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 198
151. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 175
152. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 132
153. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 3
154. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 4
155. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 4
156. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 158
157. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 48
158. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 572
159. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 411

160. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 472
161. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 130
162. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 129
163. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 243
164. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 244
165. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 65
166. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 61
167. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 345
168. 'अलग–अलग वैतरणी' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 434
169. 'नीला चाँद' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 165
170. 'नीला चाँद' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 481
171. 'नीला चाँद' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 165
172. समीक्षा जुलाई–सितम्बर 1990, पृ0 261
173. 'नीला चाँद' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 347
174. 'नीला चाँद' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 347
175. 'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 1
176. 'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 9
177. 'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 15
178. 'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 19
179. 'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 30
180. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 119
181. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 160
182. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 160
183. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 41
184. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 285
185. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 91
186. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 6

187. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 15
188. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 25
189. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 26
190. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 39
191. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 152
192. 'शैलूष' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 234
193. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 7
194. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 7
195. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 9
196. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 10
197. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 44
198. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 60
199. 'औरत' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 137
200. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 41
201. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 57
202. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 104
203. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 117
204. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 231
205. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 64
206. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 93
207. 'गली आगे मुड़ती है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 99
208. वैतरणी से .....वैश्वानर तक की यात्रा आनन्द कुमार पाण्डेय पृ0 63
209. 'दिल्ली दूर है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 123
210. 'दिल्ली दूर है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 123
211. 'दिल्ली दूर है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 37
212. वैतरणी से .....वैश्वानर तक की यात्रा आनन्द कुमार पाण्डेय पृ0 66
213. 'दिल्ली दूर है' डॉ0 शिवप्रसाद पृ0 60

214. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 15
215. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 17
216. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 21
217. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 67–68
218. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 100
219. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 137
220. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 193
221. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 119
222. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 121
223. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 124
224. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 125
225. 'वैश्वानर' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 133
226. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 9
227. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 11
228. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 17
229. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 19
230. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 21
231. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 17
232. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 29
233. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 32
234. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 32
235. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 45
236. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 48
237. 'कुहरे में युद्ध' डॉ० शिवप्रसाद पृ० 154
238. 'डॉ० शिवप्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य'–डॉ० सत्यदेव त्रिपाठी पृ.217
239. Forster – Aspects of Novel Page No. 44
240. 'नवम् दशक के उपन्यास संवेदना और शिल्प' डॉ० कल्पना माणिकचंद

बहसाले पृ0 143

241. वैतरणी से ......वैश्वानर तक की यात्रा' आनन्द कुमार पाण्डेय, विश्व विद्यालय प्रकाश, वारणसी पृ0 87
242. वैतरणी से ......वैश्वानर तक की यात्रा, आनन्द कुमार पाण्डेय पृ0 139
243. बीहड़ पथ के यात्री पृ0 26
244. 'शिव प्रसाद सिंह का परवर्ती कथा साहित्य' डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी पृ0 222 अमन प्रकाशन 104ए/118 रामबाग कानपुर
245. वैतरणी से ......वैश्वानर तक की यात्रा, आनन्द कुमार पाण्डेय पृ0 84
246. 'कुहरे में युद्ध' डॉ0 शिव प्रसाद सिंह (भूमिका) पृ0 15
247. 'हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान, डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा पृ0 22
248. 'हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान, डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा पृ0 24
249. 'श्री लाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्प विधान' डॉ0 पी0के0 कोटये पृ0 40 चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर
250. संस्कृत हिन्दी कोश, आप्टे – पार्ट–3 पृ0 1554
251. 'वैदिक कोष – डॉ0 सूर्यकान्त पृ0 517
252. 'धर्मयुग' – आचार्य हजारी प्रसाद द्विपेदी का कथन पृ0 39
253. 'धर्मयुग' – 10 अगस्त, 1969 – डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव पृ0 22
254. डॉ0 शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि, सम्पादक – लेख – बिम्ब : मेरे दपर्ण में – डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु पृ0 56
255. 'हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा' मक्खन लाल शर्मा पृ0 65
256. डॉ0 शिव प्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि, सम्पादक – पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु लेख – उद्दाम जिजीविषा के यात्री – डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद पृ0 86

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में कथोपकथन शिल्प

१. कथोपकथन शिल्प

२. कथोपकथन के प्रकार

३. कथोपकथन की नियोजना

४. कथोपकथन कौशल

 १. अलग-अलग वैतरणी (१९६७)

 २. नीला चाँद (१९८८)

 ३. मंजूशिमा (१९९०)

 ४. शैलूष (१९८९)

 ५. औरत (१९९१)

 ६. गली आगे मुड़ती है (१९७४)

 ७. दिल्ली दूर है (१९९३)

 ८. वैश्वानर (१९९६)

 ९. कुहरे में युद्ध (१९९३)

५. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चतुर्थ अध्याय

1. कथोपकथन शिल्प

कथोपकथन और चरित्र चित्रण– दोनों ही के पूरक रूप में प्रस्तुत किया गया संवाद अथवा वार्तालाप उपन्यास का अन्यतम विधि से मोदपूर्ण तत्व हैं। डॉ० श्री नारायण अग्निहोत्री का कथन हैं, "बिना संवाद के चरित्र–चित्रण ऐसा होता है, जैसे बिना खिड़कियों और दरवाजों का कमरा।"......[1]

कथोपकथन के शिल्प के महत्व बताते हुए 'हडसन' लिखते हैं–

"सार्थक कथन मनुष्यता का सबसे उत्तम जन्मतः अभ्याससिद्ध अधिकार है। उपयुक्त अभिव्यक्ति का वाहक शब्द चाँदी के कलश के ऊपर सुवर्णफल जैसा शोभायमान होता हैं।"........[2]

किसी भी मनुष्य के सम्बन्ध में ज्ञान संग्रह हम उसके कृतित्व के सहारे तो करते ही हैं परन्तु उसके विषय में दिन–प्रतिदिन का ज्ञान हमें उसकी बातों व कथनों के द्वारा भी होता हैं। जो कुछ भी यह दूसरों से कहता है और जो कुछ दूसरे उससे कहते हैं, उसी के सहारे हम उसके भीतर पहुँचते हैं। उपन्यास में संवाद के बिलकुल न होने, से उसमें एक प्रकार की कृत्रिमता आ जाती हैं और कथोपकथन शिल्प का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। इसीलिये उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र जी कहते हैं–

"उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाए, उतना ही अच्छा हैं। किसी भी चरित्र के मुँह से निकले प्रत्येक वाक्य को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना ही चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना आवश्यक हैं।"......[3]

मनुष्य जो कुछ विचारता है, वही कहता है और जो कहता है, वही प्रायः करता भी है। इस दृष्टि से हम वार्तालाप को चरित्र की कुंजी कह सकते हैं। वार्तालाप ही चरित्र का प्रकट रूप हैं। बाबू गुलाब राय का कथन है, "वार्तालाप प्रायः पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन और कथा–क्रम के विकास के लिए होता है। वार्तालाप में भी चुनाव की आवश्यकता होती है। जो वार्तालाप कथानक को अग्रसर नहीं करता या चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता वह चाहे जितना सजीव हो, उपयुक्त न होगा।"......[4]

कथोपकथन पर विचार करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास लिखते है– "यद्यपि कथोपकथन का उद्देश्य प्रायः वस्तु–विकास करना माना जाता है, परन्तु वास्तव में तो उसका सम्बन्ध पात्रों से है उसके द्वारा राग–द्वेष, प्रवृत्ति, मनोवेग आदि का प्रतिस्फुटन, पात्रों की स्थिति घटनाओं के अनुकूल परिवर्तन औरउनका एक–दूसरे पर प्रभाव बहुत अच्छी तरह दिखाया जा सकता है................इसके द्वारा लेखक चरित्र का विश्लेषण तथा उसकी व्याख्या बड़ी सुगमता से कर सकता है और यदि ऐसा करने में स्वाभाविकता बनी रहीं तो मानो सोने में सुगन्ध आ जाती हैं।"......[5]

कथोपकथन लेखक के उद्देश्य को प्रकट और स्पष्ट करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कथोपकथन या संवाद का कार्य कथानक का विकास करना, पात्रों का चरित्रोद्घाटन करना तथा लेखक के उद्देश्य को प्रकट करना होता हैं। बाबू गुलाब राय कहते है –

"कथोपकथन शिल्प परिस्थितियों और पात्र के अनुकूल होना चाहिए। उसका पात्र के बौद्धिक विकास में सहयोगी होना भी बहुत आवश्यक हैं। कथोपकथन की भाषा ही पात्र के अनुकूल नहीं होना चाहिए वरन् उसका विषय भी पात्रों के मानसिक धरातल के अनुरूप होना वांछनीय हैं।"......[6]

यह कथन सिद्ध करना है कि भाषा से यह तात्पर्य नहीं कि यदि कोई पात्र चीनी हो तो उससे चीनी ही बुलवाई जाए। एक ही भाषा में भी पात्रों का वैशिष्ट्य दिखाया जा सकता है। वास्तविकता और नाटकीयता का समन्वय कथोपकथन को कलात्मक रूप–विधान के साथ ही उसे सरस और स्वाभाविक बनाता है। कु0 शशिवाला का कथन है – ''संक्षिप्तता कथोपकथन का प्राण है''.......[7]

संक्षिप्तता से संवाद में प्रभावत्मकता की वृद्धि होती है। अन्य गुणों में उद्देश्यपूर्णता, सजीवता, स्वाभाविकता, सम्बद्धता, पात्रानुकूलता तथा उपयुक्तता इसके अन्य शिल्प गुण है, जिनके समावेश से या पालन करने से कथोपकथन में चार चाँद लग जाते हैं।

कथोपकथन शिल्प के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ0 उमेश शास्त्री लिखते हैं– ''उपन्यासकारों को नाटकीय भाषा में आवश्यक काट–छाँट के बाद कथोपकथनों को प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे अनावश्यक विस्तार से बचाव तो होगा ही साथ ही कलात्मकता में भी वृद्धि होगी, किन्तु कलात्मकता लाने के लिए इतना प्रयत्न भी न किया जाए कि कथोपकथन में बोझिलता आ जाए और स्वाभाविकता नष्ट हो जाए।''.......[8]

विद्वानों के कथोप–कथन शिल्प सम्बन्धी मतों के आधार पर मैं इस निर्णय पर पहुँचती हूँ कि उपन्यास में कथोपकथन संक्षिप्त, सजीव और सार–गर्भित होने के साथ–साथ पात्र एवं परिस्थितियों के अनुकूल होने चाहिए।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के अधिकांश कथोपकथन स्वाभाविक, सरल और चुस्त–दुरूस्त है, किन्तु कुछ स्थानों पर उन्होंने लम्बे–लम्बे कथोपकथन प्रस्तुत किये हैं। जैसे 'दिल्ली दूर है' 'वैश्वानर', 'कुहरे में युद्ध' में कथोपकथन का रूप प्रायः अधिक विस्तार लिए हुए है। कथोपकथन लम्बे होते हुए भी यह रूप पाठकों को इसलिए नहीं अखरता क्योंकि उसकी शैली विवेचनात्मक है और पात्रों की मानसिकता को उद्घाटित करने वाली हैं।

2. कथोपकथन के प्रकार

उपन्यास की जीवन्तता, पात्रों का व्यक्तित्व तथा मूल्य–दृष्टियों के प्रति स्थापना कथोपकथन की अनुषांगिकता हैं कथोपकथन कई प्रकार के हो सकते हैं, जिनमें प्रमुख इस प्रकार है–

1. लम्बे कथोपकथन
2. नाटकीय कथोपकथन
3. कलात्मक लघु कथोपकथन
4. लोक भाषा के कथोपकथन
5. रमणीय कथोपकथन
6. चरित्र–चित्रण और गति में सहायक कथोपकथन

कथोपकथन या संवाद उपन्यास साहित्य का मुख्य तत्व हैं। संवाद की योजना नाटकों व उपन्यासों के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। "उपन्यास में संवादों के संयोजन से नाटकीय सौन्दर्य आ जाता है।".....[9] सफल उपन्यासकार आवश्यकता के अनुसार संवादों की योजना करते हैं। कथावस्तु के विकास के लिए भी संवादों की योजना बहुत आवश्यक होती हैं। पात्रों की बातचीत चरित्र का उद्घाटन तो करती ही है, कथा को भी गति और मोड़ देती है। उपन्यासकार के लिए कई बार बीती हुई घटना को सामने लाना भी आवश्यक हो जाता हैं। ऐसी स्थिति में "फ्लैश वैंक" पद्धति में वह किसी पात्र के संवाद द्वारा उसको इस रूप में उपस्थित कर देता है, कि वह प्रकट भी हो जाती है और उपन्यासकार द्वारा अपनी ओर से जोड़ी हुई भी नहीं लगती।

कथोपकथन की योजना करते समय डॉ0 सिंह के सामने कई महत्वपूर्ण बाते आई हैं। उपन्यास में कथोपकथन की योजना आवश्यक है परन्तु वह स्वाभाविक होनी चाहिए। सफल उपन्यासकार मानते है कि कथोपकथन केवल कथोपकथन के

लिए न रचे जाय। उनमें पात्रों की बातचीत का स्वाभाविक रूप आना चाहिए। प्रेमचन्द्र ने कहा है कि वार्तालाप 'रस्मी' नहीं होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में उनके शब्द ध्यान देने योग्य हैं–

"उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना कम लिखा जाय, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए।"......[10]

स्वाभाविकता पात्रों के विचार और भावों को उनके मुख से सुनकर अच्छी प्रकार प्रकट होने लगती हैं। यह प्रकट होना ठीक उसी तरह का हो जैसे कि पात्र अपनी रोज की जिन्दगी में, 'आपस' में बातचीत करते हैं– बिना बनावट के, अकृत्रिम, स्वाभाविक। पात्रों की बातचीत में उनके मानसिक स्तर का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति है तो उसकी बात और मजदूर की बातचीत से भिन्न होगी, क्योंकि दोनों का मानसिक स्तर अलग हैं। बातचीत से सहसा ही यह पता चल जाता है कि यह बोलने वाला व्यक्ति राजनैतिक नेता है, धर्मगुरू है, पत्रकार है, पुलिस का आफीसर है या पश्चिम की सभ्यता में रँगा व्यक्ति है। शराबी है या हँसोड़ प्रकृति का व्यक्ति हैं। ये पात्र यदि अपनी मानसिक स्थिति के प्रतिकूल बात करेंगे तो बातचीत की स्वाभाविकता नष्ट हो जायेगी।

कथोपकथन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए डॉ0 श्री निवास शर्मा लिखते हैं– "कोई बिना पढ़ा लिखा मजदूर है और उसके मुख से उपनिषद् और अद्वैत वेदान्त की चर्चा बातचीत का विषय नहीं हो सकती। किसी जुआरी–शराबी के द्वारा व्यसनों से दूर रहने का उपदेश हँसी ही दिला सकता हैं।"......[11]

भाषा भी इस दृष्टि से पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। किस स्तर का व्यक्ति है वह उसी स्तर से विचारों के साथ–साथ उसी तरह की भाषा का भी प्रयोग करें तो

अच्छा लगता है। ''प्रेमचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथनों में पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग देखने में आता है। जयशंकर प्रसाद ने प्रायः संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। साधारण पात्रों के मुख से वैसी भाषा स्वाभाविक नहीं लगती।''.....[12]

मेरा विचार है कि जहाँ तक विभिन्न प्रान्तों के व्यक्तियों द्वारा बोलने का प्रश्न है वहाँ उपन्यासकार सभी प्रान्तों की भाषा तो नहीं बुलवा सकता। उस प्रान्त का थोड़ा स्पर्श पात्र के वाक्यों के शब्दों में लाया जा सकता हैं।

लम्बे–लम्बे संवाद उपन्यास का गुण नहीं हैं। आजकल कुछ उपन्यासों के संवाद बहुत लम्बे–लम्बे हो गये है, उससे पाठक को उतना आनन्द नहीं आता। सरसता की एक सीमा होती है। कहीं–कहीं उपन्यासकार पात्रों के व्यक्तित्व के अनुसार ही उनकी बातचीत भी करा सकता है। उससे कई बार तो एकदम बोलने वाले का व्यक्तित्व साफ उभरकर आ जाता है। व्यक्तित्व के अनुसार की गई संवाद योजना प्रभावशाली होती हैं।

उपन्यासों के सन्दर्भ में कथोपकथन के निम्न प्रकार देखने में आते है–

1. पात्र का स्वयं का चरित्र प्रकट करने वाले (स्वगत)
2. दूसरे पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले (प्रकाश्य)
3. उपन्यासकार के मन्तव्य को प्रकट करने वाले
4. साधारण कथा प्रसंग को चलाने वाले
5. सरल व क्लिष्ट कथोपकथन
6. बड़े व छोटे कथोपकथन

1. पात्र का स्वयं का चरित्र प्रकट करने वाले (स्वगत)

जहाँ पर ऐसे संवाद की रचना की गई हो जो बात कहने वाले के गुण–दोष दिखलाये, वह उस पात्र की चरित्रगत विशेषता को सामने लाने वाला संवाद होता है। पात्रों की बातचीत से उसके चरित्र का उद्घाटन हो जाता हैं। उपन्यासों में इस तरह के संवादों की योजना पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं, जैसे – अलग–अलग वैतरणी में हरिया अपना दुख प्रकट करता हुआ कहता है– "मैं तो करम दरिद्दर हूँ ही। न होता ऐसा तो इस कंडम खानदान की गाड़ी में इस तरह जुतता क्यों रहता।"......[13]

दीपा विपिन से अपना दुःख प्रकट करते हुए कहती हैं– "मैंने अपना दुखड़ा सुना दिया। दिल का पत्थर हट गया। आगे तू जान, तेरा विश्वास जाने।"......[14]
शशिकान्त कहता है– "मैं किसी की पार्टी–वार्टी में नहीं हूँ। शशिकान्त चारपाई से उठकर खड़ा हो गया था। मैं तो अपने काम से वास्ता रखता हूँ।"......[15]

❋ ❋ ❋

डॉ० सिंह 'मंजूशिमा' में अपना क्रियाकलाप प्रस्तुत करते हुए कहते है– "मैं पिछले सप्ताह रक्तचाप से पीड़ित था। अधिक से अधिक प्रातः चार से पाँच बजे तक उठ जाता हूँ।"......[16]

❋ ❋ ❋

"मैं यथार्थवादी हूँ। ऊपर कह चुका हूँ कि मै हर विपत्ति सहने के लिए तैयार हूँ।"......[17]

❋ ❋ ❋

डॉ० सिंह अपनी बीमार पुत्री को देखकर सोचते है– "मैं जब भी उन स्पर्शो के बारे में सोचता हूँ जब भी साधनाभूत हथेलियों की छुवन का अनुभव करता हूँ तो मन श्रद्धा से भर जाता है।"......[18]

'कुहरे में युद्ध' उपन्यास में भी देवशर्मा अपना चरित्र प्रकट करते हुए कहते हैं–"मै सिर्फ ज्योतिषी हूँ राजन, कूटनीतिज्ञ कहकर गाली मत दीजिए। कृपा थी मिथिला नरेश बल्लाल सेन की। उनकी कृपा से मैने ज्योतिष का सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ा। यह समुद्र है राजन्। इसमें केवल जन्मकुण्डलियाँ और हस्त रेखाएँ ही नहीं, समय में बँधने लायक कोई भी पदार्थ नहीं जो यहाँ सम्मिलित न हों। ".......[19]

❋ ❋ ❋

"मैं नारी हूँ वत्स, यही कष्ट का मूल कारण है। मैं माँ हूँ वत्स, जुझौती की हर नारी की तरह मैं भी माँ हूँ।".......[20]

❋ ❋ ❋

'नीला चाँद' में रज्जुक अपना स्वाभाविक परिचय देता हुआ कहता है– "मैं सीमाओं के बीच अपने कर्तव्य को निभाने का अभ्यस्त हूँ, कीरत, पर मेरी दृढ़ता टूट गयी सूरज, लोचन, सोमू आदि के सामने।"......[21]

❋ ❋ ❋

श्रीराल्हदेवी हाथ जोड़कर कहती हैं – "मैं जब काशी स्थित इस दुर्ग में आयी और आर्यपुत्र को इतना अस्वस्थ देखा तो मैं बहुत चितिंत रहने लगी।"......[22]

2. दूसरे पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले (प्रकाश्य)

बातचीत करते समय जब दूसरे व्यक्ति के बारें में इस प्रकार के वाक्य भी बोले जाते हैं, तो उस दूसरे पात्र के चरित्र का उद्घाटन करते है। बोलने वाला और है पर चरित्र दूसरे का प्रकट होता है। ऐसे संवाद दूसरे पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले कहलाते है :– 'शैलूष' उपन्यास में डॉ0 सिंह सब्बों के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहते है– :"सब्बों केवल बोलने चालने में ही नहीं, संस्कार में भी घुरफेकन से बहुत ऊँची थी। वह आज की तरह थीं।"......[23]

'गली आगे मुड़ती है' में शर्मा रामानन्द का चरित्र उद्घाटित करते हुए कहते है, "सुनो तिवारी, तुम स्मार्ट हो, अनुभवी बिल्कुल नहीं हो।"......24

❋ ❋ ❋

'औरत' कृति में चन्द्रा सोनवां के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहता है—"सोनवां, राजी, रोशन सबसे अलग किस्म की औरत हैं।"....25

❋ ❋ ❋

'दिल्ली दूर है' उपन्यास में आनन्द सफीउल्लाह बाशा की तारीफ करते हुए कहता है— "आप इतनी सुन्दर फारसी बोलते है सफी साहब और बुन्देली गीत तो जैसे आपकी मादरी जवान में हों। क्या लचक है इस जुवान में।"....26

❋ ❋ ❋

'वैश्वानर' में मुंडा आदिवासियों का चरित्र व रहन सहन डॉ0 सिंह व्यक्त करते हुए लिखते है— "मुंड़ा बस्ती में आदिवासी अपने—अपने सिर पर प्रकृति के डंठलों के गमछे बाँधे खड़े थे नर्तन की भंगिमा में। सारा शरीर नंगा था।"......27

3. उपन्यासकार के मन्तव्य को प्रकट करने वाले

संवादों के द्वारा उपन्यासकार अपने विचारों को प्रकट करता हैं। वह स्वयं न कहकर किसी पात्र के मुख से वह बात कहला देता हैं। ऐसे संवाद उपन्यासों में मिल जाते हैं। कथोपथन प्रणाली द्वारा कहीं गई बात अधिक नाटकीय और प्रभावशाली लगती हैं। 'वैश्वानर' में डॉ0 सिंह बाबा शौनक के माध्यम से राजा को पुत्र प्राप्ति का शुभ लक्षण, और आगे राज करने वाला राजकुमार के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हैं—

"प्राजजन संतुष्ट और प्रसन्न हैं यह नृपति के लिए पुत्रोत्सव जैसी कल्याणकारी और मंगलदायक वस्तु हैं।"......28

'शैलूष' में पण्डित, पुरोहितो और ढ़ोगियों के प्रति अपने विचार डॉ0 सिंह ने परताप सिंह के माध्यम से प्रस्तुत किया है, "साले एकदम से भ्रष्ट, चरित्रहीन और नीच हो तुम पर पता नहीं क्या हो गया है हिन्दुओं को कि वे तुम्हारे जैसे नीच व्यक्ति को पुरोहित पद से नहीं हटाते।"......[29]

❋ ❋ ❋

"औरत" उपन्यास के माध्यम से डॉ0 सिंह ने अपने जीवन का कटु सत्य उजागर किया है जो पुरूषोत्तम के शब्दों में– "रिसर्चर मैंने इस छोटी–सी जिन्दगी में ठेर सारी तोहमतों की गठरी उठाए, बार–बार, रोते–हँसते जो कुछ भोगा है वह सब सीकड़ा है, कंकड–पत्थर है, पर इसी के बीच कभी वेदना की लहरें किनारे पर शंख, सीपी और वीर बहूटी के रंग वाले मूँगो के दाने भी फेंक जाती है। यही तो मेरे संबल है। यही तो पाथेय हैं।"......[30]

'मंजूशिमा' कृति में डॉ0 सिंह अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं– "मैं स्वयं शिव हूँ। मै उस महाज्वाला का स्फुलिंग हूँ जो मुझे अपनी गोद में सुलाने के लिए उतनी ही उत्कंठित है जितना उसके लिए मैं।"......[31]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह शिव और शक्ति को एक मानते हैं। जैसे तुलसीदास ने लिखा है– "ईश्वर अंश जीव अविनासी"......[32] मैं ही शिव हूँ।

'गली आगे मुड़ती है' में डॉ0 सिंह की जीवन दृष्टि स्पष्ट है जो एक पात्र साधू उसके संवादों से कहलवाते हैं–

"जीवन बेकार लगने लगे, उसके होने न होने में कोई अन्तर न रह जाये, तो आत्म हत्या से बढ़कर शांति और कहाँ है।"......[33]

4. साधारण कथा प्रसंग चलाने वाले

कुछ कथोपकथन (संवाद) कथा को विकसित करने वाले होते हैं। उपन्यासकार पात्रों की बातचीत से विगत घटना या आगे की बातों पर प्रकाश डालना चाहता हैं। संवादों के माध्यम से वह घटना–क्रम को आगे बढ़ाता है। इस तरह का कथा–क्रम विकास डॉ0 सिंह के सभी उपन्यासों में मिलता हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने 'नारी' के माध्यम से कथा के विकास क्रम को गति प्रदान की है– "नारी पृथ्वी माता की बेटी है। सीता है। ऊ हल में जोती जाय। हाय, हाय।"

"किसान सोचता है, भला इस दुःख से वे भी तो पृथ्वी माता की आँख भरें। भरे तो सही। आँखें भरेंगी। आँसू उमड़ेगें, टमकेंगे, तो गर्मी से तपी धरती ही सूखी कैसी रहेगी? यह भी उन्हीं आँसुओं की बरसा में नहा लेगी।"......[34]

'नीला चाँद' में भी घटना क्रम और विकास को आगे बढ़ाते हुए डॉ0 सिंह दासी और राजकुमार के वार्तालाप से प्रस्तुत किया है–

"मै हूँ, शर्मिष्ठा,
ले जाओ मुझे कुछ नहीं खाना पीना हैं।"......[35]

'कुहरे में युद्ध' में उपसेनापति भोज और त्रैलोक्य मल्ल के वार्तालाप के माध्यम से कथा क्रम आगे बढ़ता है।

"नहीं दादा जी, काका का अश्व उसे हरा देता है तब तो प्रश्न पेंचीदा है। कोई न कोई व्यवस्था करनी होगी।"......[36]

'गली आगे मुड़ती है' में राजुल्ली और जमना बातचीत करते है तभी कोई अचानक अपरिचित आ जाता है, तो राजुल्ली बातचीत करने लगता है। जिससे ऐसा लगता कि कथा प्रसंग है–

"कहो तोहार नाम रमेन्द्र नाहीं हों।
नाहीं भाई, रमेन्द्र नहीं हूँ मैं।
पहली अगस्त के दिन मद्रास कैफे में रहयों कि नाहीं, साफ बोलो।
पहली अगस्त को मै था वहाँ, रामेन्द्र भी था।
ओह त हमें पहचाने में गलती हो गई। आपको बहुत तकलीफ भई गुरू छिमा करौं।"......[37]

'औरत' कृति में इन्सपेक्टर बंसल जो एक कत्ल के सिलसिले में पूछ–ताछ कर रहीं हैं और गाँव के ही बन्ने मियाँ के लड़के से संवाद, जो कि साधारण कथा प्रसंग को चलाने में सहायक सिद्ध होते हैं।
"बोल लड़के तेरी वह गंवारन भाभी औलाद वाली है?
औलाद का और कतल से क्या सम्बन्ध?
सम्बन्ध है, सम्बन्ध है.....वह गरदन हिलाती रहीं। तेरी भाभी के हिस्से में कितनी जमीन आती हैं?
बीस एकड़
हुँह, बीस एकड़, यानी कम से कम बीस लाख। कम से कम बीस लाख"......[38]

5. सरल व क्लिष्ट कथोपकथन

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में कथा के विकास–क्रम में सरल और क्लिस्ट भाषा के संवाद पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत हुए हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' में विपिन और पटहनिया भाभी का वार्तालाप दृष्टव्य है– "कल शायद आप मेरी बात का बुरा मान गई भौजी? नहीं तो। यह कैसे समझ लिया आपने?".....39

'शैलूष' में सब्बों मौसी और सलमा की बातचीत से ऐसी धारणा उभर कर सामने आती है कि सभी प्राणी एक है–

''क्यों अम्मा, अपने चरण छूने का हुकुम दोगी म्लेच्छ लड़की को? दुनिया में न कोई पवित्र होता है बेटी, न म्लेच्छ। यह सब अपने को बुरके में छिपाने की कोशिश है।''.......[40]

❋ ❋ ❋

'औरत' उपन्यास में शिवशंकर तिवारी और पुरूषोत्तम की बातचीत दृष्टव्य है–''सबूत तो नहीं हैं बाबू, पर मै मिला था उससे? क्या हुआ, बोल दे.....हम यह शादी नहीं करेंगे।''.....[41]

'दिल्ली दूर है' में बाबा फरीद और सीदी मौला के संवाद द्रष्टव्य है–''हुकुम करें औलिया।''

आपकी किस्मत अच्छी है। लगता है मेरा एक भूला बेटा घर लौट रहा है। वह रावलपीर को अच्छी तरह जानता है। आपने इतनी दूर से अपने भूले–बिसरे बेटे को पहचाना कैसे बाबा।.....[42]

❋ ❋ ❋

'वैश्वानर' उपन्यास में बाबा शौनक और सिन्धुजा की बातचीत में शब्दों का मकड़जाल होने से क्लिष्ट वार्तालाप हो जाता हैं। बाबा शौनक कहते हैं– ''तुम प्रतर्दन के पितामह की भागिनी हो। चालीस वर्ष की प्रौढ़ा नारी हो, तुम उसकी निश्छलता को छलना क्यों चाहती थी।''.......[43]

प्रतर्दन और एक साधारण युवती की बातचीत सरल व साधारण है,
''हे, भगवान तब तो बंटाधार ही हो जाता''

किसका?

मेरा और किसका

तो मैं क्या पति के रूप में तुम्हें यानी प्रतर्दनी के योग्य नहीं होती? यह तो विपरीत रति होती है।''.......44

'गली आगे मुड़ती है' में गंगा जी में बाढ़ का दृश्य उपन्यासकार ने दिखाया है। नायक रामानन्द सबकी मदद करते है बीमारों की सेवा में लगे हैं। झूरी भी बीमार है। तिवारी और झूरी का संवाद दृष्टव्य हैं–

''गंगा जी कहाँ तक आय गई तिवारी बाबू?

तुम्हारे दरवज्जे तक।

सच्ची?

हम जाके देखे।

नहीं, तुम्हे अभी बुखार है, कल देखना सब''........45

6. बड़े व छोटे कथोपकथन

उपन्यासों में छोटे व बड़े कथोपकथन कथानक के आधार पर प्रयुक्त हुए हैं डॉ0 सिंह ने छोटे व बड़े संवादों का सहारा लेकर कथा–विकास को बढ़ाया है। ''नीला–चाँद'' में कई छोटे व बड़े कथोपकथन देखे जा सकते हैं–

''रज्जुक ने आँखे खोली, क्या है पारस इधर आइए, एकान्त में। रज्जुक पारस के पीछे–पीछे चलने लगें। अच्छा हो आप सेनापति को भी यहाँ बुला लें ''....46

'नीला चाँद' में ही चम्पक और शिंजनी के संवाद कुछ बड़े है जो निम्न प्रकार है– ''चम्पक बोली–क्या देव वर्मा की केवल एक रानी थी, सेनापति ने कहा कि कर्णदेव ने चन्देलों का उपहास करते हुए कहा था कि सुनता हूँ चन्देल राजा

एक पत्नीव्रत का पालन करते है। मैने पतिव्रता नारी के बारे में तो सुना था पर पत्नीव्रत पुरूष का तात्पर्य है षंढ़।''

''शिंजिनी बोली–क्या राम षंढ थे चम्पक? भारतीय इतिहास के सबसे महान मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने एक पत्नीव्रत का रूप दिखाने के लिए अवतार लिया था।''....[47]

'औरत' उपन्यास में भी छोटे व बड़े संवाद देखे जा सकते है। जिनके माध्यम से डॉ० सिंह के कथा–क्रम को आगे बढ़ाया। शिवेन्द्र और रूपवा के संवाद से छोटे संवादों का स्वरूप उभर कर सामने आता हैं।

''वाह तेतरी, तू उस महिला से कह देना कि हम सुखी हुए।
सच?
हाँ भई
तो सिवेन्दर भइया उस महिला को छिमा कर दिया आप?
हाँ भई''......[48]

'कुहरे में युद्ध' में वाशेक और त्रैलोक्य मल्ल के संवाद दृष्टव्य है–
''तुम्हारे जैसे का पुरूष की सहायता से?''
''मै का पुरूष नहीं हूँ राजन।''
''का पुरूष न होते तो अपने गोंडजन की इतनी हानि कैसे सह जाते।''
''ठीक है मैं इसका मूल्य अपना सिर देकर चुकाऊँगा।''.....[49]

'मंजूशिमा' कृति में डॉ० सिंह अपनी पुत्री मंजू को लेकर मद्रास गए। टैक्सी किराया देते है तो सरदार से बोले–
''कितने हुए सरदार जी।

चौवालीस रूपये, उन्होंने मीटर देखकर बताया

इतना

हाँ जी, इसमें लौटने का भी किराया जुड़ा हैं।''......[50]

7. अंग्रेजी कथोपकथन

डॉ0 सिंह के उपन्यासों व कहानियों में अंग्रेजी भाषा के संवाद कुछ पात्र बोलते हैं। मंजूशिमा नामक कृति में अंग्रेजी संवाद दृष्टव्य है–

''डु यु नो व्हाट योर सन वाज टेलिंग?

नो सर, बट डिड ही टेल यू?''......[51]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह और डॉ0 ए0पी0 पाण्डेय की बातचीत अंग्रेजी माध्यम से होती है–

''व्हाट इज योर नेम?

मेरा नाम है शिव प्रसाद। आप लार्ड शिवा को जानती हैं

वही काले पत्थर का गोल–मटोल चिकना पत्थर।

यहाँ लोग लिंग कहता हैं।''......[52]

❋ ❋ ❋

मंजूशिमा में ही डॉ0 सिंह और शास्त्री की बातचीत दृष्टव्य है'

''नो सर, ही वांटस टु मीट यू।

आल राइट, इनफार्म हिम। आई हैव कम''........[53]

अस्पताल में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह और नर्स की बातचीत के संवाद–

''प्लीज

'' अच्छा मिसेज रणसिंह''.........[54]

❋ ❋ ❋

''में आई कमिन प्लीज''......[55]

3. कथोपकथन की नियोजना

किसी उपन्यास के कथोपकथन व संवादों के द्वारा उस कृति की कथावस्तु का विस्तार होता है, उसमें रोचकता, स्वाभाविकता आती हैं, और चरित्रों का विकास होता हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह द्वारा इन दोनों ही कर्मो, कथावस्तु का प्रसार व चरित्रों के विकास को अचूक कलात्मकता के साथ साधा गया हैं। ''संवाद का अर्थ सम् पूर्वक 'वद्' धातु 'धञ' प्रत्यय लगाने पर बना है जिसका अर्थ है–मिलकर बोलना, बातचीत''......[56] कथावस्तु के प्रसार में कथोपकथन व संवादों का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। संवादो के बिना कथावस्तु बोझिल, प्रवाहहीन व अपनी स्वाभाविकता से अलग हो जाती हैं और फिर डॉ0 सिंह जी के समस्त उपन्यास ग्रामीण व शहरी पात्रों से रचे बसे हैं, यहाँ तो सम्पूर्ण कथा का विकास ही संवादों, क्रियाओं प्रतिक्रियाओं और मनोविश्लेषण के सहारे होता हैं। ऐसे में कथोपकथनों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं, क्योंकि साहित्य मे चरित्र के अर्न्तमन में होने वाले चेतना के प्रवाह की सूक्ष्म व संवेदनात्मक अभिव्यक्ति तो संवादो, स्वागत, भाषण, आत्मविश्लेषण, क्रिया–प्रतिक्रिया, हाव–भाव, के सहारे होती हैं।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में घटनाएँ, बाह्य नहीं चरित्रों के मानसपटल में घटित हैं और सृजनकर्ता अपनी शब्द साधना से, चेतना के सघन प्रवाह को, अभिव्यक्ति देकर व उसे मुखरित करता है।

कथोपकथन व संवाद 'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार – 1. ''संवाद–पु0 (सं0+वद्+हम) सन्देश वाक्यम् समाचार इति भावत् तत्पयीयः वाचिकम्। 2. सन्देशः इति जटाधरः। संदेशवाक् इत्यसरः।''.......[57]

वाह्य जगत की घटनाएँ तो ऐसे उपन्यासों में प्रायः गौण ही होती है और प्रमुख घटनाएँ जो कि चरित्र के अन्दर घटित होती है, तो वह मात्र प्रस्फुटित करने वाली ही होती हैं। यदि ऐसी घटनाओं को, रचनाकार चरित्रों के माध्यम से ही न व्यक्त

कर, उनका विवरण देने लगता है तो न केवल चरित्र व कृति, अस्वाभाविकता के शिकार हो जाते हैं, बल्कि रचनाकार की कृति की कथा, चरित्रों व उनके व्यक्तित्व, मनः स्थितियो में अनुचित हस्तक्षेप ही कहा जाएगा।

किसी भी व्यक्ति के गुणों व अवगुणों का बहुत कुछ आभास उसकी वाणी से लग जाता हैं। अपने अथवा दूसरें के विषय में बहुत कुछ कहने सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक व संस्कारगत प्रवृत्ति हैं। कथोपकथनों के द्वारा चरित्र अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन ही नहीं करता बल्कि, दूसरों को भी अनेक चरित्रिक दुर्बलताओं व विशेषताओं को जानें–अनजाने उद्घाटित करता हैं। किसी उपन्यास का कथोपकथन, उसके पात्रों की मानसिकता परिवेश, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, व्यवहार, सोच–विचार और समझ का द्योतक होता हैं। सफल व प्रभावकारी कथोपकथन संयोजना वहीं है, जो स्वाभाविक तथा पात्र की मनः स्थिति के अनुकूल हो तथा उपयुक्त शब्दों के चयन से सम्पृक्त हों।

कथोपकथन व संवाद मानक हिन्दी कोश के अनुसार – "1. एकरूपता, सादृश्य आदि के कारण चीजों, बातों आदि का आपस में ठीक बैठना या मेल खाना। 2. किसी से की जाने वाली बातचीत वार्तालाप 3. किसी के पास भेजा हुआ, आया हुआ विवरण या वृतान्त 4. खबर, समाचार 5. चर्चा 6. नियुक्ति 7. मुकद्दमा, व्यवहार 8. सहमति 9. स्वीकृति"......[58]

सदा शब्दों के माध्यम से ही संवाद हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। कभी–कभी कहने के तरीके स्वर बलाघात या मौन तक संवाद सम्प्रेषण के अधिक प्रभावकारी माध्यम साबित होते हैं। संवाद कहने के भी अनेक रूप, रूदन, सहज वाक्य, भावभंगिमा, उपदेश, सुभाग, निर्देश, आदेश व इशारा आदि हो सकते है।

डॉ0 सिंह कृत 'अलग–अलग वैतरणी' और 'गली आगे मुड़ती है' उपरोक्त सभी तरह के संवाद प्रविधियों से रचे बसे हैं। संवादों में असहजता न आए, उनकी स्वाभाविकता बनी रहें, जो उसे बोले या प्रदर्शित करें उनके चरित्र, व्यक्तित्व, मनःस्थिति व परिवेश से उसके कथन व क्रियाये मेल खाँए, इसे डॉ0 सिंह ने बड़ी ही अचूक कलात्मकता से साधा हैं। जहाँ भी संवाद हैं वहाँ कहीं तो सपाट–बयानी है, तो कहीं दो टूकता। ज्यादातर ग्रामीण भाषा व भोजपुरी शब्दों का प्रयोग है। चमकदार परिष्कृत व पॉलिश किये हुये वाक्य डॉ0 सिंह के उपन्यासों में देखने को नहीं मिलतें। वहाँ तो स्वाभाविक बयानी हैं। सीधे–सरल व सपाट शब्दों में, न बनावट है न जोड़–तोड़। अधिकतर संवाद शैली सीधी–सादी सरल शब्दों वाली हैं, परन्तु कहीं–कहीं सीधी भाषा में ही अतितीक्ष्म वक्रता है और कहीं–कहीं सीधी सहज भाषा में कहा गया वाक्य सम्पूर्ण दर्शन बन जाता हैं।

डॉ0 सिंह यह जानते है कि उपन्यास फिल्म की तरह एक कंपोजिट बिधा हैं। नाटकीयता से उसका आकर्षण भी बढ़ता हैं और चरित्र भी खुलते हैं–बिना किसी प्रयास के।

उपन्यास मानव जीवन का चित्रण होता हैं। मानव जीवन पारस्परिक मेल–जोल संघात–संघर्ष और सम्मेलन पर आधारित है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में एक–दूसरे के साथ आदान–प्रदान का अनिवार्य माध्यम हैं, पारस्परिक वार्तालाप। इस बातचीत अथवा कथोपकथन अथवा संवाद के द्वारा ही मनुष्य अपने भावों और विचारों को एक दूसरे मनुष्य पर प्रकट करता है। कथोपकथन या संवाद उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके अभाव में उपन्यास में जीवन की गतिशीलता और संघर्ष चित्रित नहीं हो सकतें।

वार्तालाप, संवाद अथवा कथोपकथन की विशिष्टता एवं प्रभावात्मकता के बढ़ाने में सहायक होते है। जार्ज एम0 कोहन लिखते है–

".........The aphorism is even more binding on a Novelist whose effort is to tell as little as the circumstances permit to show what he has decided is essential and to make what is shown suggest the rest"......[59]

उपन्यास में कथोपकथन की निम्नांकित उपयोगिताएं :–

1. कथोपकथन कथानक के विकास में सहायक होते हैं। ये जन–जीवन और घटनाओं के विषय पर प्रकाश डालते हैं। वर्तमान का विश्लेषण करते है और भविष्य की घटनाओं का संकेत देते हैं। बातचीत के माध्यम से ही पात्रों की चरित्रिक विशेषताओं का परिचय मिलता है। 'अलग–अलग वैतरणी' की पुष्पा, 'गली आगे मुड़ती है' का रामानन्द 'दिल्ली दूर है' का नायक आनन्द वाशेक आदि के कथनों के माध्यम से आगे की घटनाओं का संकेत मिलता हैं

2. संवाद पात्रों की चरित्रिक विशेषताओं और आन्तरिक मनोभावों का उद्घाटन करते हैं। रामानन्द, वाशेक, शिवेन्द्र, किरण, पुष्पा आदि के संवाद उनकी सामाजिक और राजनीतिक रूचि की ओर संकेत करते हैं, पुष्पा, किरण, कमला, लाजो आदि के संवाद उनके प्रेमिका होने का संकेत देते हैं।

3. संवाद या कथोपकथन समस्याओं को कथा के मर्म और उद्देश्य को उभारते हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' और 'शैलूष' में संवादों के माध्यम से कई समस्याओं को उजागर किया गया हैं।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों में संवादों अथवा कथोपकथन की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1. पात्रानुकूलता – पात्राकुलता को संवाद की एक अनिवार्य विशेषता बताते हुए बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते है – "ग्रन्थकर्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्र गण की

बातचीत की रचना करें कि जिस पात्र का जो स्वाभाव हो वैसी ही उसकी बात भी विरचित हो।''......[60]

डॉ0 सिंह के उपन्यासों के संवाद पात्रानुकूल है। इनके सभी पात्र प्रायः ग्रामीण वर्ग व कुछ शहरी वर्ग से सम्बन्धित है। उनकी भाषा का भाव ठेठ भोजपुरी व ग्रामयत्व के भरपूर है। तो कहीं पात्र के अनुसार, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। जैसा पात्र, जैसा वातावरण–परिवेश, वैसी ही भाषा। अतः उनके संवादों में बोलचाल के शब्दों का प्रयोग है।

अलग–अलग वैतरणी

''झिनकू सरूप भगत की ओर बढ़ गया। झिनकू बो देवीचक की चमारिनों से बोलने–बतियाने लगी।

ए दुलारी फुआ! घुरबिनवा कुहक रहा था–तोहें एक बात बतायीं''.......[61]

'गली आगे मुड़ती है' के संवाद दृष्टव्य है–

''जाएगा कि नहीं?

जइबै नन्दू भैया, बाकी..........।

बाकी क्या रें?

हवलादर बाबू। जाइ ना देहीं।''.........[62]

2. नाटकीयता – संवादगत सफलता की सबसे बड़ी कसौटी उनकी नाटकीयता हैं। भले ही कोई संवाद पढनें में प्रभावशली और साहित्यिक सौष्ठव से सम्पन्न भी हो, परन्तु यदि वह नाटकीयता से सम्पन्न नहीं है तो व्यर्थ हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के कथानकों में, संवादों में नाटकीयता भी है। संवाद अप्रत्याशित रूप से कथा में एक मोड़ पैदा कर देते हैं। उदाहरण के लिये–

शैलूष में नाटकीयता के तत्व देखें जा सकते हैं – "अरे मूरखचंद, परसों रात को जो लड़ाई हुई, वह तो नौटंकी थी, जितू कसाई, ताहिर अली सब नौटंकी के पात्र थे।"......[63]

❋ ❋ ❋

'औरत' कृति में विवाह के नाटकीय तत्व विद्यमान हैं – "एक बात और ध्यान रखने की है। खास कर हमारे पूर्वांचल में शादियाँ टूटती है, या कटती है, तो लड़कियों की ही। लड़कों में एकाध की कटती है तो भी परम आश्चर्य के साथ।"......[64]

❋ ❋ ❋

'नीला चाँद' उपन्यास में धार्मिक नाटकीयता देखी जा सकती है– "यह दोष वातावरण के बदलने के कारण आया। कालिदास को चामरधारिणी, मंदिरों की देवदासियाँ और धनी युवकों को वशीभूत करने वाली गणिकाएँ अचानक कहाँ से अवतरित हो गयी?"......[65]

❋ ❋ ❋

'गली आगे मुड़ती है' में रामानन्द और थानेदार की बातों में नाटकीयता झलकती है– "आपके खिलाफ रामकीरत ने रिपोर्ट की है आप थानेदार है? आई मीन इन्सपेक्टर? मैं डिप्टी हूँ नायब थानेदार। धन्यवाद"......[66]

3. संक्षिप्ततां, सजीवता, प्रभावात्मकता और प्रभावपूर्णशीलता–संक्षिप्तता अच्छे संवाद का भूषण मानी जाती है। इस विशेषता से उपेत संवाद की तुलना उस गेंद से की जा सकती हैं, जो खेल के मैदान में एक हाथ से दूसरे हाथ होती हुई क्रमशः गतिशील रहती है, किसी एक स्थान पर देर तक रूकती नहीं, पर संक्षिप्तता संवाद में तभी आ सकती है, जब उसके प्रत्येक शब्द का मूल्य हो, अनावश्यक रूप से कोई शब्द प्रयुक्त न हुआ हों। डॉ0 सिद्ध नाथ कुमार का कथन है – "अगर तुम्हारे पास बहुत कम शब्द हैं, जिनसे तुम्हे बहुत कड़ा प्रभाव उत्पन्न करना है....।" अतः प्रत्येक शब्द को सार्थक होना चाहिए।......[67]

डॉ0 सिंह के समस्त पात्रों के संवाद संक्षिप्त और प्रभावपूर्ण हैं। कहते है कि वाक्य जितना संक्षिप्त होगा प्रभाव उतना ही अधिक पड़ता है। उनके छोटे–छोटे वाक्य कथा को सजीवता और गतिशीलता प्रदान करते है। प्रवाह के साथ बोले गये संवाद ग्रामीणों की मनोस्थिति को प्रकट करते है। संक्षिप्त वाक्य का प्रभाव पाठक पर जल्दी और असरदार ढ़ंग से पड़ता है। वे पाठक की रूचि को जाग्रत कर सम्पूर्ण कथानक पढ़ने पर मजबूर कर देते है।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों में संवाद बेहद सटीकता के साथ उभर कर सामने आये हैं।

यथा – "अलग–अलग वैतरणी"

"कौन गोगई?

मैं हूँ हुजूर

ए बुड्ढे, तूने जग्गन मिसिर को जगेसर को मारते देखा।

देखा तो नहीं सरकार।"........[68]

❋ ❋ ❋

"तुम्हारा फैसला अंतिम है?"

'बिल्कुल'

ठीक हैं। जाओ अपने कक्ष में और सो जाओं।........[69]

❋ ❋ ❋

'दिल्ली दूर है' में वाशेक और हाशिम का संवाद द्रष्टव्य है–

"क्या आप बरहमन है?

नही हुजूर मैं नीची जाति का शूद्र हूँ।

तो भी अपने सड़े मजहब से ऐसा लगाव है"

आपको खौफ नहीं होता?

किससे?

मरने से?

वह नहीं होता हुजूर।''.......70

✵ ✵ ✵

4. भावानुकूलता – डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के पात्रों के संवाद भावानुकूल हैं। जैसा भाव वैसा संवाद। संवाद में परिस्थिति भी सहायक होती हैं और परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति विशेष आचरण करता है और उसके आचरण क्रिया–कलाप संवाद का कारण बनते हैं। गली आगे मुड़ती है में रामानन्द का हृदय भावानुकूल हो जाता है वह सोचता है कि महन्त रामकीरत से कैसे निपटा जाए।

''मैं सुबह देर से उठा। गंगा नहाने नहीं गया। आज मैंने जिंदगी में पहली बार सूर्य को उगते नहीं देखा। सुन वे पुजारी के बच्चें। मैने तुझसे हजार बार कहा कि अम्मा का नाम मत लिया कर। पुजारी बोले– में गंदा और लुच्चा हूँ बबुआ जी और तुम लोग बड़े शरीफ हो।''.....71

'मंजूशिमा' कृति में डॉ0 सिंह अपना परिचय देते हुए कहते है–

''आप बी0एच0यू0 में प्रोफेसर है?

मैने कहा जी हाँ

क्या पढ़ाते है?

'हिन्दी'

कुछ कविता – वविता, कुछ कहानी–वहानी लिखते है।

जी हाँ''.....72

4. कथोपकथन कौशल

कथोपकथन, संवाद अथवा वार्तालाप उपन्यास का आवश्यक तत्व हैं। कथोपकथन उपन्यास के पात्रों को जीवित अस्तित्व प्रदान करते है, यदि अनबोले पात्र अपने कार्य–कलाप करें तो कठपुतली बनकर रह जायेगें। कथोपकथन में नाटकीयता का गुण होने के कारण पाठक में पढ़ने की रूचि उत्पन्न करता है, एवं इससे पात्रों का केवल चरित्र–चित्रण ही नही होता, कथा–प्रवाह भी गतिमान होता हैं।

कथोपकथन के प्रमुख तीन कार्य–

1. कथानक के विकास में सहयोग देना
2. पात्रों के चरित्र की व्याख्या करना।
3. लेखकीय मन्तव्य को प्रकट करना

श्रेष्ठ कथोपकथन के अनिवार्य गुण सार्थकता, सजीवता, नाटकीयता, प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्तता, सरलता, पात्रानुकूलता, आदि है।

बाबू गुलाब राय संवाद या कथोपकथन पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहते है– ''जो वार्तालाप कथानक को अग्रसार नहीं करता या चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता, वह चाहे जितना सजीव हो, उपयुक्त न होगा।''.......[73]

कथोपकथन पर 'हडसन' लिखते है–

"......Dialoguewell – managed is one of the most delightful elements of a novel''.......[74]

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में कथोपकथन सुस्पष्टता एवं वास्तविकता का आभास देता है। बाबू गुलाब राय की धारणा है– ''वार्तालाप का कौशल कथा–क्रम के विकास के लिए होता है। इसलिए जो वार्तालाप कथानक को अग्रसर नहीं करता, वह चाहे

जितना सजीव एवं विदग्धतापूर्ण क्यों न हो उसे वे उपन्यास के उपयुक्त नहीं समझते।''......75

उपन्यास स्वयं कभी अवकाश का बौद्धिक अभिसार—स्थल बन जाता और तब पूरा का पूरा उपन्यास मनोरंजन के ऊपर बुद्धि का बोझा बढ़ा देता है। ऐसे उपन्यास में पात्र प्रतिभा के अवतारी बन कर विद्वत्ता के ऊँचे कंगूरे पर वार्तालाप को बुद्धि – विलास का रूप दे देते हैं। डॉ0 सिंह ने कथोपकथन या संवाद के माध्यम से पाठक को दिमागी कसरत या कभी—कभी तो बौद्धिक जिमनेजियम का भी अभ्यास कराते है।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि कथा—जगत के चरित्र साधारण रूचि की बातों पर सफलता से भाषण नहीं कर सकते यदि संभाषण चरित्र के सहज गुण के रूप में आता है तो संत वाणी सा उपयोगी होते हुये अपनी सम्पूर्णता में ग्राह्य होता है।

जीवन के अनेक विध सम्बन्धों को लेकर चलने वाले इस उपन्यास में कथाओं की तरह पात्रों का भी एक विराट समुद्र लहराता पाया जाता है। पढ़े लिखे कुछ पात्रों को छोड़ दिया जाये तो अधिकांश पात्र अपने जातीय एवं आंचलिक संस्कारों से अनुप्राणित है।

डॉ0 सिंह के कथा—साहित्य में पात्रों के कथन व संवाद वाह्य रूप, आकार—प्रकार, वेश—भूषा आदि का वर्णन भिन्न प्रकार का है। इन्होंने बाह्य का सम्बन्ध अन्तर से जोड़ देना आवश्यक समझा हैं।

कथाकार डॉ0 शिव प्रसाद सिंह को ग्रामीण वातावरण के निर्माण में सर्वत्र अद्भुत सफलता मिली है। इनके कथा—साहित्य में गाँव के चरित्र उतने ही सजीव है जितनी उनकी एकैक व्यक्तित्व की सूक्ष्म पहचान।

ग्राम कथाकार डॉ0 शिव प्रसाद ने गँवई जिन्दगी के स्पन्दन को भाषा के माध्यम से पकड़ने का सार्थक प्रयास किया है। जो भाषा या जो शब्द गाँवों या घरों में बोले जाते हैं, उनका प्रयोग डॉ0 सिंह ने बड़ी सफलता के साथ किया है। डॉ0 सिंह लिखते है–"मैं गाँव के कहानीकारों द्वारा ठूँस–ठूँस कर आनावश्यक ढ़ंग से प्रयुक्त होने वाले भदेश शब्दों को पसन्द नहीं कर सकता। जहाँ परिनिष्ठत हिन्दी के शब्द प्राप्त नहीं वहाँ तो देशी, जन प्रचलित शब्द है और वे पात्रों में एक नयी शक्ति भी पैंदा करते है।"........[76]

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में कथोपकथन व संवाद में प्रयुक्त शब्दावली, उपमानों, लोकोक्तियों और मुहावरों का महत्व अक्षुण है। लेखक ने आधुनिक जीवन में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके उपन्यास को आदर्श के पल्ले से बचाया है। डॉ0 सिंह अपनी भाषा के बारे में "शैलूष" की भूमिका में लिखते है–

"कभी लोगों ने मुझे भाषा का जादूगर कहा था अब वह जादूगरी विलाय गयी। अब तो मैं भाषा का शैलूष हूँ।"......[77]

डॉ0 सिंह का सर्जनात्मक साहित्य, उनकी सृष्टि भी एक ऐसी ही गत्यात्मक निर्मित है। उनकी अन्तः प्रज्ञा ने भी मनुष्य और समाज का चित्र संवादों के माध्यम से खड़ा किया हैं। कथनों व संवादों के माध्यम से कथा–क्रम आगे बढ़ता गया और एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु कथोपकथनों का सहारा लेकर पूरी इमारतों का निर्माण किया है। 'अलग–अलग वैतरणी', 'नीला चाँद', शैलूष, कुहरे में युद्ध, औरत और मंजूशिमा, आदि से मिलकर पूरा एक साहित्य नगर स्थापित किया है डॉ0 सिंह ने। जिनमें कथोपकथनों के द्वारा सभ्यता और संस्कृति उभर कर सामने आयी हैं।

5. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'उपन्यास कला के तत्व' डॉ0 श्री नारायण अग्निहोत्री पृ0 111
2. ''एन इटरोडक्शन टु इंगलिश लिटरेचर' : हाडसन 1949, पृ0 202
3. 'कुछ विचार' भाग–एक : प्रेमचन्द्र, पृ0 55
4. 'काव्य के रूप' : बाबू गुलाबराय, पृ0 162
5. 'साहित्यलोचन' : डॉ0 श्यामसुन्दर दास पृ0 162
6. 'काव्य के रूप' : बाबू गुलाबराय, पृ0 175
7. 'शिवानी के उपन्यासों का रचना–विधान' कु0 शशिबाला पंजाबी, पृ0 57
8. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास : डॉ0 उमेश शास्त्री, पृ0 66
9. 'साहित्यिक विधाएँ' डॉ0 श्री निवास शर्मा पृ0 47
10. प्रेमचन्द्र के विचार–भाग–1, सम्पादक अमृतराय पृ0 16
11. साहित्यक विधाएँ–डॉ0 श्रीनिवास शर्मा, पृ0 47
12. साहित्यक विधाएँ–डॉ0 श्रीनिवास शर्मा, पृ0 47
13. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 107
14. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 462
15. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 368
16. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 10
17. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 19
18. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 49
19. 'कुहरे में युद्ध', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 13
20. 'कुहरे में युद्ध', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 69
21. 'नीला चाँद', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 143
22. 'नीला चाँद', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 153
23. 'शैलूष', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 8
24. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 117
25. 'औरत', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 106
26. 'दिल्ली दूर है', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 23

27. 'वैश्वनार', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 71
28. 'वैश्वनार', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 193
29. 'शैलूष', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 39
30. 'औरत', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 58
31. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 97
32. 'रामचरित मानस' तुलसीदास
33. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 116
34. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 19
35. 'नीला चाँद', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 166
36. 'कुहरे में युद्ध', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 72
37. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 129
38. 'औरत', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 125
39. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 156
40. 'शैलूष', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0
41. 'औरत', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 51
42. 'दिल्ली दूर है', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 341
43. 'वैश्वनार', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 355
44. 'वैश्वनार', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 403
45. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 52
46. 'नीला चाँद', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 130
47. 'नीला चाँद', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 165
48. 'औरत', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 32
49. 'कुहरे में युद्ध', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 114
50. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 72
51. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 113
52. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 118
53. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 85

54. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 132
55. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 59
56. संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ0 1048
57. शब्दकल्पद्रुम : पंचमोभागः, पृ0 202
58. मानक हिन्दी कोश, पाँचवाँ खण्ड, पृ0 232
59. "The world of Fction – Barnord De. Voto – Page No. 250
60. भारतेन्दु ग्रन्थवली, पृ0 767
61. 'अगल–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 401
62. गली आगे मुड़ती है, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 77
63. 'शैलूष', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 49
64. 'औरत', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ059
65. 'नीला चाँद', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 401
66. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 38
67. हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास, डॉ0 सिद्ध नाथ कुमार पृ0 75
68. 'अगल–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 259
69. 'कुहरें में युद्ध', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 41
70. 'दिल्ली दूर है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 297
71. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 31
72. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 77
73. काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, पृ0 181
74. An introduction to the study of English Literature William Henry Hudsan– Page No. 202
75. काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, पृ0 172
76. आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृ0 142
77. 'शैलूष', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह आत्मन पृ0 15

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का में

१. देशकाल एवं वातावरण

२. पात्रों का निजी परिवेश, पात्रों की मन: स्थिति का बिंब-प्रतिबिंब भाव

   १. अलग-अलग वैतरणी

   २. नीला चाँद

   ३. मंजूशिमा

   ४. शैलूष

   ५. औरत

   ६. गली आगे मुड़ती है

   ७. दिल्ली दूर है

   ८. वैश्वानर

   ९. कुहरे में युद्ध

३. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पंचम अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में देश काल एवं वातावरण

1. देश काल एवं वातावरण

उपन्यास की कथा को सत्य रूप देने के लिए, उसे सजीव एवं स्वाभाविक रचना बनाने के लिए वातावरण की सृष्टि लेखक के लिए अनिवार्य हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि कथानक एवं पात्रों को वास्तविकता का आभास देने के साधनों में वातावरण मुख्य हैं। कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भाँति वातावरण (देशकाल) के बन्धन में रहते हैं।

वातावरण का महत्व प्रतिपादित करते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है– ''यदि वे (पात्र) भगवान की भाँति देश–काल के बन्धनों से परे हों तो वे भी हम लोगों के लिए अभेद रहस्य बन जाएँगे। इसलिए देश–काल का वर्णन भी आवश्यक हो जाता हैं। व्यक्ति के निर्माण में वातावरण का बहुत कुछ हाथ होता हैं। जिस प्रकार बिना अँगूठी के नगीना शोभा नहीं देता उसी प्रकार बिना देश–काल के पात्रों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता है और घटनाक्रम को समझने के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है।''.....[1]

देशकाल में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है बनारस की गलियों को देखें बिना हम गलियों का वर्णन नहीं कर सकते हैं। उपन्यास की विविध घटनाओं, उसके विविध पात्रों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को एक सुधी पाठक तक ही समझ सकता हैं।

किसी सीमा तक यथार्थ, जब वह यह देखें कि उसकी पृष्ठभूमि किस सीमा तक देशकाल का सही वातावरण और लेखा–जोखा प्रस्तुत करती हैं। देशकाल के अन्तर्गत किसी भी देश या समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक,

परिस्थितियाँ, आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज तथा समाज की कुरीतियाँ या विशेषताएँ आदि समझी जा सकती हैं।

उपन्यास के तत्वों में देश और काल का विवेचन करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने लिखा हैं– ''उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार–विचार, रहन–सहन और परिस्थिति आदि से हैं।........................... बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसीलिए मनोरंजक होते है, कि उनमें समाज के किसी वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से सम्बन्ध रखने वाला ही वर्णन होता हैं। ऐसी अवस्था में जिस उपन्यास का वर्णन जितना सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जाएगा।''.......[2]

उपन्यास में, जो वस्तु जहाँ की उपज नहीं, उसका वहाँ दिखाना अथवा जो प्रथा जिस काल में प्रचलित न थी, उसका उस काल में चित्रित करना देश और काल के विरूद्ध माने गए है। इसके साथ ध्यान रखने की बात है कि देशकाल कथा का अवरोधक न बनें। इस विषय में बाबू गुलाब राय का कथन है–''देश–काल के चित्रण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे स्वयं साध्य न बन जाएं। जहाँ देशकाल का वर्णन अनुपात में बढ़ जाता है, वहाँ उससे जी ऊबने लगता है। देशकाल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होना चाहिए।''........[3] आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा ही वह काम भी करने लग जाता हैं। देश–काल, वातावरण का बाहरी रूप है। वातावरण मानसिक भी हो सकता हैं। प्राकृतिक चित्रण भी उद्दीपन रूप में पावों की मानसिक स्थिति या 'मूड' को निश्चित करने में सहायक होते हैं। इस सम्बन्ध में बाबू गुलाब राय लिखते है– ''प्रकृति और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामन्जस्य पाठक पर अच्छा प्रभाव डालता हैं। जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य

का अस्त हो जाना अथवा घड़ी का बन्द हो जाना आदि वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है।''........[4]

देशकाल में स्थानीय रंग से तात्पर्य सामान्यतः लोकलकलर से लिया जाता हैं। स्थानीय रंग का महत्व डॉ0 टण्डन के अनुसार – "एक तो यह कि उसके होने से उपन्यास में प्रभावात्मकता आ जाती है तथा दूसरे यह कि उसकी कृत्रिमता नष्ट हो जाती है और स्वाभाविकता बढ़ जाती हैं।''........[5]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता हैं कि वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम हैं, जिनमें पात्र और कथानक को संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना होता हैं। वातावरण की श्रेष्ठता और सजीवता उसके सन्तुलित और समायोजित होने में हैं डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की सूक्ष्म दृष्टि–सम्पन्नता और मनोरम चित्रण–क्षमता का परिचय, उनके कथा–साहित्य से मिलता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यासों में विकासक्रम, रचनाक्रम और कालक्रम तीनों एक साथ बनते नजर आते हैं। सीधी रेखा में उनका क्रम चिन्हित करना सम्भव नहीं हैं। उनके सभी उपन्यासों का आपस में एक दूसरे से सम्बन्ध न होते हुए भी एक सम्बन्ध हैं, क्योंकि एक त्रिक में 'नीला चाँद' अर्थात अन्तर मन है जो उपन्यास नाम के प्रतीक सरल कथानक के बीच दायें–बायें होता रहता है 'दिल्ली दूर है' और 'कुहरे में युद्ध'।

डॉ0 सिंह ने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया तो सबसे पहली कहानी 'दादी माँ' जिस पर लोगों की पहली नजर पड़ी। फिर बरसों वे कहानियाँ लिखते रहे और फिर नाटक भी लिखें। आलोचना, अरविन्द (उत्तर योगी) जीवनी प्रसिद्ध हुई। विद्यापति का संग्रह और आलोचना का कार्य भी उन्होंने किया तथा ऐतिहासिक व्याकरण विभाग में रहकर व्याकरण और भाषा शास्त्र का भी उन्होंने

अध्ययन किया। उपन्यासों में देशकाल, वातावरण और पात्रों का निजी परिवेश उच्चकोटि का था।

डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय लिखते है– "शिवप्रसाद के उपन्यासों में गाँव का जस का तस मुख्यतः 'अलग–अलग वैतरणी' में ग्राम स्मृति के रूप में हैं। घर छोड़ चुके आदमी को जितना घर याद आता है उतना ही ग्राम।"........[6]

डॉ0 सिंह जी सहज ही किसी का अनुकरण नहीं करते इसलिये उन्होंने ग्रामीण वातावरण पौराणिक प्रतीक और अस्तित्ववाद का तालमेल बैठाकर ग्राम केंन्द्रित उपन्यास लिखे, उपन्यासों में समकालीन वातावरण का प्रस्तुतीकरण किया हैं।

'अलग–अलग वैतरणी'

डॉ0 सिंह का प्रथम उपन्यास 'अलग–अलग वैतरणी' 1967 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास में ग्रामीण जीवन का वातावरण, सफलतायें, असफलतायें, ग्रामीण वेदना, जय, पराजय को उन्होंने अपना केन्द्र बिन्दु माना। डॉ0 सिंह ने करैता गाँव को केन्द्र में रखकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामीण यथार्थ का एक मुकम्मल चित्र प्रस्तुत कि हैं। पूजा–अर्चना के चित्र को यथार्थ रूप में, देवी मैया से आशीष की भीख माँगते है–

> "खोलो ना, खोल दो माँ, अपने इन बज्र–किवाड़ों को खोलकर,
> एक बार बाहर भी देखो, तुम्हारे सेवकों की भीड़ लगी है।"......[7]

इस उपन्यास में डॉ0 सिंह ने ग्रामीण लोगो की धार्मिक आस्थाओं का वर्णन किया। साथ ही स्वतंत्रता के बाद वाले वर्षो में भारतीय ग्रामीण जीवन का देशकाल एवं वातावरण का बाहरी एवं भीतरी सतहों में उभारा एवं पड़ी दरारों का उसके सामाजिक, आर्थिक और नैतिक परिवर्तनों और मूलगत ह्रास तथा

मोहभंग, हताशा एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन का बड़ा ही सूक्ष्म, विश्वसनीय आत्मीय चित्रण किया हैं।

'अलग–अलग वैतरणी' में करैता गाँव का देशकाल एवं ग्रामीण वातावरण की अपनी वैयक्तिक विशिष्टताओं के साथ–साथ स्वतंत्रोत्तर भारत के सामान्य गाँव का उसी तरह प्रतीक बन गया हैं, जिस प्रकार प्रेमचन्द्र के गोदान का बिलारी गाँव। स्वराज्य होने और जमींदारी टूटने के पश्चात गाँव में नयी बिरादरी बनने और नए रिश्ते बनाने के क्रम में पंचायती चुनाव के पैतरे पृष्ठभूमि का काम करते हैं। यहाँ पार्टीबन्दी होती है और उठते अनपढ़ बदमाशों की पार्टी बनती हैं। वातारण गाँव का बदल रहा हैं, जलसे में गाँव के जमींदार का आना ऐसी अजूबा बात थी कि लोगो के विनोद से बहुरे चेहरे प्रसन्नता से खिल उठें अचानक स्वराज्य के प्रति लोग जागरूक हो उठें। "लोगो के होठ फरफराये और भारत माता तथा गाँधी जी की जै–जैकार से स्कूल का अहाता भरभराने लगा।"......[8] करैता गाँव के वातावरण में पूर्वाग्रही संस्कृति के बीज एवं रहन–सहन स्पष्ट दिखलाई पड़ता हैं।

'अलग–अलग वैतरणी' के पन्ने खुलते हैं, एक ओर सूरज सिंह की पार्टी और दूसरी ओर मीरपुर के बबुआन खानदान की पार्टी, देखते–देखते गाँव के हरिया, शिरिया जैसे बदमाशों का गाँव बन जाता हैं। पुराने जमींदार नयी नीति अपनाते हैं। गाँव की जनता के सामने माथा झुकाकर छिपे तौर से उनके भाग्य विधाता बने रहने की, क्योंकि जमींदारी टूटने पर जमींदारों की अतिरिक्त आय के श्रोत बन्द हो गये, किन्तु संस्कार वही रहें। गाँव के वातावरण की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती हैं।

'अलग–अलग वैतरणी' में दर्जनों किसान परिवार का ग्रामीण वातावरण एवं पात्रों का निजी परिवेश के जीवन में करैता की संस्कृति हैं। वास्तव में यह एक

भूतपूर्व बबुआन जमींदार परिवार की कहानियाँ बिखरी पड़ी हैं। छावनी के बबुआन जैपाल सिंह और गाँव के धनी परिवार सुरजू सिंह की पुश्तैनी शत्रुता है। जिसके मूल में इन परिवारों को एक युवक और एक युवती जयपाल और कनिया की प्रेम बलि हैं। उनकी शत्रुता नये युग के अनुरूप में विकसित होती है और आगे चलकर गिरावट, छल–छन्द, हीन मंसबे और अंधी लाग डॉट चलती हैं। जिसके कीचड़ में समूचा भाव सराबोर जिसमें कई प्रकार के मानसिक बिंब प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से नजर आते हैं।

'अलग–अलग वैतरणी' में देखा जा सकता हैं– ''अच्छा तो धरमू की कुर्की हैं? वंशी काका पुराने दाँतो को थोड़ी हवा दिखाकर बोले, 'जैसी करनी वैसी भरनी'। नमक हराम कहीं का।''......[9] करैता गाँव का अपना एक देशकाल है। ऐसे ही में शहर की पढ़ाई समाप्त कर करैता में आया बुझारत का छोटा भाई विपिन एक फर्स्ट क्लास स्कॉलर हैं। उसका साथी देवनाथ भी डाक्टरी पास कर गाँव में जमने की कोशिश कर रहा हैं। दोनो के मन में गाँव के प्रति स्नेह हैं। समय–समय पर विपिन में नये खून की ताजगी दिखाई देती हैं। एक दिन न्याय एवं कानून के नाम पर उसने मनोहर को डॉटकर चुपकर दिया।

विपिन ने अपने परिवार के विरूद्ध चुपके से मदद कर उसने थानेदार को डॉटकर चुप कर दिया। अपने परिवार के विरूद्ध चुपके मदद कर उसने पुष्पा का घर बार नीलामी पर चढ़ने से बचा लिया। बचपन का प्रेमांकुर पनप कर ललक तो उठा पर गाँव की हक उल्टी पड़ी और अपने मूक प्रेम को लेकर विपिन टूटने लगता है। कुल की लाज ढकने के ख्याल से विपिन ने सारी स्थिति अपने सिर ओढ़ ली परन्तु इतना बोझ लेकर चलना कठिन हैं। उसका प्रेम लुट रहा है और वह असमर्थ हैं, अब तो बस प्रेम–वेदना में तड़फ रहा हैं। आत्म–ग्लानि और आत्मदाह में जल रहा है।

पुष्पा का विवाह कर उसके परिवार वाले भार मुक्त हो जाते हैं। वातावरण और परिस्थितियाँ उसके विपरीत हो जाती हैं। पटनहिया भाभी की बातें, विपिन के हृदय में चुभती हैं। विपिन कनिया को समझाता हैं– "कनिया को राह पर ले आने की कोशिश करेगा, वे बिदकर दूर भागेगी, और स्थिति जितनी ही लम्बी होगी, उनके आत्मपीड़न की क्रिया बढ़ती जायगीं।"......[10]

'नीला चाँद'

नीला चाँद (1988) शिवप्रसाद सिंह का तीसरा उपन्यास हैं। यह काशीखंड का ही नहीं, अखंड काशी के ऐतिहासिक, सामाजिक सांस्कृतिक घटनाक्रम का यथार्थ वर्णन हैं। असल में काशी केवल एक नगरी नहीं हैं, वह दीर्घकाल से भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक विरोधाभास का केन्द्र रहीं हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने काशी को इसी व्यापक भूमिका में पहचाना हैं। उन्होंने ऐसे समय का संधान करना चाहा है जिसमें काशी का वह स्वरूप उद्घाटित हो जो त्रिकंटक को भी हिला देता हैं।

'नीला चाँद' की भूमिका में लेखक ने इस विशिष्ट कालखंड को चुनने के कारणों का उल्लेख किया हैं– "मैं मध्यकाल की वह काशी देखना चाहता था जो विदेशी आक्रांताओं से पहले थी। मुझे तदनुरूप किसी ऐसे समय को ढूढ़ना था जिसने त्रिकंटक को भी हिला दिया हो जहाँ 'धगद् धगद् ज्वलम' के भीतर नंदीश्वर के ज्योतिलिंग ने विशाल स्तम्भ की तरह धरा और आकाश को जोड़ दिया हो। वह समय मिल गया जब कर्ण कल्चुरी ने देववर्मा चंदेल की हत्या की।........उस समय की काशी हैं यह यानी ईसवीं 1060 की।"........[11] वातावरण, ऐतिहासिक, धार्मिक कई बिन्दुओं पर केन्द्रित हैं।

काशी का निजी परिवेश अन्य शहरों के परिवेश के अपेक्षा अलग है। काशी का वातावरण धर्ममय के साथ–साथ पाखण्डता एवं आड़म्बर के प्रतिमानों का

प्रतिनिधित्व करता हैं। नरेश कलचुरी कर्ण ने जैजाक–भुक्ति के राजा चंदेल वर्मा की अमानुषिक हत्या कर दी। वे उस समय ध्यानस्थ थे। उनकी रानी ने कर्ण की कामलिप्सा का ग्रास बनने की अपेक्षा पति की चिता में भस्म हो जाना अधिक श्रेयस्कर समझा। कर्ण ने कलातीर्थ खजुराहों को भी आग में झोंक दिया अर्थात साथ भारत योगी, सती की चिताग्नि और कला की ध्वंसाग्नि 'नीला चाँद' के वातावरण और देशकाल की धधकती ज्वाला हैं।

कीर्तिवर्मा सत्ता और अधिकार मोह से मुक्त एक वीतरागी किस्म का युवक है जो अपनी युवावस्था में ही संसार के प्रति वैराग्य के कारण संन्यासी बनकर संसार भ्रमण कर चुका हैं। बड़े भाई की हत्या और भाभी के चितारोहण के पश्चात आपद्धर्म के रूप में वह राज्य स्वीकार करता हैं।

उपन्यास में इतिहास के निर्वाह से अधिक काशी की प्रतीकात्मक सत्ता को महत्व दिया गया है–जहाँ पवित्रता, अध्यात्म, जीवन और कला मूल्य अपनी पराकाष्ठा पर हो, वहीं उनका ध्वंस सर्वाधिक दारूण प्रभाव उत्पन्न कर सकता हैं तथा वहाँ का देशकाल एवं वातावरण वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रतीकात्मक एवं प्रेरणात्मक हैं।

'नीला चाँद' की भूमिका में लेखक ने ऐतिहासिक उपन्यास की संरचना में देशकाल एवं वातावरण का समावेश किया हैं। 'नीला चाँद' का सम्पूर्ण वातावरण ऐतिहासिक हैं।

'मंजूशिमा'

'मंजूशिमा' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की शोकांकिता कृति हैं। डॉ0 सिंह के जीवन का वह कालखंड हैं, जिसने सात वर्ष तक एक व्यक्ति की परीक्षा ली हैं। उसमें एक शोक का वातावरण एवं करूणा के विभिन्न प्रतिमान हैं। पिता की भावनाओं

को लगातार ललकारा गया हैं। मृत्यु के द्वार पर खड़ी बेटी को बचाने की एक पिता की छटपटाहट हैं– 'मंजूशिमा'

डॉ0 सिंह की पुत्री मंजूश्री गुर्दे की बीमारी से ग्रस्त थी। उन्होंने अपनी बेटी के इलाज के लिए बनारस, चण्डीगढ़, दिल्ली और मद्रास के अस्पतालों की खाक छान मारी पर सब बेकार। मंजूश्री 19 दिसम्बर 1984 को सबको छोड़कर परलोक सिधार गई, केवल 17 वर्ष की आयु में इससे पूर्व 1953 में डॉ0 सिंह ने दो संतानों की मृत्यु का शोक झेला हैं। मृत्यु और मृत्यु के बाद की स्थितियों से जूझते हुए शिवप्रसाद सिंह यथार्थ और नियति के बीच झूलते हुए जीवन की कठोरतम स्थितियों के गवाह रहें, मृत्यु से जीवन की चुनौती हैं।

वातावरण की दृष्टि से मंजू लगातार सात वर्षो तक अपनी बीमारी से लड़ती रहीं। अन्त में मृत्यु की जीत हुई जो शाश्वत सत्य हैं, जिसे नकारा नहीं जा सकता हैं पन्त जी प्रकृति के प्रत्येक कार्य को शाश्वत मानते हैं 'नौका बिहार' में लिखते हैं– ''शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम, शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।''......[12] पूर्वांचल का यह देशकाल एवं वातावरण घोषित करता हैं कि जो माता–पिता पूर्व जन्म में हाथी–दान कर चुके होते है उनकी बेटी विवाह से पहले मर जाती हैं। ऐसे माहौल में एक मध्यमवर्गीय परिवार का पिता अध्यापन के बूते पर संकल्प करता हैं कि चाहे जैसे हो, कर्ज लेकर, खेत बेचकर, घर बेचकर, सब कुछ दाँव पर लगाकर उस बिन ब्याही बेटी को बचाऊँगा हीं। सितम्बर 1980 में बरसाना के राधा मन्दिर की सीढ़ियों पर थकान से चूर, शिथिल प्राण पिता को एक ध्वनी सुनाई पड़ी – ''मंजू तुम्हारा साथ छोड़ देगी, वह मौत की ओर जा रहीं हैं।......[13] मंजू भी अपनी दशा पर अफसोस करती हैं–''मंजू पीड़ा से तड़फ उठती हैं, स्वतंत्र होने के लिए छटपटाती। कौन देगा अपनी किड़नी मुझ अभागिन को?''......[14]

इतना कुछ झेलने के बाद पिता का चिड़चिडा हो जाना, कटुता से भर जाना, वातावरण निराशा और व्यक्तिगत व्यथा से भरा हैं।

'मंजूशिमा' ऐसी रचना है जो भोक्ता और रचनाकार को उनके आपसी सम्बन्धों की जटिलता, तरलता, और उनकी अन्तः क्रियाओं का देशकाल एवं वातावरण को साथ–साथ जोड़ा गया हैं। उपन्यास के भीतर एक और उपन्यास रचने की प्रचलित शैली में यह कार्य नहीं हुआ हैं। पूरी कृति एक पारदर्शी रचना प्रक्रिया हैं, जो पाठक के मन में उतरती चली जाती हैं।

"शैलूष"

शैलूष (1989) में लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर खानाबदोश नटों के जीवन के संघर्षो को लेखक ने परत–दर–परत उकेरकर संजोया हैं। इस उपन्यास में अपराधिक जातियों का वातावरण एवं उनकी जीवन पद्धति को बताया हैं। यायावरी जीवन में घटने वाली तमाम बाह्य शक्तियों के दबाव, अत्याचार, अन्याय और छल–कपट को लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन्त कर दिया हैं

'शैलूष' उपन्यास में वातावरण की संवेदनक्षम सच्चाईयों और मानवीय संवेगों का सहज चित्रण भी उभरकर सामने आया हैं।

डॉ0 सिंह ने स्वतंत्रोत्तर इतिहास को सूक्ष्मता से छुआ है जिसमें विषमता, गरीबी, भावुक, आशावाद और उच्चवर्ग के लोगों की तिकड़म और चालाकियों को बयान किया हैं। कबीलाई जीवन पर लिखा गया हिन्दी साहित्य का यह पहला उपन्यास है जो निश्चित ही अपने देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से अप्रतिम हैं।

उपन्यास में शुरू से अन्त तक लड़ाईयाँ, कत्लेआम, छुरेबाजी, बन्दूकों–रिवाल्वरों की धॉय–धॉय भालों की चौंक, आगजनी, अपहरण आदि वातावरण पूरी कृति में चित्रित हैं।

'शैलूष' में नटों के बहाने पूरी निम्नवर्गीय संवेदना के वातावरण रेशे–रेशे को अलग करे नंगी आँखों से देखने की तकलीफदेह कोशिश हैं। नटों का देशकाल व वातावरण ग्रामीण जीवन पर आधारित दर्शाया हैं, डॉ0 सिंह ने निकट से देखा है कि शाम को गाँजे की दम लगाकर आल्हा गाते नटों का वातारण कितना सुहावना होता हैं।

नटों के देशकाल एवं वातावरण को कागज पर उतारते हुए डॉ0 सिंह ने हर्ता का बीड़ा उठाया हैं। इस कोशिश में डॉ0 सिंह ने इस उपन्यास में भाषा को जीवन्त रूप दिया हैं।

भाषा को लेकर शैलूष में डॉ0 सिंह भूमिका में लिखते हैं– ''कभी लोगो ने मुझे भाषा का जादूगर कहा था। अब वह जादूगरी विलाय गयी। अब तो मैं भाषा का शैलूष हूँ।''.......[15]

नग्न से नग्न यथार्थ को भी परिस्कृत भाषा में व्यक्त करना भाषा की शक्ति तो है ही, साहित्य की उपादेयता भी हैं पर डॉ0 शिव प्रसाद सिंह जैसा स्वस्थ चिंतक कैसे भूल जाता हैं कि 'जुगद' 'हरामी' – जैसे गालियाँ और कुछ अश्लील शब्दों के प्रयोग से भाषा में पैनापन, सटीकता या आधुनिकता नहीं आती। ग्रामीण परिवेश में जोड़ने वाले शब्दों का प्रयोग किया।

“औरत”

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की प्रत्येक रचना अपने साथ एक सवाल लेकर उपस्थित होती है, जो निरन्तर पाठक के मन को उद्वेलित कर उसके मन को मथने में सक्षम होती हैं। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने देशकाल और वातावरण के आधार पर समाजशास्त्रियों और सरकारी संस्थाओं के विभिन्न तर्कों को खोखला सिद्ध कर दिया हैं जो कहते हैं, भारतीय नारी अब अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई हैं। उसे समानाधिकार मिल गये हैं। वह पुरूष के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ हैं। वर्तमान वातावरण की नारी अपनी अस्मिता को पहचानने के काबिल हो गई हैं, इतना कुछ होने के बावजूद वास्तविकता यह है कि नारी आज भी उपेक्षित हैं। नारी आज के वातावरण में भी समाज के कठोर बन्धनों में बंधी है, उसका प्रगतिशील होना, सामाजिक व्यवस्था को सहन नहीं हो पाता हैं।

भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु हैं। यह वह औरत है, जिसका चेहरा, व्यक्तित्व सरकारी आँकड़ों में दिखाई गई औरतों से भिन्न हैं। यह उपन्यास खुशफहमियों के अँधेरे में उजाले की सही किरण हैं। जिसके द्वारा पाठक वर्ग औरत के विभिन्न रूपों का वास्तविक चित्र देख सकता हैं।

औरत के मन में बनने वाले विभिन्न विचारों एवं भावनाओं को डॉ0 सिंह ने उपन्यास के माध्यम से पटाक्षेप किया हैं, जिसमें समाज के विभिन्न, औरत के ऊपर पड़ने वाले व्यवहारिक वातावरण का चित्रण मिलता हैं।

उपन्यास के आरम्भ में वातावरण एवं देशकाल औरत के अस्तित्व पर हावी हैं। नायक शिवेन्द्र हैं, जो एक समाजशास्त्री हैं, और अपने मित्र प्रेम स्वरूप के पी0एच0डी0 शोध प्रबन्ध का निर्देशक हैं। शोध प्रबन्ध भी 'नारी' विषय से

सम्बन्धित हैं। प्रेमस्वरूप चाहता हैं कि वह वातावरण और देशकाल के अनुसार गाँव–गाँव धूम कर अपनी शोध सामग्री एकत्रित करें। लेकिन डॉ0 शिवेन्द्र ऐसा नहीं चाहता हैं।

इस उपन्यास से उपन्यासकार ने कुछ मुख्य तथ्यों को प्रमाणित किया हैं। वर्तमान समय में हर काम स्वार्थ–सिद्धि का साधन बन चुका हैं– चाहे वह शोधकार्य हो, तथाकथित समाजसेवा हो या राजनीति हो। यहाँ तक कि पारिवारिक ढ़ाँचा भी निजी स्वार्थो की चक्की में पिसकर चरमरा गया हैं – और इन सब बातों से सर्वाधिक प्रभावित हैं डॉ0 सिंह।

औरत की कहानी न केवल पूर्वांचल, बल्कि समस्त भारतीय औरतों का प्रतीक हैं। इसमें उन देशों की औरतों को भी शामिल किया जा सकता हैं जिन देशों का सामाजिक ढ़ाँचा भारत के समान हैं। शिवेन्द्र अपने मित्र प्रेमस्वरूप का ग्रामीण वातावरण दिखाने के लिए गाँव लेकर आता हैं। शिवेन्द्र उसे अपने अतीत के वातावरण से परिचित करवाता हैं कि गाँव का वातावरण बहुत कीचड़ युक्त हो गया हैं, इसमें जो कोई घुस जाता हैं वह कीचड़ में फँस जाता हैं।

वर्तमान समाज का वातावरण औरत के लिए मकड़जाल बन चुका है जिसमें से वह चाहते हुए भी बाहर नहीं निकल सकती हैं।

गाँव का वातावरण पूरी तरह औरत की स्थिति और परिस्थिति के अनुरूप नहीं हैं। जिसमें उपन्यास में कई घटनाओं से देखा जा सकता हैं – "कभी उसे अबला सुखिया बनकर सुदर्शन की वासना का शिकार होना पड़ता हैं, कभी वह चन्द्रा बनकर सम्पत्ति के लालची रिश्तेदारों द्वारा प्रताड़ित की जाती हैं, कभी राजी और रौशन बनकर ससुर के षड्यन्त्रों का निशाना बनती हैं और कभी

सोनवाँ के रूप में सोबरन राय जैसे तथाकथित धर्मपिता के हाथों जीते–जी मरने जैसी स्थिति में झोंक दी जाती हैं।"......16

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का यह उपन्यास मात्र औरत की कहानी नहीं है, अपितु औरत इस उपन्यास में अपने विभिन्न रूपों में अपने अस्तित्व हेतु समाज से जूझती हैं। पात्रों का अपना एक निजी परिवेश हैं औरतों का एक अपना वातावरण हैं। आज भी औरत के मन में एक अनकहीं पीड़ा हैं। समाज के तथाकथित ठेकेदार भेड़ियों द्वारा वह बेइज्जत होती रहीं हैं

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने विविध पहलुओं, रीति, रिवाजों, वातावरण, आपसी सम्बन्धों, व्योहार, राजनीति, गँवई परिवेश, भ्रष्टचार आदि को शब्दों के माध्यम से स्वर दिया हैं।

'गली आगे मुड़ती हैं'

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का छठवाँ उपन्यास 'गली आगे मुड़ती हैं' हैं, जो स्वतंत्रता के बाद वाले वर्षो की अहम् राष्ट्रीय समस्या, युवा आक्रोश, या युवा विद्रोह के वातावरण को समर्पित हैं। एक संवेदनशील, समाजचेता कथाकार होने के नाते डॉ0 सिंह ने इस उपन्यास में अपने समय की चुनौतियों से खतरा मोल लिया हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में वातावरण आंदोलन, हड़ताल से आदि से गूँजता हैं।

'अली आगे मुड़ती हैं' का वातावरण पूरे विश्व में एक साथ धधकती हुई इस ज्वाला के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण रखते हुए साफगोई ढ़ग से उसके विभिन्न पहलुओं को न केवल सामने रखा, बल्कि पाठक वर्ग को निर्णायक स्थिति से लेकर स्वयं मौन हो गया हैं। छात्र आन्दोलन अपनी चरम स्थिति पर पहुंचकर छात्र नेताओं के नियंत्रण से उसी प्रकार निकल जाता हैं, जैसे अपनी सुविधा के जाल में फँसकर आदमी स्वयं गलत कार्य कर बैठता हैं। उपन्यास का देशकाल

एवं वातावरण 'अलग—अलग वैतरणी' से अलग हैं। उपन्यास का नायक रामानन्द जो बनारस की एक—एक गली से परिचित हैं। वहीं अन्त में जाकर किरण के दरवाजें पर से निराश मनः स्थिति में लौटते समय घूम—घूम कर भूल—भुलैयाँ में भूल जाता हैं। पूरे उपन्यास का देशकाल एवं वातावरण उत्कृष्ट हैं मूल प्रसंग के बीच से ही शाखायें—प्रशाखायें फूटती चली जाती हैं और उपन्यास का परिवेश में अद्वितीय और विलक्षण्ता को स्पष्ट करता हैं। प्रत्येक वाक्य रचना में उपन्यास के पात्रों का निजी परिवेश झलकता हैं। परन्तु प्रत्येक बिंव कही न कहीं जाकर मूल कथा से जुड़ जाता हैं।

देशकाल एवं वातावरण तथा पात्रों का निजी परिवेश की अपनी एक मौलिकता एवं श्रेष्ठता हैं। विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करने में कथाकार को अद्भुत सफलता मिली हैं। काशी में गुजराती, बंगाली, मराठी, राजस्थानी, सिंधी, मुस्लिम, बिहारी, नेपाल एवं विदेशी सभी की वेशभूषा, खान—पान, रहन—सहन, संगीत—नृत्य गीत साहित्य सबका न केवल विवेचन हुआ हैं, अपितु उनके बीच में देशकाल व वातावरण के बीच तादात्म्य स्थापित किया गया हैं।

हिन्दुओं की रामलीला, बंगालियों की दुर्गापूजा और गुजरातियों के गरबा नृत्य की योजना एक साथ की गयी है और यह महान कार्य गणेश तिवारी के वंशज रामानंद के जरिये होता है यही डॉ0 सिंह के जीवन की सबसे बड़ी सफलता और महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं।

कथाकार डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने 'गली आगे मुड़ती हैं' में न केवल वातावरण अपितु निजी परिवेश की दृष्टि से भी औपन्यासिक कला को एक नवीन मोड़ दिया हैं। उपन्यास की प्रयुक्त शब्दावली, उपमानों, लोकोक्तियों और मुहावरों का महत्व अक्षुण्य है, जो लेखक ने ग्रामीण संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए उजागर किए हैं।

काशी का वातावरण अन्य शहरों के वातावरण की अपेक्षा अलग हैं, काशी का वातावरण धर्ममय के साथ साथ पाखण्डता एवं आड़म्बर के प्रतिमानों का प्रतिनिधित्व करता हैं।

"दिल्ली दूर हैं"

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 13वीं–14वीं सदी के संघर्षपूर्ण जीवन पर दिल्ली दूर है यानी 'दिल्ली खण्ड'। उपन्यासकार ने मध्य प्रदेश व बुन्देलखण्ड के रोमांचकारी संघर्षपूर्ण इतिहास को शोध संदर्भित सार्थक परिकल्पना के रूप में वातावरण एवं देशकाल प्रस्तुत कियाहैं। इस वातावरण का विस्तार सन् 1233 से लेकर सन् 1305 तक हैं। आनन्द वाशेक के चरित्र, उसके संघर्ष, उसकी प्रेमकथाओं, मानवीय संवेदनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों का पूर्ण प्रस्फुटन 'दिल्ली दूर है' में होता हैं दिल्ली खण्ड 600 पृष्ठों का उपन्यास हैं, जो उत्तर भारत की सारी राजनीतिक गतिविधियों और सांस्कृतिक वातावरण संरचना को जीवन्तता के साथ प्रस्तुत कर देता हैं। यह दिल्ली सल्तनत की कथा, ऐतिहासिक यथार्थ की रोमांचपूर्ण गाथा हैं।

इतिहास के अनुसंधान, चरित्र की योजना, मुस्लिम सियासत के भयानक रूप, देशकाल व वातावरण सांस्कृतिक साधना तथा बिखरे हुए राष्ट्रीय संघर्ष की अंकन की दृष्टि से यह उपन्यास उच्चता के शिखर पर पहुँच गया हैं। आनन्द का अति मानवीय चरित्र, संघर्ष का बिखरना और हताशा की त्रासदी मन को ऊपर उठाकर नीचे गिरा देती हैं। हिन्दूओं का देशकाल और वातावरण मुस्लिमों के देशकाल व वातावरण से अलग हैं परन्तु डॉ0 सिंह देशकाल व वातावरण और संस्कृति की एक नंगी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, डॉ0 सिंह उपन्यास की भूमिका में लिखते है–"मैं आपके मजहब की एक खासियत का हिमायती हूँ। पुराने कदीमी जमाने के तौर–तरीकों से अपने को इतना नीचे गिरा चुके हैं कि

उन्हें पुरानी गलत मान्यताओं से बचाने के लिए पैगम्बर ने एक सीधे–सादे नैतिक धर्म का उपदेश दिया है।''.......17

''वैश्वानर''

प्राचीन काशी को आधार बनाकर लिखा गया 'वैश्वानर' उपन्यास सन् 1996 में प्रकाशित हुआ जिसका वातावरण पूर्णतया धार्मिक हैं। डॉ0 सिंह भूमिका में लिखते हैं– ''मेरी 'काशीत्रयी' संस्कृति, आचार–व्यवहार तथा सच्चे वातावरण में डूबकर लिखी गई हैं। मेरी अपनी अभीप्सा रही है कि सही काशी को, अगर देखना है, तो तीनों उपन्यासों में तीन ऐसे देशकाल चुनने होंगे, जो काशी की जनता को, समाज को पूरी तरह उथल–पुथल से ऐसा मथ दें कि सबसे निचले वर्ग के सर्वबहिस्कृत चाण्डालों और डोमों से लेकर महिमाशाली ब्राह्मण, राजन्य, महाजन और सेठो को नग्न खड़ा कर दें।''.......18

डॉ0 सिंह की त्रयी कृति को स्पष्ट करते हुए डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय लिखते हैं–'''गली आगे मुड़ती' जिसमें काशी को उसके वर्तमान में प्रस्तुत किया गया हैं। दूसरी कड़ी 'नीला चाँद' है जिसमें कथाकार ने मध्यकाल की उस काशी को उकेरना चाहा जो विदेशी आक्रांताओं के आने के पहले थी, यानी 1060 ई0 के आस–पास की काशी, तीसरे सोपान पर है प्राचीन काशी जो वैश्वनार के रूप में सामने आयी। इसमें ईसा पूर्व 1750 के आस पास के समय की काशी को दर्शाया गया हैं।''.......19

इसके वातावरण में वैदिक परम्परा को उजागर किया है और प्राचीन देशकाल का वर्णन मिलता है, जो धार्मिक और संस्कृति का मूल केन्द्र काशी हैं।

'वैश्वनार' का वातावरण बहुत वैविध्यपूर्ण है। इसका देशकाल प्राचीन वैदिक परम्परा को उजागर करता हैं। उपन्यास में कला, इतिहास, प्राचीन संस्कृति,

धार्मिकता की वैचारिकता स्पष्ट रूप से अंकित हैं। इसके अन्तर्गत कथाकार ने अपनी कला की स्पष्ट छाप छोड़ते हुए वैदिक परम्परा का आश्रय ग्रहण करते हुए धनवन्तरि की आयुर्वेदिक परम्पराओं को समेटा हैं।

उपन्यास के अन्तर्गत जीवन दर्शन भी है, जो परम्परा से चला आ रहा है वातावरण को सिद्ध करता हैं। डॉ0 सिंह ने अपेक्षित कथाओं और घटनाओं को तो लिया ही है साफ तौर पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को भी लिया हैं। पात्रों की मनः स्थितियों के भतीर भी चिंतन का स्वर दिया गया हैं। उपन्यास में चिन्तन व दर्शन का वातावरण एक अंग बनकर उभरा हैं।

प्राचीन वातावरण और देशकाल वर्तमान समय के वातावरण से तुलना करने पर आज भारत में राजन्य का मजाक बनाने वाले चोर, जुआरी, लंपट, आततायी ही बढ़े हैं। अत्याचारी और बर्बर को मिटाने वाले क्षत्रियों के विनाश से समाज में अराजकता बढ़ी।

'वैश्वानर' के विराट तथा लघु दोनों रूपों की एकात्मकता का निर्दशन है जिसका अर्थ है लोक–मंगल। मन में 'वैश्वानर' के ज्ञान प्रकाश का दर्शन, जो संघः उदित बाल रवि की घुति के सदृश हैं।

''कुहरे में युद्ध''

'कुहरे में युद्ध' 1993 प्रकाशित ऐतिहासिक कृति हैं। मध्यकाल से लेकर आजादी पूर्व तक का भारतीय इतिहास का वातावरण ऊथल–पुथल युक्त रहा। 'कुहरे में युद्ध' के द्वारा डॉ0 सिंह ने ऐतिहासिक वातावरण के माध्यम से आज के वातावरण को समझने और समझाने का प्रयास किया हैं। आनन्द वाशेक कथानायक है और अन्त तक यह चरित्र छाया रहता हैं। वह उद्‌भट योद्धा, पराक्रमी, विद्वान, दूरदर्शी कलाकार और सर्वोपरि मानवीय गुणों से सम्पन्न हैं।

पूरे उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण और देशकाल का वर्णन मिलता हैं। उपन्यासकार ने भूमिका में लिखा हैं– " इतिहास में लौटना प्रतिगामिता है और ऐसा करने वाले वर्तमान से टकराने में कतराते हैं। तब तो बहस का सवाल ही नहीं हैं। आज यदि विश्व के साहित्य को देखें तो अतीत की ओर दौड़ आपको हतप्रत कर देगी।..........आज के तथा कथित आधुनिक मूल्यों की कशमकश से घबराकर लोग ऐसे चरित्रों को ढूढ़ रहे हैं जो अतीत के होते हुए भी वर्तमान के आदर्श हैं।''..........[20]

'कुहरे में युद्ध' का वातावरण आरम्भ से अन्त तक युद्ध की विभीषिका में जलता रहता हैं। राजनैतिक वातावरण, सामाजिक वातावरण और धार्मिक वातावरण को जिस प्रकार चित्रित किया गया है वह लेखक द्वारा थोपा गया यथार्थ नहीं है, बल्कि वह इतना सहज है कि पाठक के लिए इतिहास के गर्भ से उद्भूत आज से वर्तमान का सत्य प्रतीत होता हैं।

डॉ0 सिंह का कर्तव्य ऐतिहासिक वातावरण की उन महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों को एक विशेष दृष्टि देना होता हैं जो इतिहास के देशकाल को सन्दर्भगत रखते हुए वर्तमान के लिये संदेश हों। शायद इसीलिए युद्ध की बिभीषिका में झुलसती जुझौती के वातावरण के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने वाले वाशेक को कहना पड़ता हैं– "मानव ने मानव के विनाश के लिए अस्त्रों–शस्त्रों के क्षेत्र में जितना विकास किया है उतना ही अगर मानव के बीच निःस्वार्थ प्रेम के लिए करता तो अब तक यह जगत स्वर्ग हो जाता।''.....[21]

वास्तव में मध्यकाल के वातावरण में हो रही उथल–पुथल युद्ध संघर्ष दो जातियों से कहीं अधिक दो संस्कृतियों के लिए था। अपने सांस्कृतिक व धार्मिक वातावरण की रक्षा के लिए शासक या उच्च वर्ग चिंतित और सक्रिय था।

वाशेक जानता था कि आदिवासियों की सहायता लिये बिना तयासी की विशाल सेना को मुट्ठी भर सेना के बल पर परास्त नहीं किया जा सकता।

डॉ० सिंह पूरे उपन्यास के वातावरण में कहीं भी तत्कालीन सामाजिक संरचना के अंग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्य आदि में से किसी के भी प्रति अपनी संकुचित दृष्टि का परिचय नहीं देते हैं। निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि डॉ० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में देशकाल एवं वातावरण एक जैसा नहीं हैं। कहीं सांस्कृतिक वातावरण तो कहीं राजनीतिक वातावरण, धार्मिक वातावरण, सामाजिक वातावरण कायम हैं। डॉ० आनन्द कुमार पाण्डेय लिखते हैं–''शिवप्रसाद जी के उपन्यासों का पैटर्न या ढ़ाँचा अलग–अलग वातावरण पर आधारित है इसीलिए उनके सभी उपन्यास अलग–अलग देशकाल पर आधारित हैं, उपन्यास सारी कलाओं से सम्बन्धित हैं।''......[22]

सामाजिक वातावरण के अनेक सम्बन्धों को लेकर चलने वाले डॉ० सिंह ने बड़ी चतुराई से चित्रित किया हैं। जिसमें 'अलग–अलग वैतरणी' का वातावरण साक्षी हैं। डॉ० सिंह लिखते हैं– ''मेरी जिन्दगी में गाँव का वातावरण एक ऐसी हकीकत है जिसे मैं चाहकर भी नहीं काट सकता हैं।''....[23]

2. पात्रों का निजी–परिवेश : पात्रों की मनः स्थिति का बिंब – प्रतिबिंब भाव

प्रेमचन्द्र के उपन्यासों के उपरान्त (आधुनिक काल) में उपन्यास के तत्वों में परिवेश की प्रधानता दी जा रही हैं। डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार– "उपन्यास में अब उपलब्धियों के स्थान पर परिवेश की संभावनाएं अधिक रहती हैं। इसमें अनुभूति की प्रमाणिकता और परिवेश की प्रधानता खोजी जाती है न कि कथानक और चरित्रचित्रण की प्रधानता।"......[24] डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यास में एक संवेदनात्मक सत्य व्यक्त किया हैं, जो व्यक्तिमूलक होते हुए भी समष्टिमूलक पद प्राप्त कर अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं। स्पष्ट है कि आधुनिक काल में परिवेश के माध्यम से डॉ0 सिंह ने मानवीय जीवन और चरित्र का यथार्थ प्रस्तुत किया हैं।

बृहद हिन्दी कोश के अनुसार परिवेश का अर्थ – "घेरना, परिधि, करने वाली वस्तु आदि (आवेस्तिव) आकर्षक।"......[25]

अतएवं परिवेश को शब्दों में बाँधकर परिभाषित करना कठिन कार्य हैं। मनुष्य के जीवन और उसकी जीवन स्थितियों को प्रभावित करने वाले सारे तत्व मिलकर परिवेश का निर्माण करते हैं।

आज परिवेश शब्द स्थूल संसार का ही यथार्थ नहीं, सूक्ष्म जगत के चिन्तन से भी सम्बन्धित माना जाता हैं। आज परिवेश में बाह्य वातावरण ही नहीं आता बल्कि उसके साथ वह मानसिकता भी उभरती हैं जो उस वातावरण की ही उपज हैं। अतः मानसिकता के संदर्भ में डॉ0 आदित्य प्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं–हम उस मानसिकता के साथ जुड़े होते हैं, ज्ञान, अनुभव, संवेदना, विचार, चिन्तन आदि। सारे बोधात्मक स्तर साहित्य का चैतन्य, इसी स्तर पर परिवेश के

बाह्य स्वरूप को आत्मसात कर उसे बोधात्मक बनाकर पेश करता हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया हैं, जिसका उद्घाटन बोध के आधुनिक तकनीक के सन्दर्भ में हुआ हैं।''.........[26] डॉ0 चन्द्र के अनुसार – ''साहित्य की मूल चेतना परिवेशों में पहली है यही योजना साहित्यकार के व्यक्तित्व में प्रतिघटित होकर उसके साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व परिवेशों की व्यंजना होता है और उसका साहित्य इस व्यंजना की पुनराभिव्यंजना अतः परिवेशों एवं परिस्थितियों का अध्ययन मूल रूप से सृजन प्रक्रियाओं का अध्ययन होता हैं।''.........[27] इस तरह साहित्यकार परिवेशों से प्रेरणा पाता हैं। वह परिवेश प्राकृतिक, सामाजिक, भौतिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक आदि का समन्वित रूप प्राप्त करता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने वर्तमान साहित्य में नगर और गाँव के अछूते अंचलों के जीवन को परिवेश के माध्यम से साकार किया हैं। साहित्य में परिवेश में कहाँ तक अंतर्भूत किया जाये, दूसरी कोई सीमा नहीं हैं। विषयवस्तु के अनुसार गाँव से लेकर पूरा देश, राष्ट्र या युग का परिवेश वस्तु का अंग बन जाता हैं। डॉ0 सिंह ने ग्रामीण संस्कृति के सम्पूर्ण परिवेश से प्रभावित होकर उसे अपनी रचनात्मकता के द्वारा चित्रित किया हैं।

डॉ0 सिंह ने अपने समसमायिक परिवेश को उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया हैं। डॉ0 सिंह का बचपन गाँव के परिवेश में गुजरा है उन्होंने बचपन में ही गरीबी, दीन विवशताएँ देखी हैं। उस परिवेश को देखा हैं, और अनुभव किया हैं। उन्होनें बनारस की शहरी परिवेश व्यतीत किया हैं। डॉ. सिंह के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश के साथ शहरी परिवेश का यथार्थ भी प्रस्तुत हुआ है। उनके उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, चिकित्सकीय, औद्योगिक शहरी एवं ग्रामीण दृष्टि से परिवेश की विविधता दिखाई देती हैं।

डॉ0 सिंह ने व्यक्ति और समाज तथा उनके आपसी सम्बन्धों की नयी जीवनदृष्टि के आलोक में अन्वेषण किया हैं। उन्होंने मानव–चरित्र के भीतर छिपी वास्तविकता को परिवेश के माध्यम से उजागर किया हैं।

डॉ0 धनंजय परिवेश और रचना का सम्बन्ध बताते हुए लिखते हैं– "मनुष्य द्वारा जीने के लिए किया जाता संघर्ष रचना में किस हद तक वास्तविक हैं, इसे साबित करने के लिए हर समर्थ लेखक जीवन और रचना को परिवेश से जोड़कर, दायित्व और रचना धर्म का निर्वाह करता हैं।"........[28]

प्राकृतिक परिवेश

उपन्यासों में प्रकृति का चित्रण उनके प्रकारों से किया जाता हैं– आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, उपमान रूप में, मानवीकरण के रूप में, प्रतीक रूप में, अन्योक्ति रूप में आदि। डॉ0 सिंह ने विभिन्न उपन्यासों में प्रकृति के विभिन्न रूपों और उपादानों को प्रस्तुत किया है, वर्षा, नदी, पर्वत, खेत, बगीचों, खलिहानो, घाटी, पर्वत, ताल–तलैयाँ, चन्द्रमा की चाँदनी, सूर्य की किरणे, प्रातःकाल, सायंकाल, गोधूलि बेला आदि का चित्रण उपरोक्त रूपों में डॉ0 सिंह ने कभी किसी स्थिति विशेष को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्राकृतिक स्थिति या बाह्य दृश्यों का विधान किया हैं। उपन्यासों में मानवीय रागों और संवेदना से प्रकृति चित्रण दिखाया है। अलग–अलग बैतरणी, शैलूष तथा गली आगे मुड़ती हैं, में प्रकृति को सजीव रूप में उपस्थित किया गया हैं।

डॉ0 सिंह ने प्रकृति को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। डॉ0 सिंह 'अलग–अलग वैतरणी' में करैता गाँव के माध्यम से भारतीय गाँव की पहचान हैं, प्रेमचन्द्र के बाद हिन्दी साहित्य में ग्रामीण पात्र व परिवेश लगभग खो–से गये थें। डॉ0 शिव प्रसाद सिंह इसे वहीं से शुरू करते हैं और अपने समय तक ले आतें हैं। इसके दौरान आते बदलावों से उपजी वांछित –अवांछित स्थितियाँ और

इनसे निर्मित होता हैं, जीवन–संभार समग्र यथार्थतिक आयामों के साथ अपनी सम्पूर्णता में उभर सका हैं। इस वैतरणी का प्रवाह अपने पात्रों की निरंतर गतिमयता का साक्षी हैं। डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा लिखते हैं – "अलग–अलग वैतरणी का परिवेश गत्यात्मक परिवेश है– सतत् परिवर्तित होता हुआ। आजादी के पूर्व की जमींदारी व्यवस्था से परिचालित ग्राम जीवन कथा की पृष्ठभूमि हैं, जिस पर लेखक ने स्वतंत्रता प्राप्ति व जमींदारी–उन्मूलन के बाद ग्रामीण जिन्दगीं का यथार्थतिक चित्रण प्रस्तुत किया हैं। इसके दौरान टूटती सांमतवादी धारणाओं और संस्कारों के साथ टूटती ग्राम–व्यवस्था की संस्थाओं तथा जनतंत्र के प्रयोगों के बीच जो तनाव हैं, उसे लेखक ने वातावरण परिवेश के माध्यम से व्यक्ति किया हैं।".....[29]

'अलग–अलग वैतरणी' में पात्रों का प्राकृतिक परिवेश सजीवता से देखा जा सकता हैं। शाम के वातावरण में ग्रामीण पात्रों के परिवेश व मनः स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ0 सिंह लिखते हैं– "वातावरण शान्त हो गया था। गोधूलि बेला की अकुलाहट और धूमिलता अंधेरे में धुल गयी थी। शाम की खुरमई रोशनी बुझ रही थीं। उसका स्थान रात की कालिमा लेने लगी थी।......................
...........ठाकुर के चबूतरे पर शाम को रोज ही जमावड़ा होता हैं। तरह तरह के लोग यहाँ बैठते हैं।".......[30] मास्टर शशिकान्त बच्चों की मनः स्थिति को समझते हुए कहते हैं–"किसी चीज के न मिलने पर निराश होकर हारो मत। अपनी कठिनाई बड़ो से कहो। मुझसे कहो। उत्साह से अपने काम में लगे रहो।"........[31]

'अलग–अलग वैतरणी' में पुष्पा की मनः स्थिति परेशान है अपने पारिवारिक कलह से। "पुष्पी को रात भर नींद नहीं आयी। बुझारत सिंह को विपिन ने सीपिया नाले में ढकेल दिया। उसका सिर फट गया। वहाँ सुरजू और सीरी भी पहुँच गये थे। ये खबरें बारी–बारी से उसके पास पहुँचती रहीं। इन खबरों का सिलसिला पुष्पी के मन पर सिलाई की मशीन की तरह बखिया मारता रहा,

किन्तु यह एक अजीब सिलाई थी, जिसमें एक परत पर जो सबके सामने थी, बुनावट कुछ थी और दूसरी परत पर जो आँखों से ओझल थी, बुनावट कुछ और थीं।''.........[32]

''औरत'' उपन्यास में भी प्राकृतिक परिवेश का उदय होता हैं। जिसमें डॉ0 सिंह ने शिवेन्द्र के शब्दों से कहलवाया है–'' मैं गाँव से निकल कर जब चला। अभी केवल उजास फूटा था, सूरज की मैड़र अभी बनी नहीं थी।कुछ देर में इसी झुटपुटे उजास से लाल सिंदूरी सूरज निकलेगा।''.........[33]

सामाजिक परिवेश

स्वातंत्रोत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश में बहुआयामी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। शिक्षा और नये विचारों के प्रचार ने युवापीढ़ी को प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के लिए प्रेरित किया हैं। पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, साहित्य का बहुत प्रभाव भारतीय जीवन पर पड़ता हैं। उससे लाभ भी हुए तो कुछ हानियाँ भी झेलनी पड़ी। एक ओर उसने हमारे समाज की कुरीतियों, अन्धविश्वास और रूढ़ परम्पराओं का विरोध किया तो दूसरी ओर भारतीय जीवन के अनुकूल न होने वाले विश्वास मान्यताएँ बढ़ती गयी हैं। स्वतंत्रता के बाद बदलते सामाजिक परिवेश में खान–पान, जीविकोपार्जन के साधन, यौन सम्बन्धी, नैतिकता, रूढ़ियों–परम्पराओं का त्याग, वर्ण–व्यवस्था प्रेम तथा विवाह के जातिगत बंधन टूटने लगें। औद्योगिक विकास के साथ जीवन जटिल बनता गया। जीवन की व्यस्तता बढ़ती गयी।

डॉ0 सिंह ग्रामीण और शहरी समाज में, महँगाई, बेकारी, भाई–भतीजावाद, सामाजिक कुप्रथाओं से त्रस्त हैं। देश में युवा, आक्रोश व्यक्ति स्वातंत्रता की जिद, पारिवारिक सामाजिक अत्याचार, दहेज–प्रथा, वेश्या समस्या आदि कतिपय समस्याओं से समाज–त्रस्त हैं।

डॉ0 सिंह ने सामाजिक जीवन को साहित्य में विधाओं द्वारा प्रस्तुत किया हैं। उपन्यासों में समाज के विभिन्न क्षेत्रों के स्त्री–पुरूष, सम्बन्धों, पिता–पुत्री सम्बन्धो, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, कर्म, राष्ट्र, अर्धदशा, पारिवारिक दशा, सामाजिक दशा, युवा आक्रोश, पारिवारिक–सामाजिक मतभेद, अत्याचार आदि कतिपय समस्याओं को व्यक्त किया हैं।

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश के बारे में डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते हैं – ''समाजवादी उपन्यास में सदैव सामान्य पिसी हुई जनता और जीवन की नवीन युक्तियों के प्रति सहानुभूति तथा उन्हें स्थापित करने का भाव तथा परोपजीवी असंगतियों से प्राप्त झूठी शान से गर्वीले लोग और सड़ी गली प्राचीन जिन्दगीं के ठेकेदारों के प्रति कठोर आक्रोस दिखाई पड़ता हैं।''......[34]

सामाजिक परिवेश की गत्यात्मकता गाँवों में आती नित्य प्रति की गिरावट का साक्ष्य प्रस्तुत करने में हैं। इसका सीधा–सम्बन्ध ग्रामीण व्यवस्था से हैं, जो पहले जमींदार के अधीन थी और उसके बाद पंचायतों के जिम्मे आ गयी।

'अलग–अलग वैतरणी' मे सामाजिक रूढ़ियाँ विस्तृत रूप में चिन्हित हुई है पर यहाँ इसके संकेत मात्र दे रहे हैं ''शादी के बाद जग्गन मिसिर के भाई बैजू की जल्दी ही मृत्यु हो जाने पर करैता की लुगाईयाँ भुनभुनाती है कि शादी सही नहीं''......[35] ''नजर लगाना''......[36] ''अपशकुन काढ़ना''......[37] सुबह ही मुँह देखने के वाँछित अवांछित असर पडना''......[38] 'अलग–अलग वैतरणी' में पात्रों की मनः स्थिति भी कुछ सामाजिक परिवेश के अनुसार होती नजर आती हैं खलील मियाँ अपनी मानसिक बिंब प्रस्तुत करते हैं– ''अब तुम्हें क्या–क्या सुनाये बेटा? यह खलील मियाँ की जिन्दगी की सबसे बड़ी हार है। इसने तो जैसे हर चीज के भीतर से मेरे ईमान और इंसानियत को झकझोर कर अलग कर दिया।''......[39]

''शैलूष'' में जुड़ावन के परिवार की मनः स्थिति का बिंब स्पष्ट दिखाई देता है–''दो दिन बीत गये। जुड़ावन के घर रोटी नहीं बनी। बहुत समझाने–बुझाने पर मुकुल ने भैंस का दूध पिया, बाकी लोग निर्जला एकादशी मनाते रहें।''.......[40]

औरत कृति में सब–इंसपेक्टर शुक्ला और प्रतिभा बंसल के शब्दों में सामाजिक परिवेश का बिंब स्पष्ट झलकता है – ''करमूपुरा क्षेत्र के आप तमाम लोगो को मैं नमस्कार करती हूँ। मैं देख रहीं हूँ कि यहाँ सभी बुर्जुग लोग हैं। आपके सामने मैं आपकी बेटी की तरह आई हूँ।''.......[41]

'गली आगे मुड़ती है' में हरिमंगल एक सामाजिक प्राणी होने के नाते लाजो से कहता है–''जमाना बड़ा खराब हैं। किसका विश्वास करें, किसका न करें, कुछ समझ में नहीं आता।''.......[42]

ग्रामीण परिवेश

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का आरम्भिक जीवन गाँव में ही बीता है, इसलिए गाँव की समस्याओं से भली भाँति परिचित हैं। उनके उपन्यास 'अलग–अलग वैतरणी', 'गली आगे मुड़ती है' तथा 'शैलूष' में ग्रामीण तथा 'शहरी परिवेश' की विसंगतियों और विपदाओं को अंकित किया हैं। डॉ0 सिंह के उपन्यास ग्रामीण परिवेश को लेकर सजग और यथार्थ को जीवन्त चित्रित करते हैं।

गाँव में अशिक्षा और निर्धनता की जड़ में शोषकों, सामन्तों और साहूकारों के षड़यन्त्र हैं। गाँव से शहर तक बिखरे ये वर्ग फिर भी एक बात पर सहमत है कि किसान ही इनका शिकार है, इसमें जमींदार, साहूकार, ठेकेदार, व्यापारी, सरकारी अधिकारी आदि द्वारा ग्रामीण किसानों एवं मजदूर वर्ग का शोषण किया हैं, हमेशा सामन्ती एवं उच्चवर्ग ने निम्नवर्ग पर कई प्रकार के अत्याचार और अनाचार किये हैं। उसका वर्णन 'शैलूष' नामक उपन्यास में है जो गाँव के

वातावरण को प्रस्तुत करते हैं। "पोखरे के मटमैले पानी में भैंसे मड़िया मारे बैठी थीं। सुन्दर नट की बत्तखे लहरों पर तैर रहीं थीं।"......43

'अलग–अलग वैतरणी' में ग्रामीण परिवेश और पात्रों की मनः स्थिति का बिंब स्पष्ट झलकता हैं। "गाय–बैल बदन ढ़ीला किये कानों को लटका कर जुगाली शुरू कर देते। सौधी गंध से हवा सुवासित हो जाती है। गाँव की गन्दी–गलियाँ, घूसर पेड़ो के पत्ते, गर्द भरे पशुओं के तन लू से मटमैली बनी खपरैलें, सभी धूल–पूँछकर कैसी टटकी और ताजी लगने लगती थीं।"......44 स्पष्ट है कि सामन्त उच्चता को दिखाते हुये भोली–भाली जनता का उच्च वर्ग आसानी से शोषण करता हैं। 'शैलूष' में सामन्तवाद, जातिप्रथा, ऊँच–नीच का भेद आदि संघर्ष के मुद्दे हैं। जो आज की उच्चवर्ग और निम्न वर्ग में खाई हैं।

गाँव के परिवेश में सभी समस्याओं का निर्माण होने का एक कारण जनसंख्या वृद्धि हैं। दिनों–दिन बढ़ती जनसंख्या को रोकेने के लिए गाँव के लोग कम जागरूक हैं, उन्हें उसका पूरा ज्ञान नहीं हैं। जनसंख्या बढ़ रही हैं। नीला चाँद और अलग–अलग वैतरणी में भ्रष्टाचार और अनाचार को प्रदर्शित किया गया हैं। गाँव में स्त्री जीवन की दासता का वर्णन डॉ0 सिंह ने शैलूष में किया है गाँव का परिवेश विशेष अवसर पर इस प्रकार डॉ0 सिंह ने चित्रित किया है– "आज वांसतिक नवरात्र की सातवीं रात थी। सत्ती मइया के पोखरे से सटे मैदान पर बहुत बड़ा तंबू लगा था। नीचे दरियाँ बिछी थी। तंबू के चारो ओर कनाते लगी थी कि बिन बुलाये लोग घुस न पाये।"......45

'औरत' नामक उपन्यास में नारी का व्यक्तित्व और उसकी समस्याओं को व्यक्त किया गया हैं। नारी की ग्रामीण परिवेश में स्थिति बहुत दयनीय है। नारी का मानसिक तथा शारीरिक शोषण आज भी जारी हैं। सदियों से औरत का शोषण हुआ है जिसकों पुरूष वर्ग ने दासत्व बनाकर रखा है, लेकिन आज वर्तमान युग

में नारी एक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आयी हैं जो अपने एक परिवेश का निर्माण भी करती हैं।

शहरी परिवेश

शहरीकरण का सम्बन्ध केवल औद्योगीकरण से नहीं हैं। आधुनिक शहरों में सुविधा सम्पन्न साधनों को एक जगह केन्द्रित किया गया हैं। उसी प्रकार देहातों से लोगो को जीविकापार्जन के लिए शहर खींच लातें हैं। स्वतंत्रोत्तर काल में शहरों की ओर लोगो का आकर्षण सभी दृष्टि से बढ़ा हैं। इसलिए शहरों में भीड़ ही भीड़ नजर आती हैं। 'वेश्वानर' उपन्यास में काशी के शहरी परिवेश का चित्रण हुआ हैं। छोटे तथा बड़े शहरों में मानव का जीवन विभिन्न प्रकार की संघर्षमयी गतिविधियों में शामिल हैं। यहाँ गति ही जीवन हैं रूकने का नाम पिछड़ापन हैं। इनमें आत्मीयता, आपसीपन, भ्रातत्व, पड़ौसीपन तथा नैतिकता, के बिन्दु ढूढ़ना हैं। काशी का जीवन स्तर, रहन–सहन, आचरण, सोच–विचार, जीवन–मूल्यों आदि का प्रभाव 'वैश्वानर' के पात्रों की मनः स्थिति पर पड़ता हैं। काशी आदिकाल से शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, कला, धर्म, इतिहास आदि का केन्द्र रहा हैं। काशी शहर में आज का परिवेश बिल्कुल बदला हुआ दिखाई देता है, जहाँ उद्योग और व्यापार का विकास भी दिखाई देता हैं।

डॉ0 सिंह के 'वैश्वानर', 'दिल्ली दूर है', 'नीला चाँद', 'कुहरे में युद्ध', 'गली आगे मुड़ती है', 'मंजूशिमा' आदि उपन्यासों में शहरी परिवेश परिलक्षित हैं। 'गली आगे मुड़ती है' में बक्कड़ गुरू शहरी परिवेश का बिंब प्रस्तुत करते हुए कहते हैं– "यह कैंटूमेंट एरिया हैं। यहाँ अक्सर मिलिट्री के बड़े–बड़े अफसर आते हैं। उन्हें इन्टरटेन करना तुम लोगो का काम होगा।"......[46]

साहित्यकार जिस परिवेश में रहकर अनुभूति पाता हैं, उस परिवेश की विषयवस्तु और पात्रों के चरित्र के निर्माण द्वारा स्वाभाविक अभिव्यक्ति करना परिवेश का

साहित्य में औचित्यपूर्ण प्रयोग है। डॉ0 सिंह ने साहित्य में परिवेश चित्रण बहुविध रूपों में पाया है। परिवेश में पात्रों का चयन पृष्ठभूमि के आधार पर किया है। परिवेश के माध्यम से ही पात्रों की मानसिकता को उजागर किया हैं।

डॉ0 सिंह के उपन्यास साहित्य के परिवेश और पात्रों का आधुनिक परिवेश से तुलना करतें हुये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विचार व्यक्त करते हुए कहते है–"आधुनिकता एक समग्र ऐतिहासिक दृष्टि है जो अपने समय के जीवन को देश और काल के सही परिप्रेक्ष्य में देख सकती हैं।"......[47]

नये दौर के उपन्यासों में कुछ खास विशेषताओं में से एक यह परिवेश भी है जो इस पुराने दौर के उपन्यासों से अलग है जैसे मंजूश्मिा। डॉ0 सुरेश सिन्हा कहते हैं– "पुराने दौर में जहाँ व्यक्ति और समाज को अपने आप में देखने की प्रवृत्ति वर्तमान थीं, वही आज उसे उसके परिवेश में देखने और मूल्यांकित करने की प्रवृत्ति व्याप्त है।"......[48] उपन्यास की कहानी पात्रों के मनः स्थिति पर और उपन्यासकार पर निर्भर रहती हैं–"फिर नयी कहानी तो व्यक्ति के माध्यम से परिवेश और परिवेश के माध्यम से व्यक्ति को पाने की प्रक्रिया है।"......[49]

"मनुष्य के जीवन में बिम्व विधान अथवा कल्पना का बड़ा महत्व होता है। प्रस्तुत परिवेश के संवेदनो और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने वाली वस्तुओं व घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी का पर्याय हैं।"......[50] प्रतीक की सांकेतिकता को निकालकर चित्रात्मक भावमयता और गोपित अदृश्य की जगह मूर्तन की समग्रता को रखकर उसे संक्षिप्त कर दिया जाये तो बिम्ब की स्थिति बनती हैं। बिम्ब में ऐन्द्रियग्राहकता होती हैं। वह पात्रों की मनः स्थिति से जुड़ा रहता हैं। जब यह बिना चेतन प्रयत्न के कर्ता की अनुभव समृद्धि और साधना के फलस्वरूप अनायास उदित हो जाता हैं तो ही इसका सहज मौलिक रूप दृष्टिगोचर होता हैं। 'गली आगे मुड़ती है' में बिम्व रामानन्द के सोचने की

प्रक्रिया के दौरान आता है–"रामानन्द के भीतर कुछ भँवर जैसा घुमड़ा। लहरें तेज होती गयी। जल भौरी को चीरकर एक आदमी बाहर आया।"......51

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में कई बिम्ब पात्रों के माध्यम प्रयुक्त हुए हैं। प्राय: ऐसे चित्रात्मक बिम्ब प्रमुख रूप से आते हैं जो स्मृति में आये या सामने दिखते व्यक्ति दृश्य, घटना, क्रिया, हाव–भाव आदि को स्थिर या गतिशील दोनों रूपों में हू–ब–हू प्रत्यक्ष कर देते हैं। उदाहरण के लिए दयाल महराज की स्मृति के उभरता जैपाल का स्वरूप –"ऊ गोरा भीषण शरीर, दपदप मलमती साफा...... ......वह मुठिया गलमोच्छे, काले–काले जामुन की तरह। पीछे–पीछे गोबरधना चलता था, बन्दूक लिये।"......52

'अलग–अलग वैतरणी' में पात्रों के बिम्बात्मक चित्र उपस्थित हुए हैं। इन स्थिर चित्रों के अलावा रज्जब का गतिशील चित्र भी बिम्बात्मक प्रस्तुति है–"वही गोरा चिट्ठा शरीर, वहीं कसी देह। अब वहाँ बचपन की मुलायमियत न थी, लोआ, पोआ शरीर न था, एक दूसरा ही रंग था। कसावट भी चलवे मछली की पीठ की तरह चिकनापन था, शोखी थी। गाढ़े का लम्बा झूलता हुआ कुर्ता और मऊ की चारखाने की तहमत। ऊपरी गर्दन पर गंगा के कछार की मिट्टी थी।"........53

सम्पूर्ण व्यक्ति चित्र के अलावा शरीर के किसी एक अंग का बिम्बपरक चित्र भी सुलभ हैं–"गोरे चंपई रंग के बीच हल्की कलिमा लिए ललछौहें गदराये वक्ष, उसकी आँखों में अजीब उदासी भरी वेदना जगा जाते हैं।"........54

व्यक्तियों की मुद्राओं को भी बिम्बों में 'स्टिल' कर लिया गया है–करैता के मेले में बिरहा गाते रामदास की मुद्रा का बिम्बात्मक चित्र देखें– "दसों नहों को जोड़कर गुरू का सुमिरन करके, अपने बारह अंगुल के लम्बे बालो को अंगूठी के नंगो के पीछे उलटकर।"......55

'गली आगे मुड़ती है' में मुख्य नायक की मनः स्थिति कुछ ऐसी होती है। वह नागर के घर सांत्वना देने पहुंचता हैं–"नागर के घर की रौनक का रामनंद को दमघोंटू लगना।"......56

3. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'काव्य के रूप' बाबू गुलाबराय, पृ0 175
2. साहित्यालोचन, बाबू श्यामसुन्दर दास पृ0 17
3. 'काव्य के रूप' बाबू गुलाबराय, पृ0 176
4. 'काव्य के रूप' बाबू गुलाबराय, पृ0 177
5. उपन्यास में कथा–शिल्प का विकास, डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन पृ0 88
6. 'वैतरणी' से ....'वैश्वानर' तक की यात्रा, डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय, पृ0 35
7. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 10
8. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 45
9. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 83
10. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 341
11. 'नीला चाँद' भूमिका, पृ0 1
12. 'तारा पथ' नौका बिहार, सुमित्रानन्दन पंत पृ0 116
13. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 19
14. 'मंजूशिमा', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 32
15. 'शैलूष', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, भूमिका पृ0 16
16. 'औरत', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 136
17. 'वैतरणी' से ....'वैश्वानर' तक की यात्रा, डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय, पृ0 136
18. 'वैश्वनार', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, भूमिका पृ0 2
19. 'वैतरणी' से ....'वैश्वानर' तक की यात्रा, डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय, पृ0 67
20. 'कुहरे में युद्ध', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, भूमिका
21. 'कुहरे में युद्ध', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 270–271

22. 'वैतरणी' से ....'वैश्वानर' तक की यात्रा, डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय, पृ0 151

23. मेरी प्रिय कहानी, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, भूमिका

24. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय पृ0 38

25. 'वृहद हिन्दी कोश' (भाग–1) सम्पादक कालिका प्रसाद पृ0 90

26. औपन्यासिकः समीक्षा और समीक्षाएँ, डॉ0 आदित्य प्रसाद त्रिपाठी पृ0 40

27. संक्षिप्त बिहारी का काव्य, डॉ0 चन्द्र, पृ0 13

28. आग की हिन्दी कहानी, डॉ0 धनंजय, पृ0 60

29. ज्ञानोदय, फरवरी, 1968, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृव 142

30. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 98

31. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 139

32. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 291

33. 'औरत', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 43

34. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर यात्रा, डॉ0 रादरश मिश्र पृव 132

35. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 297

36. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 321

37. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 178

38. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 515

39. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 194

40. 'शैलूष', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 62

41. 'औरत', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 48

42. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 98

43. 'शैलूष', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 18

44. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 111

45. 'शैलूष', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 72

46. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 153

47. 'कल्पना'–अंक 197 में छपी 'सेतु' की गोष्ठी की रिपोर्ट के आधार पर
48. नई कहानी की मूल संवेदना–श्री सुरेश सिन्हा, पृ0 39
49. नई कहानी : स्वरूप और संवेदना , राजेन्द्र यादव पृ0 44
50. साहित्य कोश – सम्पादक डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 558
51. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 195
52. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 28
53. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 141
54. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 205
55. 'अलग–अलग वैतरणी', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 216
56. 'गली आगे मुड़ती है', डॉ0 शिव प्रसाद सिंह, पृ0 73

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का शैली-शिल्प

१. उपन्यासों में शैलीगत विभिन्नताएँ

२. शैलीगत वैशिष्ट्य विविध शैली-रूप एवं शैली शिल्प

  १. अलग-अलग वैतरणी

  २. नीला चाँद

  ३. मंजूशिमा

  ४. शैलूष

  ५. औरत

  ६. गली आगे मुड़ती है

  ७. दिल्ली दूर है

  ८. वैश्वानर

  ९. कुहरे में युद्ध

३. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

षष्ठ अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का शैली–शिल्प

1. उपन्यासों में शैलीगत विभिन्नताएँ :

साहित्यकार का विषय–क्षेत्र जितना ही विस्तृत होगा, उसके रूप और शैलियाँ तथा उसके शैली शिल्प में उतना ही अधिक वैविध्य होगा।

शैली शब्द आजकल अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' के हिन्दी पर्याय के रूप में प्रचलित हैं, अतः शैली शब्द Style का मूल अर्थ डॉ0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार–" स्टाइल शब्द भारोपीय परिवार की भाषाओं में, अपने मूल रूप में काफी पुराना है। अवेस्ता में 'स्टएर' (Steaera = पर्वत–शीर्ष), ग्रीक में 'स्टाइलोस' (Stylos = स्तम्भ), तथा लैटिन में 'स्टाइलुस' (stilus) आदि रूपों में देखा जा सकता हैं।"........[1]

❋ ❋ ❋

डॉ0 विद्यानिवास मिश्र के अनुसार–"अग्रेंजी शब्द स्टाइल 'Style' रीति शब्द का पर्याय हैं।"........[2]

❋ ❋ ❋

शैली को रीति की संज्ञा देते हुए डॉ0 मिश्र लिखते है–"शैली का प्रयोग प्राचीन भारतीय वाङ्मय में साहित्येतर विधाओं के सन्दर्भ में प्रादेशिक विशेषताओं को बतलाने के लिए हुआ है, या किसी व्यक्ति की साहित्यिक अभिव्यक्ति की विशेषताओं को जताने के लिये, आधुनिक समीक्षा साहित्य में हुआ हैं।"........[3]

❋ ❋ ❋

'शैली' शब्द के मूल में 'शील' शब्द है, जिसका प्रयोग वैदिक का में ही होने लगा था डॉ0 तिवारी लिखते हैं–"माध्यंदिन संहिता (30–40) में 'शील' देवता विशेष हैं, जिनका मेध्य आंजनी विद्या हैं।"......[04]

इस विधा में 'लीपना', 'आंजना' तथा पॉलिश करना आदि का आना 'शील' शब्द को अर्थ के स्तर पर शैली के काफी निकट ला देता है।

शैली 'शब्द' के अर्थ में यदि और पहले नहीं तो कम से कम दूसरी सदी ई0 पू0 में अवश्य प्रयुक्त होने लगा था। पंतजलि लिखते हैं–"एषा हि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते।".......05

❋ ❋ ❋

शैली पर प्रदीपकार कय्यट कहते है–"शीले स्वभावेभवा वृत्तिः शैली।"......06 शील अर्थात स्वभाव में होने वाली वृत्ति शैली हैं।

इस तरह वर्तमान अर्थ में 'शैली' शब्द पर्याप्त पुराना है। इसका प्रयोग भाषिक अभिव्यक्ति की शैली के अतिरिक्त, चित्रकला, स्थापत्यकला, वास्तुकला आदि कलाओं और शिल्पों की क्षेत्रीय या कालीय शैलियों के लिए भी होता रहा हैं।

शैली की कुछ परिभाषाएँ कथ्य के आधार पर – हेनरी मोरियर के अनुसार "शैली होने का एक ढ़ंग है –"To us style is a disposition of existence, a way of being"......7

❋ ❋ ❋

स्पेंसर के अनुसार– Style as a higher and active principle of compositions by which the writer, penetrates and reveals the inner from of his subject."........8

डॉ0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार – "किसी भी कार्य करने के विशिष्ट ढ़ंग का नाम शैली हैं।".......9

शैली के प्रकार

कई आधारों पर शैली के कई प्रकारों की चर्चा की जा सकती है। जैसे व्यास शैली–(जिसमें बात फैलाकर कही गई हों, कसाव न हो), समास शैली–(इसमें बात में कसाव होता है), सूत्रात्मक शैली–(इसमें सूत्र के रूप में अभिव्यक्ति होती हैं, और बहुत अधिक कसाव होता हैं), संस्कृतनिष्ठ शैली–(जिसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक हो, जैसे प्रसाद की शैली और निराला की शैली), सरल शैली, क्लिष्ट शैली, व्यंग्यात्मक शैली, लाक्षणिक शैली, अटपटी शैली, चुलबुली शैली–(रानी केतकी की कहानी में पायी जाती है), उलट बाँसी शैली, प्रतीकात्मक शैली, भावुक शैली, सपाट शैली, आंलकारिक शैली, बिम्बात्मक शैली, विचारात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, कथोपकथन शैली, आत्मकथात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, विरोधाभास शैली आदि।

शैली के मूल तत्व के बारे में विद्वानों के मत है–

डॉ0 सत्यपाल चुघ कहते है – "विषयवस्तु को कला रूप में डालने की प्रक्रिया को शिल्पविधि कहते हैं। उपन्यासकार की मूल संवेदना तथा प्रयोजन शिल्प को नियत करते हैं और वे शिल्प से ही व्यंजित होते हैं।"........[10]

❋ ❋ ❋

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा कहते है–"शैली की आत्मा मुख्यतः वे सम्बन्ध हैं, जिनके ढाँचे में अनुभूत विषयवस्तु को समाहित या व्यवस्थित किया जाता हैं।"......[11]

1. चित्रात्मक या बिम्बात्मक शैली

'बिम्ब' शब्द यद्यपि संस्कृत का है, किन्तु संस्कृत में ठीक इस अर्थ में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। वहाँ इसका अर्थ छाया, प्रतिमा, प्रतिबिम्ब आदि हैं।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों के शैली–शिल्प में हिन्दी, भोजपुरी, अवधी आदि बोलियाँ समाहित हैं। डॉ0 सिंह ने शैली–शिल्प के प्रयोग से पाठकों के

चेतना–लोक में मध्यकालीनता का संस्कार जगा दिया हैं और ग्रामीण संस्कृति की झलक दिखाई देती हैं–

'अलग–अलग वैतरणी' में कई स्थानों बिम्बात्मक शैली उभरकर सामने आयी हैं–जैपाल सिंह अपनी बहू का बिम्ब भावानी रूप में में देखते हैं – "मुझे बहुत दुःख है बहू! मैं तो तुझे भावानी का प्रसाद मानता था बेटीं। सोचता था दुःख, शोक, भय से तू कभी न घबड़ायेगी"......[12]

❋ ❋ ❋

'मेले" के बीचो–बीच जैसे आग लगी हो। लपटें कहीं दीखती नहीं, पर सरसराहट सर्वत्र सुनायी पड़ रही हैं। अचानक करारी भगदड़ मची। जैसे पूरब के भीटे से कुचलकर कोई गुस्सैल भैंसा भीड़ में कूद पड़ा हों।......[13]

❋ ❋ ❋

"कई बार–बार सोचता हूँ कि कहीं झगड़े के बची मौत न हुई होती, तो तब भी लोग क्या ऐसे ही चुप रहते। अलग–अलग दरवाजों पर बैठकर गप्प करने वाली मजलिसों में शायद ही कभी किसी बात पर मतैक्य होता है।"......[14]

'नीला चाँद' में भी बिम्बात्मक शैली का उदय होता प्रतीत होता है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जुझौती और दिल्ली को केन्द्रित कर लिखा गया हैं।

"सामने था नन्दीश्वर का मन्दिर। वह नागर शैली पर बना एक अद्भुत, विशाल और उन्मुक्त शिल्प का नमूना था। सिर पर चमकदार आमलक (आंवला) था। उसके ऊपर कलश था और उसके शीर्ष पर ध्वजदंड।"......[15]

❋ ❋ ❋

"ब्राह्म मुहूर्त में शय्या त्याग कर, गंगा में नहाकर, स्नान पूजन से निवृत्त होकर, गंगातट पर आसन जमाकर झुंड़ में लोग बैठ जाते थे।"......[16]

''मंजूशिमा'' में भी कहीं–कहीं बिम्बात्मक शैली का परिचय मिलता हैं। पिता और पुत्री की करुण कथा के बिम्ब और प्रतिबिम्ब झलकते हैं।

''मंजु शांति से सोयी थी, बाहर कुछ छात्र खड़े थे। मैं 10 नम्बर के बेड के समानान्तर रखी बेंच पर बैठ गया'' मेरा पूरा अंतः करण पूरा मनोमस्तिष्क एकदम रिक्त था। भीतर पंछी ने पंख फैलाये, स्मृतियों ने आकाश में उड़ान भरना शुरू कर दिया''.......[17]

❋ ❋ ❋

''कक्ष में बंधुवर बच्चन सिंह, त्रिभुवन सिंह मेरे साथ बैठे थे। तो वहाँ और लोग भी, उनकी संख्या भी काफी थी किन्तु मेरी स्मरण शक्ति की अतिशयोक्ति भरी प्रशंसा करने वाले बंधुवर नामवर सिंह बच्चन सिंह को 19 November 1981 की रात विचित्र लगीं।''.........[18]

''शैलूष'' उपन्यास नट और कबीलाई जीवन पर आधारित हैं, जिसमें बिम्बात्मक शैली का प्रयोग डॉ० सिंह ने बड़ी चतुराई से किया है–

''रेवती ने किरासन तेल का बड़ा डब्बा उठाया और इन चारों पेड़ों के बीचो–बीच अपने शरीर को किरासन तेल में डुबाकर दियासलाई की कांटी लगा दी। देखते–देखते लपटें तेज होने लगी।''......[19]

❋ ❋ ❋

''सामने लम्बे–लम्बे सींगो वाली भूंवर और मरियल पर माला बैठी हैं।''........[20]

''पुलिस ट्रक छोलदारियों के पास रूकीं। पी०ए०सी० के कुल तीन रायफलधारी जवानों में पूरे क्षेत्र को घेर लिया। यह जानकर कि लुटेरों के पास पिस्तौलें हैं,

हो सकता है कि कोई और भी संगीन चोट पहुँचाने वाला हैबी हथियार हो, इसलिये उन्होंने बहुत ही चौकस होकर अपने को पेड़ों और झाड़ियों की आड़ में छिपा लिया था।''.........[21]

''औरत'' उपन्यास स्त्री की आधुनिक प्रगति पर आधारित उपन्यास है। जिसका सर्वेक्षण डॉ० शिवेन्द्र अपने शोध के माध्यम के उजागर करता हैं। जिसमें चित्रात्मक शैली का विधान डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने किया है– डॉ० शर्मा औरत उपन्यास के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए कहते है– ''पुरुष आज अपनी सत्ता के बल पर वास्तविकताओं को भूल गया है और विभिन्न शैली मत देकर महिलाओं के उत्थान की बात करता है परन्तु वह भूल जाता है कि महिलाओं ने तो पहले ही उन सभी स्थानों पर अधिकार ही नहीं प्रभुत्व जमा रखा है।''.......[22]

❋ ❋ ❋

''सफेद साड़ी में लिपटी, पीठ पर कजरारे वालों को फेंकती एक युवती खड़ी है और सहसा वह आम की गाछ से लिपट जाती हैं।''.......[23]

❋ ❋ ❋

''सुबह बहुत सुहानी थी। दक्खिनी हवा में अधपकी फसलों की खुशबू भरीं थी।''........[24]

❋ ❋ ❋

''यह तो बहिनी जी मरद लोगन के नाक पर बूट मार देती है। इसके बदन में तो हड्डी है ही नहीं।''.......[25]

❋ ❋ ❋

''आज पूरी दुनिया में हिन्दुस्तान की बेइज्जती इसीलिये हो रही है कि वह अस्सी करोड़ जनता वाला देश अपनी चालीस करोड़ स्त्रियों का गुलाम की तरह 'ट्रीट' करता है''........[26]

'गली आगे मुड़ती है' में कथाकार ने पाठकों के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया है, कथानायक रामानन्द तिवारी के शब्दों में ही अधिकांश उपन्यास लिखा गया हैं। चित्रात्मक शैली कहीं-कहीं दिखाई देती हैं-

"सहसा कमरा एक जिंदा जानवर की तरह हिलता-सा नजर आया"......[27]

❋ ❋ ❋

"सिद्धेश्वरी मंदिर के सैकड़ो आते है पर इस गंदे भिखारी की ओर कोई देखता तक नहीं। साले पैसा फेंकते हैं। तुझे मैं क्यों मना करूँ। अब सचमुच भाग जा। वे उठ पड़े। उनके छह फीट लम्बे शरीर को देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया।"........[28]

❋ ❋ ❋

"दिल्ली दूर है" ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिसमें विभिन्न ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का अध्ययन और इतिहास के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 'दिल्ली दूर है' में शैली के बिम्बात्मक स्वर गूँजते हैं-

"यह दिल्ली बड़ी खतरनाक जगह है। इसे जब भी किसी ने अपनी मानकर अगल-बगल को कब्जे में लाने की कोशिश की हैं। इसे पालतू घोड़ी मानकर दूसरी ओर आँख दौड़ाई कि इसने ऐसी पुश्ते मारीं कि सवार चारो खाने चित गिरें।"........[29]

❋ ❋ ❋

"यहाँ तो आश्चर्यचकित करने वाले सहस्त्रों दृश्य हैं जिन्हें चित्रपटी पर उतारकर कोई भी कलाकार अमर हो सकता है।"........[30]

"रात्रि के तृतीय पहर बाद बुझी हुई लपटों और क्षत-विक्षत लाशों पर टूटते श्वानों और श्रृगालों की वीभत्स ध्वनियों को सुनकर सामने के टीले पर बैठा वाशेक चौंक-चौंक उठता था।".......[31]

"वैश्वानर" काशी की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है। इसमें चित्रात्मक शैली का चित्रण डॉ0 सिंह ने किया हैं–

"नारी कंठ की सुपरिचित ध्वनि को सुनते ही घोर अपनी कुटिया के बाहर आ गये। साँवले मुखमण्डल में दाँतों और आँखो की श्वेत चमक ने एक अद्भुत चमत्कार को रूप दे दिया था।"......32

* * *

"एक साथ सारे आर्यजन उछल–उछल कर नृत्य करने लगें। फिर वही नृत्य, वही थिरकन, वहीं तूर्य ध्वनि तथा काशी निवासिनी प्राचीन आर्य कन्याओं की शंख ध्वनि गूँजाने लगी............वह मानवता की विजय की घोषणा का पर्व बन गया।"......33

"कुहरे में युद्ध" अद्यान्त युग की विभीषिका को वर्णित करता है और तत्कालीन भारतीय अस्मिता और भारतीय संस्कृति को एक शैली में बाँधकर प्रस्तुत किया गया है। जिसमें बिम्बात्मक शैली को भी समाहित किया गया हैं। कुतुबमीनार का दृश्य दिखातें हुए देवशर्मा अपने पुत्रों से कहते है–

"इस कुतुब का अर्थ अरबी में पृथ्वी, दिशा, पृथ्वी की धुरी है–यानि पृथ्वी का अयन है। सो बेटे अब तो तुम जान गए।"......34

"नीचे घास–फूस से ढके खड्ड में बाँस के नुकीले सिरे वाले सहस्त्रों भाले गड़े थे। तुरूस्क मसृण घास समझकर कूदते थे और बुरी तरह छिदकर तड़प–तड़प कर मरते थे।"......35

* * *

"मंगलदेव जयदुर्ग के प्रासाद की अतिथि शाला में एक पलंग पर लेटा था। खिड़की पूर्व दिशा में खुलती थी। चाँदनी रात थीं।"......35

डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यासों में बिम्बात्मक शैली का प्रयोग बड़ी चतुराई से किया हैं और भाषा शैली पर विशेष जोर दिया है। जो शब्दों के माध्यम से एक चित्र या बिम्ब बनाने की कला में सफल हुए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मानते है–

"काव्य का काम ही कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थिति करना।"......[36]

2. विचारात्मक शैली

डॉ0 सिंह ने उपन्यासों में विचारात्मक शैली का प्रभाव अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। जो शैली–शिल्प के माध्यम से उजागर होता है –'अलग–अलग वैतरणी' का शैली शिल्प सर्जनात्मक हैं, इसकी वर्णात्मकता बाहरी वस्तु के चित्रण को ही नहीं, बल्कि भीतरी चिन्तन प्रक्रियाओं की मनः स्थितियों, अनुभवों संवेदनाओं आदि को उजागर करती है। मिसिर विचार व्यक्त करते हैं हुए कहते है–

"सुरजू और बुझारत एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ। तुम लोगो को लगता होगा दोनों के फरक। देखेने में ऊपर–ऊपर से दोनों एक दूसरे के दुश्मन लगते है। मगर इनका यदि कोई सबसे अधिक नजदीकी है तो जान लो, ये ही खुद के सबसे नजदीकी है।"......[37]

देवनाथ मास्टर शशिकान्त के बारे में कहते है–"बिपिन बाबू जैसे पढ़े–लिखे लोग है, वह सड़ियल जगह कैसे है। मुझे तो, सच कहिए, ऐसी जगहों में ही अच्छा लगता है। एकदम कोरी माटी, मुलायम और ताजा।"......[38]

"नीला चाँद"– नीला चाँद उपन्यास में भी कहीं–कहीं विचारात्मक शैली का परिचय मिलता है। कीरत अपने काशी विचार प्रस्तुत करते हुए कहते है– "नहीं, मुझे यह रूमानी रेशमी ज़ाल नहीं चाहिए, मैं कठोर सत्य को भोगना चाहता हूँ।

सुना है यह नगरी त्रिशूल पर स्थित हैं। मै त्रिशूल को धारण करने वाली पहाड़ी पर पैर रखकर समझना चाहता हूँ कि आध्यात्मिक अनुभूति और भौतिक सत्य में कौन वरेण्य हैं?.......[39]

❋ ❋ ❋

रज्जुक युवराज से अपने विचार व्यक्त करता है– "मैं वंशहीन पिंडदान के लिए तरसने वाला प्रेत हूँ। मेरे जीवन में एक नारी आयी थी सुनयना।''........[40]

''मंजूशिमा'' कृति में विचारात्मक शैली का विशिष्ट प्रयोग किया गया हैं। डॉ0 स्वयं उपन्यास के प्रमुख पात्र भी है जो अपने विचार प्रस्तुत करते है–

"मैं स्वयं शिव हूँ। मैं उस महाज्वाला का स्फुलिंग हूँ, जो मुझे अपनी गोद में सुलाने के लिए उतनी ही उत्कंठित है जितना उसके लिये मैं।''......[41]

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह अपनी पुत्री कहते है कि मैं तेरे लिए अन्तिम समय तक कोशिश करूँगा–"मै इस विपत्ति के विरूद्ध सुसाइडस्क्वाड के कप्तान की तरह लडूँगा, पर अगर तुम्हारा विश्वास और टूट जायेगातो मैं प्रकृति के विरूद्ध इस युद्ध में न केवल पराजित होऊँगा बल्कि तुम्हारे साथ मैं भी इस धरती को छोड़कर कहीं चला जाऊँगा।''......[42]

''शैलूष'' कृति में डॉ0 सिंह ने कबीलाई जीवन का एक सजीव दस्तावेज प्रस्तुत करके, भारतीय संस्कृति में निम्न स्तर के लोगों को जोड़ने का प्रयास किया है। सूरज अपने विचार प्रस्तुत करता हुआ कहता है – "तुझे एक मासूम बच्चे का कतल करना है, यह कब कहा उस कनकट्टे ने? दुश्मन से लड़ाई के हजार तरीके होते हैं। हम अपने बनाफर खून को दूसरों के कहने से बहाने नहीं आये थे।''.....[43]

ननकू सलमा को समझाते हुए कहते है–"दुनिया में न कोई पवित्र होता है बेटी, न म्लेच्छ।"......44

❋ ❋ ❋

"औरत" उपन्यास में डॉ0 सिंह ने औरत की मानसिक दशा का आत्मसात् किया हो ऐसा प्रतीत होता हैं। जो विचार उन्होंने प्रस्तुत किये है, वे वर्णनीय है। शिवेन्द्र के माध्यम से वे कहते है–"नारी की दीनता, उसकी नियति, उसकी ट्रेजेडी एक जैसी है"......45

❋ ❋ ❋

आगे नारी की महत्ता को बताते हुए लिखते है–"हजारों वर्षो का भारतीय इतिहास कहता है, नारी रत्न है। उसे पाये बिना सारी उपलब्धि बेकार है।"......46

❋ ❋ ❋

"गली आगे मुड़ती है" उपन्यास काशी के महत्व और वहाँ की गतिविधियों का परिचय कराता हैं। जिसे डॉ0 सिंह ने अपनी बुद्धि से एक जीवंत प्रमाण बना दिया हैं। जिसमें विचारात्मक शैली का प्रकाशन रामानन्द तिवारी के माध्यम से करवाते है–"पता नहीं कौन आदमी है, जो यहाँ से निकलते ही मेरा पीछा करता है।"......47

❋ ❋ ❋

रामानन्द मंदिर के पुजारी से कहते है कि नारी सुन्दर हो या कुरूप वह तो बस नारी है–"हर सुन्दर नारी को देखकर पुरुष या पुरुष को देखकर नारी सोचने लगेगी कि यह मेरा अर्धांश है।"......48

"दिल्ली दूर है" एक ऐतिहासिक कृति है। जिसमें विचारात्मक शैली का प्रयोग भरपूर हुआ है–शालिग्राम शूद्र की स्थिति पर विचार व्यक्त करते है–"शूद्र, आपके लिये अन्न, चारा सब उपजाता है। आप तक पहुँचाता है। उसे

आप अपने की चाहरदीवारी में बन्द होकर खाते हैं। अपने अन्न को शूद्र ने उपजाया समझकर कभी छोड़ा नहीं होगा। यह तो गाँव हैं।"......[49]

❋ ❋ ❋

आनन्द गुरूदास की बात से सहमत होकर नारी को श्रेष्ठ मानता है और अपने विचार से कहता है–"कन्या का जनम होता है तो परिवार के युवक अनायास शिष्टता सीख लेते हैं। अपनी बेटी, बहन, भतीजी को स्मरण करके वे दूसरों की बेटी, बहन भतीजी के साथ स्वतः शिष्ट होना सीख लेते है।"......[50]

"वैश्वानर" कृति डॉ0 सिंह ने भारतीय संस्कृति को आधार बनाकर रचा हैं। शौनक ऋषि अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है–"मै वेद–वेदांग के ज्ञाता लोगो के परिवार में जन्मा पर न ऋषि हूँ न ऋषि पुत्र। मंत्र दृष्टा भी नहीं हूँ।"......[51]

३. विवेचनात्मक शैली

ज्ञानेन्द्रियों के ऊपरी विवरण, वर्णन या चित्रण की शक्ति के ऊपर उठकर जब मस्तिष्क की शक्ति से किसी तथ्य का तर्क–वितर्क, विवेचन–विश्लेषण आदि के द्वारा प्रतिपादन या स्पष्टीकरण किया जाता है, तब विवेचनात्मक शैली ही अधिक उपयुक्त रहती है, – डॉ0 शंकरदयाल लिखते है–"विषयानुसार इसमें गम्भीतता, प्रौढ़ता और शुष्कता रहती है।"......[52] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सामासिक गाढ़बन्धता के साथ तथा डॉ0 श्यामसुन्दर दास ने व्यास शैली या असामासिक शब्दों में विवेचनात्मक शैली का सफल निर्वाह किया है, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने इसमें मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है–

"अलग–अलग वैतरणी" उपन्यास में डॉ0 सिंह ने ग्रामीण परिवेश और शहरी परिवेश का अत्यन्त सुंदर सम्मिश्रण किया हैं। सुरजूसिंह जैपाल के बारे में विवेचना करते हुए कहते है–"क्या कर लेंगे जैपाल। अब क्या कोई उनके असामी हैं? दस गुना लगान जमाकर भूमिधर बने। ऊ पुरानी बाते लद गयीं कि बिला वजह जब चाहा किसी को पकड़वाया और मुरगा बनाकर लटका दिया।"......53

❋ ❋ ❋

जैपाल सिंह गाँव की स्थिति बिगड़ती देख अपने घर में बहू को समझाते है–"मुझे बहुत दुःख है बहू! मैं तो तुझे भावानी का प्रसाद मानता था बेटी। सोचता था दुःख, शोक, भय से तू कभी न घबड़ायेगी।"......54

❋ ❋ ❋

गाँव में आजादी की लहर जाग उठी है तो वातावरण में परिवर्तन आ रहा है। डॉ0 सिंह इसकी विवेचना करते हुए लिखते है–"गाँव के बाहर, तालाब की ओर जाने वाले रास्ते पर घना अंधेरा था। सन्नाटा ऐसा कि अपने को ही अपनी साँसे अशान्त करने लगे। शरीर में ज्वरांश होने पर जाने हवा कैसी–कैसी लगती है।"......55

❋ ❋ ❋

"नीला चाँद" उपन्यास में भी विवेचनात्मक शैली उभर कर सामने आई है, आधुनिक स्थिति की विवेचना करती हुई श्री माँ कहती है। "ये प्रकोष्ठ नग्न युवतियों और युवकों से भरे थे। इनमें से मदिरा की अत्यन्त तीव्र दुर्गन्ध उठ रही थी। माँस, मैथुन, मदिरा के अत्याधिक प्रयोग के कारण ये लोग मृतक के समान विकृत दिखायी पड़ते थे।"......56

कृष्णन, मुक्ति–मंडप की विवेचना करता है–"इस मुक्ति मंड़प के स्वामी शिव नहीं, विष्णु हैं। ब्रह्मवैवर्त् में एक पंक्ति आती है मुक्तिमंडविकायास्तु स्वामी विष्णुर्नचावरः।".......57

"मंजूशिमा" कृति के प्रमुख पात्र डॉ0 सिंह (पिता) ही है। जो अपनी पुत्री की हालात की विवेचना करते है और देश में व्याप्त जाति–पांति की भी विवेचना करते है–"इस देश में सबसे बड़ा पाप है हिन्दू होना। उसमें भी ब्राह्मण होना।".....58

❋ ❋ ❋

अपनी तुलना अमेरिका की संस्कृति से करते हुए कहते है–"मैं उस अमेरिकी की तरह नहीं हूँ। हो भी नही सकता। इसलिए नहीं कि मेरे पास ढेर सारे अमेरिकी डालर्स नहीं है, बल्कि इसीलिए कि मैं देश का आदमी नहीं हूँ, जिसकी न कोई कल्चर है, न संस्कृति।".....59

❋ ❋ ❋

"शैलूष" कृति में कबीलाई जीवन की विवेचना की गई हैं। जिसमें नटों के जीवन की कार्य–शैली, वातावरण, की स्थितियों का वर्णन किया गया हैं। जुड़ावन सरदार, सावित्री को सीख देते हुए अपनी संस्कृति की विवेचना करते हुए कहते है–"सच के रास्ते चलकर जीने के लिए तूने क्या दिया इन्हें? सही है कि तू इन्हें जरायमपेशे से अलग करके संस्कृति की मुख्यधारा में शामिल होने को पढ़ाती रहीं।".......60

❋ ❋ ❋

"औरत" उपन्यास में नारी के अन्दर छुपी तड़फ और उसके स्वाभिमान को साकार रूप देकर कथा की विवेचना की गई हैं, जिसमें विवेचनात्मक शैली का प्रस्तुतीकरण है। शिबू भाई एक व्यक्ति की विवेचना करते हुए कहते है–"एक

बड़ा ही नीच किस्म का आदमी था जो बड़े से बड़े में भी कोई न कोई ऐब ढूंढ़ लेता था।''......61

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह औरत की स्थिति की विवेचना करते हुए कहते है–''औरत की जिन्दगी भी एक चीज है सूरज से जुड़ी यानी उसकी माँग का सिन्दूर। इस सिन्दूर की रक्षा के लिए औरत अपने प्राणों को दाँव पर लगा देती है।''......62

❋ ❋ ❋

''गली आगे मुड़ती है'' में डॉ0 सिंह ने सुबोध भट्टाचार्य के माध्यम से विवेचनात्मक शैली का परिचय कराया है–''मैं पिछले पाँच वर्षो से यहाँ पढ़ा रहा हूँ, नया लेक्चरार हूँ मैं अध्यापक को राजनीति से नहीं जोड़ता यही मेरी गलती है।''.......63

❋ ❋ ❋

रामानन्द परीक्षा में कम प्राप्तांक ला सका जिसकी विवेचना करता और कहता है–''मुझे साहित्य के एक पर्चे में कुल तीस अंक दिये गये थे। भाषा विज्ञान में भी अंक कम थे, पर इसमें अपनी कमजोरी मान सकता हूँ, लेकिन साहित्य के दूसरे परचों में जहाँ मैने पैसठ या सत्तर अंक पाए इस परचे में तीस पाना स्पष्ट ही किसी कारगुजारी का सबूत है। पर मै इसका क्या कर सकता हूँ।''.......64

❋ ❋ ❋

''वैश्वानर'' शैली–शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें प्रायः सभी शैलियों का समायोजन किया गया है। विवेचनात्मक शैली के उद्धरण स्पष्ट झलकते हैं। युवराज प्रतर्दन के शब्दों में–''मैं इतना मूर्ख नहीं बन सकता कापालिक। मैं दूसरी बार वही त्रुटि करूँगा तो इतिहास मुझे बुद्धिहीन कहेगा तांत्रिक।''......65

शिव और विष्णु की विवेचना डॉ0 सिंह के शब्दों में हुई है–"दो देवता पृथ्वी पर उतरे। उनका नाम था विधाता और विष्णु। दोनो आपस में लड़ रहे थे। दोनों में कौन बड़ा हैं।"......[66]

❋ ❋ ❋

"कुहरे में युद्ध" उपन्यास डॉ0 सिंह की अन्तिम कृति के रूप में प्रस्तुत हुई हैं, राजेश्वर कहते है कि युद्ध के समय तुम प्रेम में डूबे हुए हो लेकिन–"हम समझते थे कि वाग्दत्ता के प्रेम में तुम इतने खो गये हो कि भावी संकट की ओर से तुमने आँखे मूंद ली हैं।"......[67]

❋ ❋ ❋

वहीं आनन्द भी राजा से कहता है कि युद्ध में हम सफल होगें और उसके शब्दों में विवेचनात्मक शैली का उदाहरण मिलता है–"अब हम मिट्टी के घरौदों से नहीं खड्ग और धनुष से खेलते है। पिछले युद्ध में हमारे सैनिक आर्य मर्यादा की डोर में बंधे थे। वही उचित भी था, क्योंकि तब बलिदान ही सर्वोच्च सम्मान था।"......[68]

4. वर्णनात्मक शैली

इसमें किसी स्थान, वस्तु अथवा व्यक्ति का यथातथ्य वर्णन किया जाता है और बहुधा ज्ञानेन्द्रियों की सहजता ली जाती है। अतएंव प्रज्ञाशक्ति प्रसूत विवेचन व्याख्या इसमें नहीं की जाती। इस शैली से इसीलिए लेखक के व्यक्तित्व का स्फुरण नहीं हो पाता। यथातथ्य वर्णन के आग्रह के कारण व्यक्तिगत रूचि, अरूचि, धारणाएँ और अनुभूतियों को प्रगट होने का अवसर कम मिलता है।

वर्णात्मक शैली में बहुधा व्यास शैली और प्रसाद गुण की सत्ता रहती है, साथ ही बहुलांश में शब्दों की अभिधा शक्ति मुखारित होती हैं। गद्य रूपों में वर्णनात्मक निबंध, कहानियों तथा उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का अधिक प्रयोग रहता है। भाषा का इसमें सर्वाधिक सौम्य रूप रहता है। डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के कथा–साहित्य में यह शैली विशेष स्थान प्राप्त किए हुए हैं।

भारतीय काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी लिखते है–"अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्म भेदः परस्परम्"....[69]

डॉ0 सिंह के कथा साहित्य में वर्णनात्मक शैली के उद्धरण देखे जा सकते है। सबसे पहली कृति 'अलग–अलग वैतरणी' जो कि ग्रामीण परिवेश को लेकर लिखा गयी हैं।

"अलग–अलग वैतरणी" में कई स्थानों, इमारतों, ऋतुओं, सामाजिक स्थिति, वातावरण आदि का वर्णन मिलता है। जिसमें डॉ0 सिंह ने बड़े कौशल के साथ वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया हैं। वातावरण का चित्रण डॉ0 सिंह के शब्दों में "नवम्बर के अन्त तक करैता का सिवान पूरी तरह हरियाली की चादर में लिपट चुका था। यह हरियाली नाना मुद्राओं में भूखे और निराश लोगों को धीरज बँधाती।"......[70]

ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए डॉ0 सिंह लिखते हैं–''सभी कुछ को धूल के वबंडरों में लपेटती हवा चलने लगी। सुबह होती कि गर्मी शुरू हो जाती। बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। ज्यों–ज्यो सूरज आसमान में में ऊपर चढ़ता त्यों–त्यों हवा में ताप बढ़ने लगता और दोपहर होते–होते हवा बदहवास होकर चारों ओर दौड़ने लगती। उसके धक्के 'से दरवाजें और खिडकियो के पल्ले तड़तड़ाने लगतें।''.......71

❋ ❋ ❋

''नीला चाँद'' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन मिलता है। प्राचीन नगरी काशी के वर्णन के साथ कर्णदेव काशी का वर्णन करते हुए वे कहते है–''काशी के पंडित समाज ने किसी को भी चाहे वह कितना भी श्रेष्ठ हो अपने नाम पर विद्यालय का नाम रखने की स्वीकृति नहीं दी। काशी में केवल एक आश्रम है ओझाउल अर्थात उच्चतम उपाध्याय कुल जो सैकड़ो वर्षो से समाज की सेवा और गीर्वाणवाणी के ज्ञान को प्रकाशित करता चला आ रहा है।''.......72

❋ ❋ ❋

नर्मदा नदी का वर्णन इस प्रकार चित्रित है–''एक विशाल नदी है, जो पूरब से निकल कर पश्चिम को जाती है। जाबालिपुर के निकट उसका उद्गम बहुत ही क्षीण लगता है।''.......73

''मंजूशिमा'' कृति में डॉ0 सिंह ने यात्रा का वर्णन भी किया है। जब अपनी पुत्री मंजु को लेकर मद्रास जाना पड़ा तो वे उस यात्रा का वर्णन–शैली के माध्यम से करते हैं। ''ठीक साढ़े आठ बजे हम मद्रास के हवाई अड्डे पर पहुँच गये। रात की यात्रा उचित नहीं है, मैने सोचा, क्योंकि मन में तो उत्तर भारत की चंबल घाटी बसी थीं। यह भरम मद्रास तक पीछा करता रहा। मैने

'एयरपोर्ट–इन' में रात भर के लिए डबल–बेड कमरा मांगा तो एक रात के लिए एक सौ अड़सठ रूपये देने पड़े।''......74

❋ ❋ ❋

डॉ0 सिंह अपनी आर्थिक स्थिति का भी लेखा–जोखा लिखते है–''डायलसिस के लिए तब साढ़े पांच हजार प्रतिमाह की फीस होती थी। मैंने दो महीने की अग्रिम फीस के ग्यारह हजार तो दे दिये थे, पर अप्रैल मास की एडवांस फीस जमा नहीं हुई थी।''.......75

❋ ❋ ❋

''शैलूष'' उपन्यास के ग्रामीण जीवन का वर्णन पर्याप्त हैं जिसका प्रतिनिधित्व निम्न स्तर की जातियां करती हैं। डॉ0 सिंह के शब्द है–''चमारों के पास न तो इतना पताई–पटेढ़ा था कि वे नटों की तरह तुरन्त मड़ई बना लें, न तो उनके पास रावटियाँ ही थी कि दोपहर की गर्मी से उनकी हिफाजत कर सकें। कुछ भी न होते हुए भी, उनके भीतर एक ऐसी ललक थी जो हर इंसान को होती है।''......76

❋ ❋ ❋

एक किसान की ही भाँति तिवारी भी अपने खेतों पर बोरिंग करवा रहे है, जिसे डॉ0 सिंह ने वर्णनात्मक शैली में व्यक्त किया है–''तिवारी बाबा बहुत व्यस्त है आजकल वे चौरे पास ही ट्यूबवेल लगवा रहे है, काफी गहराई तक बोरिंग हो रही हे, पहले तो माटी–मिला गंदा पानी निकला।''......77

❋ ❋ ❋

''औरत'' कृति में औरत (नारी) की ही विभिन्न स्थितियों का वर्णन शैली के माध्यम से किया गया है। आज के पुरूष वर्ग की दृष्टि नारी के प्रति उजागर होती है। डॉ0 सिंह कहते है–''वह द्रोपती के चीर–हरण को रोकने आएगा कहाँ से। उसे अब औरत की कामेदी नहीं त्रासदी में मजा आता है।''......78

तहकीकात का वर्णन भी विस्तार पूर्वक मिलता है–"मैं नहीं हूँ एस0पी0। इस खुराफात के पीछे आपको नंगा नचाने के इच्छुक आपके हम उम्र या वृद्ध पुलिस आफीसर्स हैं। पूछिये अपने सिटी सुपरिन्टेडेंट से इस खबर को छपवाने वाले कौन है?"......[79]

❋ ❋ ❋

"दिल्ली दूर है" डॉ0 सिंह की एक ऐतिहासिक कृति है जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन और ऐतिहासिक पात्रों का वर्णन हैं। राजनीति और कूटनीति को जोड़कर घटनाओं का चित्रण–"एक हफ्ते के भीतर पूरी दिल्ली में हलचल मचने वाली है। आम मुसलमान रूकनुद्दीन से चिढ़ गये हैं और उस निकम्मे सुल्तान की आड़ लेकर शाह तुर्कान जैसे कारनामे कर रहीं है, उससे अमीरों में भी रोष बढ़ा है।"......[80]

❋ ❋ ❋

वाशेक अपने कर्तव्य का वर्णन करते हुए कहते है।–"मै। दस हजार घुड़सवारों के साथ लूट का माल लेकर दिल्ली लौट रहा हूँ।"......[81]

❋ ❋ ❋

एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन करते हुये डॉ0 सिंह लिखते है–"श्री परशुराम ने क्षत्रियों का वध करके उनके रक्त से समन्तपंचक सरोवर भर दिये थे। गौ–चौकर्म में लीन निरपराध पिता के हत्यारे सहस्त्रार्जुन के साथ अनेक आततायी नरेश मारे गये।"......[82]

❋ ❋ ❋

"वैश्वानर" उपन्यास में काशी का वर्णन भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा को शब्दों के माध्यम से उजागर किया गया हैं। सूक्त मंत्रों का वर्णन करते हुए पितामह कहते है– "इसमें कुल इक्यावन मंत्र हैं। अब सबसे व्याख्या करूँ तो समझ ले कि एक प्रहर का अमूल्य समय तुझे समझाने में लिए मेरे पास होना चाहिए।"......[83]

आश्रम का वर्णन करते हुए डॉ0 सिंह कहते है–"इस आश्रम में शुद्ध भोजन पर बहुत ध्यान दिया जाता था। सभी खाद्य पदार्थ अग्नि के ताप के भीतर ही पकाये जाते थे।"......84

❋ ❋ ❋

"कुहरे में युद्ध" कृति भी ऐतिहासिक वर्णनात्मक शैली पर लिखा गया है। जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं और इमारतों का वर्णन विशेष रूप से किया गया हैं। सैनिको के खान–पान का वर्णन विशेष रूप से किया गया हैं। डॉ0 सिंह लिखते है–"प्रातःकाल ब्राह्ममुहर्त में तुरूस्क स्कंधावार में बड़े आनन्द के साथ सुबह का नाश्ता चल रहा था। लश्कर के चारो ओर घूम–घूम कर रखवाली करने वाले तुर्क और अफगानी खलजी सैनिक चौकन्ने थे, पर साथ ही वे इतनी स्वादिष्ट नान–ए–मैंदा (पूड़िया) गोश–ए–गोस्पन्द (बकरे का मांस), फलूदा, जलेबी–ए–नवत की ओर से उदासीन भी तो नहीं रह सकते।"......85

5. व्यंग्यात्मक–शैली

व्यंग्य, विनोद और कटाक्ष से ओत–प्रोत शैली का अपना गन्तव्य एवं मंतव्य होता हैं, जो प्रभाव सरल और सीधी शब्दावली का नहीं होता वह व्यंग, कटाक्ष और अन्योक्ति का होता हैं, विशेषतः कानून, शिष्टता तथा औपचारिकता का ध्यानरखकर शब्दों की लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का आश्रय लेकर, अन्योक्ति, व्याज स्तुति–निन्दा, श्लेष आदि अलंकारों से सज्जित कर बौद्धिक कौशल के साथ व्यंग्य की वर्णावलियों का संधान किया जाता है।

समाज के दम्भ, आडम्बर तथा जड़ता के उन्मूलन के लिए अथवा विरोधियों की खिल्ली उड़ाने के लिए व्यंग्य शैली से अधिक प्रभावशाली दूसरी अन्य कोई शैली नहीं रहती। "दिल्ली दूर है" उपन्यास में कथानायक वाशेक मियां पर व्यंग्य करता हुआ कहता है, "तो तुम यहाँ भैसों से परेशान होकर एक गाय खरीदने आए"......86

''अलग–अलग वैतरणी'' में विपिन के आने पर व्यंग्य में राजकुमारी चिल्लाती है– ''डोम केवारा चीरेला, चीरेला। बत्तीसी खंभा हीलेला, हीलेला''.....[87]

❋ ❋ ❋

''शैलूष'' में रूपा सब्बों मौसी पर व्यंग्य बाण छोड़ती हुई कहती है– ''मौसी कह रही थी कि नट युवक, बहुएं सब उसे घुरफेंकन की तरह ब्राह्मण समझते है और उसके चरण छूते है। उसकी जजमानी पूरे महाइच में है और मेरी नट परिवारों में।''.......[88]

6. भाषण–शैली

इसमें विभिन्न विषयों को शैलीकार इस रूप में प्रस्तुत करता हैं कि मानो वह अपने समक्ष बैठे हुए सामान्य कोटि के असंख्य श्रोताओं को सम्बोधित करता है, उपदेश देता है, प्रश्न करता है, विरोधी मतों का खण्डन तथा स्वपक्ष का मण्डन करने को तर्क–वितर्क करता है। इस शैली में प्रवाह के साथ प्रभाव, प्रसाद के साथ ओज गुण तथा भावात्मकता के साथ पुनरावृत्तियाँ रहती हैं। शब्द प्रयोग भी बोल–चाल की व्यावहारिक भाषा का रहता है।

''अलग–अलग वैतरणी'' में शशिकान्त पर हमला होता है तो वह इसमें कोई चाल देखता है और अपने भाषण के माध्यम से कहता है–''यह चोर डाकू की करतूत नहीं, इसमे कोई राज है। इस गांव में कभी भी ऐसा नहीं हुआ।''.....[89]

''मंजूशिमा'' में भी डॉ0 सिंह स्वयं पिता के रूप में पात्र हैं जो अपनी संस्कृति के बारे में अमेरिकी संस्कृति से तुलना करते हुए भाषण–शैली में लिखते है–

''मैं उस अमरीकी की तरह नहीं हूँ। हो भी नहीं सकता। इसलिए नहीं कि मेरे पास ढ़ेर सारे अमेरिकी डालर्स नहीं है, बल्कि इसलिये कि मैं वैसे देश का आदमी नहीं हूँ, जिसका न कोई कल्चर (Culture) न कोई संस्कृति।''......[90]

''शैलूष'' उपन्यास में कबीलाई जीवन में बदलाव का उल्लेख सब्बो मौसी भाषण शैली के माध्यम से समझाती है– ''अब जमाना बदल रहा है। इस बदलाव को

तो हम रोक नहीं सकते, पर हमें गफलत में नहीं रहना चाहिए। बदलाव का पहला लक्षण है कि तुम लोगो के नाम एक–एक एकड़ जमीन मिली।''......[91]

7. काव्यात्मक शैली

मूलतः कवि–गद्यकारों की स्वाभाविक भाषा में कोमलकान्त पदावलियाँ, आलंकारिकता, कल्पना की उड़ान और दार्शनिक सूझ–बूझ अधिक रहती हैं। कलात्मक साज–सज्जा की रूचि रहने के कारण इसमें शैलीकार शब्दाडम्बर, दीर्ध सामासिक पदावलियाँ, अनुप्रास, यमक, श्लेष विशेषतः तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि की सामान्यतः अधिक प्रतिष्ठा के द्वारा कलात्मक सौन्दर्य प्रदान किया जाता है। पाठक को इसमें गद्य–काव्य का सा आनन्द मिलता हैं। डॉ0 सिंह ने भी अपनी कुछ गिनी–चुनी गद्य रचनाओं में काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया है।

''मंजूशिमा'' कृति में दुःखी पिता (डॉ0 सिंह) को सांत्वना देने के लिए प्रबुद्ध जन आये। इस पर डॉ0 सिंह लिखते है–

''रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखिय गोय।
सुन अठिलइहैं लोग सब बाँटिन लैहे कोय।।''

''मैं बहुत कृतज्ञ हूँ भाई वशिष्ठ जी, कि अपने कुछ परिचित साहित्यकारों की सहानुभूति और संवेदना का संबल दिया।''......[92]

''वैश्वानर'' में राम भार्गव के शब्दों के माध्यम से काब्यात्मक शैली का उदय होता है–''उर्ध्व लोक, स्वर्ग, सुरसइम, अमर्त्य, भुवन आदि इसके अर्थ–व्यंजक अनेकानेक शब्द है।''

''अकारं चात्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च।।'' (मनुः 2/76)......[93]

2. शैलीगत वैशिष्ट्य विविध शैली रूप एवं शैली शिल्प

उपन्यास के तत्व के रूप में शैली का विशिष्ट स्थान हैं। प्रत्येक उपन्यास के वर्ण्य विषय के अनुसार एक विशिष्ट शैली की आवश्यकता होती हैं। हमारे द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली वस्तु कितनी ही उत्तम शैली की आवश्यकता क्यों न हो, किन्तु उसका पूर्ण महत्व तभी पूर्ण होता है जब वह उत्तम ढ़ंग से प्रयोग में लाई जाय। उपन्यास में शैली तत्व इसी उत्तम ढ़ंग से कथा–वस्तु को प्रस्तुत करने में प्रयुक्त होता है। डॉ0 श्री नारायण अग्निहोत्री जी लिखते है–''उपन्यास में शैली बाहर का 'जामा' न बनकर स्वस्थ शरीर की ऊपरी सतह के समान होती है जिसमें सब अंग अपने सुड़ौलपन के साथ प्रकट होते हैं।''.....[94]

❋ ❋ ❋

शैली का एक प्रमुख गुण है पाठक और लेखक के बीच आत्मीयता को स्थापित करना। इस सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय जी का कथन है–''यद्यपि उपन्यास नाटक की अपेक्षा कक्ष के अध्ययन की वस्तु अधिक है और उसमें गाम्भीर्य की बहिस्कार भी नहीं तथापि वह जन–मन–रंजन की वस्तु अधिक हैं।..............उपन्यास का विशेष गुण है। कल्पना को सत्य का रूप दे देना उपन्यास की मुख्य कला है।''.......[95]

उपन्यास में शैली का पूरा प्रवाह मिलता हैं। उपन्यास में शैली अठखेलियाँ करती हुई आगे बढ़ती हैं। कही घूघँट की ओट से मुलकती है कहीं मुँह खोल कर सामने आती हैं।

उपन्यास की शैली जीवन की शैली की भाँति प्राचीन से भिन्न और अपने में नवीन होती हैं। नकल का जीवन नहीं अच्छा होता, उसी प्रकार किसी दूसरे उपन्यास की शैली की पुनरावृत्ति नाटकीयता का आभास भले ही दे दे, अपने में जीवन की सहज नवीनता नहीं ला सकतीं। डॉ0 अग्निहोत्री लिखते है– ''उपन्यास का जीवन चित्रकार का चित्र होता है। स्वाभाविकता के साथ उद्यरा हुआ अन्तर्निहित सौन्दर्य उसकी विशेषता होती हैं जो साधारण दर्शन में नहीं देख पड़ता वह चित्रदर्शन में

सहज में ही देख पड़ता हैं। पर इसके लिए आवश्यक हैं कि चित्रकार को सभी रंगो का ज्ञान हों और साथ ही साथ रंगों के मिश्रण के परिमाण और परिणाम का भी।''...96

आज के युग में सभी पुरानी चीजों का मूल्यांकन नयी विचारधारा को दृष्टि मे रखते हुये करना हैं। शैली में भी कुछ बदलाव आए हैं। जीवन का क्रम भी परिवर्तित हुआ है। आज विज्ञान ने समझने की दृष्टि भी दूसरी ही कर दी है। उसी दृष्टि को अपनाकर साहित्यकार एवं कथाकार अपनी कथा को लिखता है। लेकिन डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में सभी तत्व विद्यमान हैं।

विषय तथा व्यक्ति की प्रधानता के आधार पर विषय प्रधान शैली तथा व्यक्ति प्रधान शैली हो सकती हैं। विषय प्रधान शैली वर्ण्य विषय या वस्तु को प्रधान स्थान देती है, और शैलीकार की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ एवं भावनाएँ उसमें तिरोहित हो जाती है। इसके ठीक विपरीत व्यक्ति प्रधान शैली में लेखक की भावना, अनुभूति, कल्पना आदि वैयक्तिकताएँ अधिक प्रच्छन्न होकर प्रकट होती हैं।

वाक्य रचना की दृष्टि से भी शैलियों के प्रकार हो सकते है। जैसे सरल सौम्य शैली– जिसमें छोटे – छोटे वाक्य, सरल विन्यास में प्रस्तुत रहते हैं। दूसरी गुम्फित शैली में बड़े संयुक्त और मिश्रित वाक्य अनेक उप वाक्यों के साथ गुम्फित रहते हैं।

शब्द–चयन को ध्यान में रखकर भी शैलियों के प्रकार संस्कृत तत्सम–प्रधान, उर्दू दां शैली, मिश्रित (हिन्दुस्तानी) अथवा ठेठ भाषा शैली हो सकते हैं।

मुहावरे, उक्तियों आदि की प्रधानता के आधार पर मुहावरे प्रधान–शैली, व्यवहारिक पंचमेल शब्दों के प्रयोग से व्यावहारिक शैली, सज्जा सज्जस के अनुसार लाक्षणिक,

प्रतीकात्मक अथवा आंलकारिक शैली, पाठकों की दृष्टि से सर्व–बोध, दुरूह, क्लिष्ट आदि शैलियाँ, सामान्य प्रवाह के आधार पर सबल, शिथिल, लचर या प्रवाहमान शैलियाँ हो सकती हैं।

शैली सामान्य रूप में किसी कृति में कृतिकार की अभिव्यंजना शक्ति का घोतन करती हैं। उसके माध्यम से लेखक, कलाकार अथवा वक्ता स्वीकृत रचना में अपने व्यक्तित्व को स्वतः आरोपित एवं प्रस्थापित कर अपनी अस्मिता एवं मौलिकता को प्रमाणित करता हैं। इसलिए रचनात्मक साहित्य तथा कलाकृति में शैली ही वह तत्व–विशेष होती है, जिससे कृतिकार के रचनात्मक व्यक्तित्व और कलाकृति के लालित्य की परख एक साथ हो जाती हैं, विशिष्टता के द्वारा अनेक कलाकृतियों में यही तत्व रचयिता की प्रतिभा, मौलिकता और अभिनवता को उजागर कर सकती हैं, उसी अलग पहचान कराने में समर्थ होती है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने शिल्प–विधान के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है, शिल्प–रचना में नये प्रयोग किये हैं, लेकिन ये प्रयोग कथ्य से जुड़े हैं। संघर्षरत पात्रों और परिस्थितियों की मजबूरी के चित्रण में शिल्प के ये नवीन और मौलिक प्रयोग हुये हैं। उनके शिल्प में भाषा और अभिव्यक्ति की दीवारे आपस में टकराती रहती हैं। डॉ0 शीतांशु लिखते है–

"उपन्यासों में चरित्र को आधार बनाकर शिल्पकार ने रचना की हैं। जीवन्त संघर्षरत इन्सानों की जिन्दगी एक तटस्थ दस्तावेज बन गयी है।"......[97]

डॉ0 सिंह ने रूप विधान या शिल्प संरचना में साधक तत्वों के रूप में अनेक पद्धतियों और प्रक्रियाओं को अपनाया हैं। कहीं मनोवैज्ञानिक विधान है कहीं नाटकीय है तो कहीं–कहीं काव्यात्मक व्यंजना हैं।

भाषा–शैली वैशिष्ट्य

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के लगभग दस वर्षो के लेखन की भाषा को देखकर ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था–"क्या कमाल की चित्रकारी सीखी है तुमने! भाषा पढ़कर तो कभी–कभी लगता है कि यह मेरा शिवप्रसाद लिख रहा है।"......[98]

✻ ✻ ✻

और लेखक की यह कला कृतियों के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुई है। डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं–"शिवप्रसाद जी की भाषा में कहानीपन भी है, काव्यात्मकता भी सादगी भी है और नाटकीयता भी, अभिजात्य भी है, कड़वाहट भी तथा सस्तापन भी है और लावण्यता भी।"......[99]

✻ ✻ ✻

डॉ0 सिंह की इस भाषाई शक्ति को समझने से इरादतन इनकार करने वाले विद्वान भी है उनमें प्रमुख डॉ0 गोपाल राय लिखते है–"डॉ0 सिंह की भाषा कमजोर, सपाट और सर्जनात्मकता से हीन हैं।"......[100] इसके लिए डॉ0 राय ने मुख्य मुद्दा बनाया है–भाषा की पात्रानुकूलता को, लेकिन उदाहरण एक भी नहीं दिया हैं।

1. भाषा की पात्रानुकूलता

डॉ0 सिंह के **"अलग–अलग वैतरणी"** में भाषा में पात्रानुकूलता पर कोई सवाल उठता ही नहीं हैं, क्योंकि यह पूरा उपन्यास ही करैता गाँव की भाषा में लिखा हुआ है, लेखक भी इसी भाषा में बोलता हैं, पात्रों के मानस प्रवाह में। करैता गाँव में रहने के बावजूद प्रवृत्ति–योग्यता–वातावरण आदि के कारण भी पात्रों की भाषा में पर्याप्त अंतर देखा जा सकता हैं। पटनहिया भाभी, दुक्खन, दयाल, खलील, शशिकान्त, विपिन, जगेसर और कुर्क अमीन की भाषा देखकर इसे समझा जा सकता हैं। इस पर कुसुम वार्ष्णेय लिखती है–"भावना परिस्थिति

और पात्र के अनुरूप लेखक की भाषा–शैली ने सब कुछ को बड़ा स्वाभाविक और अकृत्रिम बना दिया है।''.....[101]

''गली आगे मुड़ती है'' में पात्रानुकूलता भाषा के वैंविध्य का अध्ययन हो सकता है। उसमें विभिन्न क्षेत्रों से विविधस्तरीय पात्र आये हैं। वैसे डॉ0 सिंह ने सभी को काशी में ढली काशिका की ठनक में बाँधा हैं।

डॉ0 विवेकी राय के शब्दों में–''सड़क की भाषा, गली और घाट की भाषा, गुंडो और पंडो की भाषा, अभिजात वर्ग की भाषा, सामान्य जन की लोक भाषा, छात्र नेताओं की सामान्य और आक्रोश की भाषा, घेराव पथराव की भाषा समूचे भाषा–भेद की सूक्ष्म परख और प्रयोग क्षमता कथाकार में निखार पर हैं।''......[102]

''नीला चाँद'' में लोक भाषा युक्त स्वरूप है, जो लेखक के अधिकांश लेखन का प्रतिनिधित्व करता हैं। 'नीला चाँद' जैसी संस्कृत निष्ठ भाषा में भी लोकभाषा की चासनी और लोकभाषा युक्त लेखन में भी संस्कृतिक शब्दों का बादाम–पिस्ता के टुकड़ों जैसा इस्तेमाल बहुत सहज व आम हैं।

''शैलूष'' की भूमिका में डॉ0 सिंह लिखते हैं– ''आत्मन्, क्या आप चाहते है कि आपकी धरती की तस्वीर केवल आप तक ही सीमित रहे। पूर्वांचल की सोंधी महक तो ज्यों की त्यों बरकारार है। इसमें सिर्फ उपन्यास की भाषा को इस तरह ढाल दिया गया है कि वह अमृतसर से असम तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक जो लोग हिन्दी जानते हैं, उन तक मेरी और आपकी व्यथा–कथा सीधे पहुँचें।''.....[103]

''मंजूशिमा'' में अद्भुत भाषा का मिश्रण मिलता हैं। जिसमें पत्रों और डायरियों के आधार पर भाषा–शैली को दर्शाया गया है।

"दिल्ली दूर है" और **"कुहरे में युद्ध"** कृतियों में लोक भाषा और ऐतिहासिक भाषा का सम्मिश्रण हैं। पात्रों के अनुकूल भाषा सुस्पष्ट एवं सजीवता को दर्शाती हैं।

डॉ0 सिंह की भाषा शैली में विविधता और व्यवहारिकता के संकेत स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं उनकी अपनी एक सोच हैं जो कृतियों के माध्यम से समाज के समक्ष उभरकर सामने आयी हैं।

2. लोक भाषा का हिन्दीकरण

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के भाषा प्रयोग की सबसे खास विशेषता है–अपने कथ्य के मुताबिक भाषा को मोड़ देना। डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय लिखते है–"स्थानीय भाषा और खड़ी हिन्दी का स्पृहणीय संतुलन"......[104] 'अलग–अलग वैतरणी' में तो यह अपने उच्चतम शिखर पर है।

डॉ0 विवेकी राय लिखते है– "उपन्यास में खड़ी बोली को भोजपुरिया मोड़ दिया गया है, उसे बनारसीपन की चासनी में ऐसा ढाला गया हैं, कि मन पर उसकी मिठास बैठती जाती है। प्रेमचन्द्र की भाषा से इसका फर्क बतलाते हुए विद्वान और समीक्षकों का कहना है कि प्रेमचन्द्र ने खड़ी बोली का लोकभाषाकरण किया था और यहाँ लोक भाषा का हिन्दीकरण किया गया है।"....[105]

भाषा के प्रमुख परिवर्तन

(अ) ये और यह के लिए 'ई' का प्रयोग आया है–

उदाहरण–"ई बाबू साहब है, ई पंडित जी है, ई मुखिया जी है"......[106]

(ब) इसी तरह 'वह' और 'वो' के लिए 'ऊ' का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण–"ऊ न होवै देव हम सत्यानासी"....[107] "ऊ मुँह के बल चित"......[108]

(स) 'कोई' के लिए 'कौनो' का और क्यों के लिए 'काहै' आदि प्रयोग हुए हैं।

उदाहरण–"ई का कौनो भले मानुस के लच्छन है"......[109]

(द) गंवई अंदाज में पुकारे जाने वाले नामों का प्रयोग–

हरिप्रसाद–हरिया, श्रीप्रसाद–सिरिया, छबीलचंद–छबिलवा, पागल–पगले

इसके अलावा शब्द प्रयोग के माध्यम से सर्वाधिक हिन्दीकरण किया गया है।

3. शब्द प्रयोग

शब्द प्रयोग को लेकर डॉ0 शिव प्रसाद सिंह की कलाक्षमता अद्भुत हैं। शब्दों के चयन और फिर समान क्षेत्र व जाति वाले शब्दों के सटीक प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं। 'अलग अलग वैतरणी' शीर्षक है तो भूमिका को तटचर्चा तथा 'गली आगे मुड़ती है' में नुक्कड़ सभा नाम देना तथा शैलूष में आत्मन्, इसका सबसे सशक्त उदाहरण हैं।

रामानंद से कहे गये हरिमंगल के वाक्य–"रूपचंद पर दृष्टि रहे, चंदरूप पर नहीं"......[110] से व्यंजित अर्थ भी शब्द प्रयोग क्षमता का उत्कृष्ट नमूना हैं। अलग–अलग वैतरणी में भी "एक अर्थहीन संतोष का अर्थभरा विश्वास"......[111] की सूक्ष्म अर्थव्यंजना भी शब्द योजना की कुशलता का प्रमाण हैं।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के शब्द भण्डार की अतुल राशि में हिन्दी शब्दों के अलावा मुख्य रूप से देशज, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द है–

1. देशज

इन्हें लोक प्रचलित, स्थानीय और ग्रामीण शब्द भी कह सकते हैं। इनके दो रूप द्रष्टव्य है – एक तो ठेठ ग्रामीण और दूसरे ऐसे, जो अपने तद्‌भव रूप में तत्सम (शुद्ध) को मुखर करते रहते है–

(अ) ठेंठ ग्रामीण शब्द – कलौंज, डॉक, गोड़, परती, लेवन, लौछार, ताकना, साँसत, तौंक, गोंइडे, ठार, घोड़पराड़, खांची, अगोरना, कल्ले, ओखली, कुल्ला दतौन, अनसाने, अद्याना, बहुरना, मेड़, पुरनियाँ, फिसड्डी, चियारना, उतान, चंगा, टरकाना, चट्टन, टमकना आदि

(ख) तत्सम के तद्‌भव में अन्तरित शब्द– डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के साहित्य में प्रयुक्त अधिकांश शब्दों के शुद्ध रूपों तक पहुँचा जा सकता है, पर यहाँ उतने ही शब्द आ सके है। कुछ शब्दों में स्वरों–व्यंजनों के आगम, लोप तथा विपर्यय के साथ अर्थ संकोच, अर्थ विस्तार आदि भाषा विज्ञान के तमाम रूपों के प्रयोग सहज उपलब्ध और लक्ष्य हैं।

उदाहरण– ज्योति–जोत, पोषण किया–पोसा, आशीष–आसीस, किरिया–करम, क्रिया–कर्म, यजमान–जजमान, गंधर्व–गन्हरप, ललाट–लिलार, व्यथा–बिधा, आभीर–अहीर, कंधा–कान्ह, वस्त्र–बस्तर, उऋण–उरिन, निभ–निबह, पिशाच–पिचास, वर्जना–बरजते है, अन्यत्र–अनतैं, यत्न–जतन, द्वार–दुआर, नियम–नेम आदि।

2. संस्कृत के शुद्ध शब्द – किंचित, अकृत विद्य, श्लथ, अश्रुतपूर्ण, हृत्कंप, ईषत्, प्रणिपात, सद्यः, कर्णाभिराम, महोदधि, वदान्यता, अवांच्छित, विद्यमान, ग्रीष्मावकाश, युग्म, संपुट, तदाकार, आदित्य, ऊर्ध्व, चक्षु वृहद, रम्य, पुष्पपाद, दूर्वा, रक्षिता, दयार्द्र, पुष्पोधान, तमित्, पृच्छन्ति, स्वनेव, धीरो, यदग्रमीत,

मरणं, मंगलं, सफलं, यत्र, सैषा, गदाधरः, लोकेपि, आम्रपल्लव, वाक्युद्ध, स्थानापन्न, सर्वत्र, मार्गच्युत, सोपान, व्रात्य, हतनाद, वाचालता, अतिथि, त्रयोदशाह, वृगलात्मा, तंत्र, गमन, शुभेच्छापूर्ण आदि शब्द संस्कृत व संस्कृतनिष्ठ शैली में प्रयोग किये गये हैं।

3. उर्दू शब्द – यहाँ उदाहरण के लिए वहीं शब्द लिख रहे है जो पढ़ते समय उर्दू होने का आभास दे देते हैं। इंतकाल, हिफ़ाजत, मायूस, कम्बख्त, काफूर, तफसील, मुआयना, तफरीह, लाजबाब, फ़िदा, फिजुलखर्ची, अहसानमन्द, गवारा, मुस्तैदी, पेशानी, बेतरतीब, वेतकल्लुफ, बदस्तूर, बेजार, फब, जिस्म, इबारत, इत्तफाक, जबांदानी, तजुर्बेकार, जईफी, तबदीली, हिदायत, मुगालता, शुहरत, मुखालिफ, गुमनाम, वाकई, फरियाद, आजिज, वाकिफ, इत्मीनान, जज्ब, फीरोजी, जुबान पर लगे कस्द के ताले, शिकस्त, तहकीकात, इजहार, खुदमुख्तारी, वजूद, गाफिल, जर्द, इश्तहार, आमदरफ्त, गारत, शिनाखत, आदमकद, आसूदगी, खैरख्वाह, आजमाइश, मार्फत, तरद्दुद, पुश्तकबाजी, इनायत, हुनरमंद, खल्ती, मुखातिब, गफलत, जज्बात, निशाखातिर, कैफियत, हिकारत आदि।

4. अंग्रेजी शब्द – अंग्रेजी के ऐसे शब्द को शामिल नहीं किया गया है, जो हमारे जीवन में एकदम धुलमिल गये हैं– डिक्लेयर, सोशल, सिम्फनी, सोपकेस, ऐलान, ऑक्सस, पिरैमिड, सब्सीटूट, चाँस, सेटंस, अप्लाई, पब्लिक, डाउन, वारंट, कमेटी, मरडरकेस, कैरियर, रेलिंग, मेम्बर, क्लिक, इंटरवल, साइडपार्टनर, प्राइवेट प्रैक्टिस, डिस्पेंसरी, रिजल्ट, मूड, डम्प, स्कीम, सेटिल, सप्लाई, परेड, टाइट, स्पेशल केस, टेम्परेचर, वन वे ट्रैफिक, गारंटी, स्प्रिंग, क्रीम, रिट्रीट, फ्रंट, ड्रिलिंग, आर्डर, माईगॉड, एलर्जी, मोनोपोली, बॉयोलॉजिकल, अनफिट, ड्यूटी बाउंड, एक्जैक्ट, कर्बेचर, एडबाँस, चेलेन्ज,

बार्डर, फ्लेंमिंग, सनसेट, ऑडिट, क्लासफेलो, पॉकेट, एडीशन, पवर्ट, प्योर, ट्रेण्ड, प्रजेण्ट, डिलीवरी, प्वाइंट, मास्टरसेल आदि

5. बाजारू शब्द और गालियाँ – बोलचाल की भाषा में प्रयोग होने वाले बहुत से सस्ते सड़कछाप शब्द आये है– छप्पनछुरी, बकडेर, घोंचू, लीचड़, निहंग, गावदी, माल, भकचोनरदास, रफूचक्कर, गण्डगोल, फिसड्डी, गुलछर्रे, मटरगश्ती, जानमारू, अण्टाचित्त, गपोड़ा आदि

गलियाँ कुछ साफसुथरी भी प्रयुक्त हुई है, पर कुछ एकदम अश्लील–भरमुखे, सत्यानासी, हरामी, बेहूदा, कुलच्छन, दोगला, सूरतहराम, कमीना, सोहदा, दाढ़ीजार, भकचोन्हर, बुड़बक, चूतिया, मउंगा, साले, चमरचिल्ली, बेहया, भड़वापन, भुच्चड़, कमीना डोम की औलाद, आवारा, लुच्चा, मुँह झाँसा, नमकहराम, कमरनिखट्टू, कमरजली, मक्कार, हरामजादी, नासपीटा, हग मारना, उल्लू का इत्र आदि

6. ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग – छुवन में झनझनाहट, गुस्से से कटकटाना, गुस्से में रेंड की तरह लड़खड़ाना, पानी की खड़खड़ाहट, मुर्गे की बाग क् क् क् कु कु हूँ कू...., डमरू की आवाज–डगड़–डगड़ डमक–डमक, बूट पहने चलने की आवाज, खड़र–खड़र–खड़र, गल गलाते रहे, खौसियाया, टिटकारा, सटर–पटर, युद्ध में तलवारों की आवाज, आदि।

7. मुहावरे–डॉ0 सिंह ने अपने कथा–साहित्य में बहुत मुहावरों को सम्मिलित किया है– गंगा के दाहने में डालना, आँखो में गूलर फूकना, छाती पर मूंग दलना, घिग्घी बँध जाना, नाक में दम होना, आँख की लकड़ी समझना, आँखों में धूल झोंकना, कान पर जू रैंगना, ताँता बँध जाना, आँखो से ओझल होना, दिन में तारे नजर आना, पौ बाहर होना, विस्मिला ही गलत

होना, खटिया कटना, साँस टँग जाना, जी मुँह को आना, निहाल हो जाना, फूले न समाना, डूबते को तिनके का सहारा, लाले पड़ना, पानी भरना, बधिया बैठ जाना, नाक पर माछी बैठने न देना, फूटी आँख न सुहाना, चिनगारी फूटना, आँखों में खून उतर आना, पगड़ी उछालना, दुम हिलाते कुक्कुर की दुलत्ती मारना, तलवा चाटना, सब्जबाग दिखाना, नाक रगड़ना, नानी मरना, छठी का दूध याद आना, तूती बोलना, तीन–तेरह पढ़ाना, मोटाई का मंगल गाना, हवन करते हाथ जलना, दाल गलना, आस्तीन का साँप होना, कान में तेल डालना हाथ पांव फूलना, नहले के दहला, पेट का पानी पचना आदि

8. कहावतें – देसी चिरई, मरहठी बोल, नानी के आगे, न निहाल का बखान, हर्रे लगे न फिटकरी माल चोखा, कहाँ राजा भोज, कहाँ भोजुआ तेली, खायेगे गेहूँ, नहीं रहेगे एहूँ, बाप न मारी मेढ़की, बेटा तिरंदाज, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, एक तो तितलौकी दूसरे नीम चढ़ी, जेसी करनी वैसी भरनी, गरीब का घर जरै गुण्डा हाथ सेकें, जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ, जइसनदेस, वाइसन भेस, न साँप मरे न लाठी टूटे, चिरई के जान जाये खवैया को सवादै नहीं, बड़ बतियाये, चमार लतियाए, नेकी कर दरिया में डाल आदि

विविध शैली : शिल्प विधान

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के शिल्प विधान के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हैं। शिल्प रचना में नये प्रयोग किये हैं लेकिन ये प्रयोग कथ्य से अनिवार्यता जुड़े हैं।

शैली–शिल्प या अभिव्यंजना पद्धति में भी लेखक की अपनी एक विशेषता है वह परिस्थिति और कथ्य के अनुसार कहीं व्यंजक और कहीं चित्रात्मक, कही सरल सीधी, सपाटबयानी और पैनी धार की तरह चुभती हैं। डॉ० त्रिभुवन शुक्ल के अनुसार –

"पात्र व शिल्प विधान के अन्तर्गत रचनाकार के द्वारा विभिन्न चारित्रिक स्थितियाँ मन की विविध द्वन्द्वात्मक अवस्थाओं और पात्रों के आचरण को प्रकट करती हुई, रोमांचक स्थितियाँ दिखाई देती है।''......112

डॉ0 सिंह ने अपने कथा–साहित्य में शिल्प और शैली का भरपूर प्रयोग किया है। जिनमें प्रमुख शिल्प विधान उल्लेखनीय है–

संवादात्मक शिल्प

संवादों के माध्यम से ही कथा सृजन डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के शिल्प विधान का मेरूदण्ड बन गया हैं। 'नीला चाँद' जैसे बड़े उपन्यास का भी तीन चौथाई संवादों में ही बँधा है। 'शैलूष' उपन्यास में छोटे–छोटे संवादों की लेकर रचा गया है। 'मंजूशिमा' में पिता पुत्री के संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। औरत उपन्यास में संवादों का सहारा लेकर पूरी कृत का गठन किया गया है।

विविध गीतों के प्रयोग का शिल्प

"मंजूशिमा'' में प्रमुख्यतः गीतों का प्रयोग मिलता है जो शीर्षको के माध्यम से प्रस्तुत किया गये हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' उपन्यास में गिने–चुने, दो–चार गीतों के टुकड़े ही मिलते हैं।

पुष्पा गाती है–

> ''ऊँचे–ऊँचे बइठे मोरे गउवाँ के लागवा रेना न न
> रामा खलवा में बइठें मोरे बाबा रे ना न न न
> रामा तेही ठिग ठाढ़ी रानी चन्द्रा रे ना ा ा ा ''......113

मंजूशिमा जैस लघु उपन्यास में पचासों गीत कविता की पक्तियाँ आयी है –

"अबके सवनवां बाबुल भइया के भेजा

जियरा अकुलाई हो।

संग कै सखी सब झूलत होई है,

मोहैं कछुओ न सुहाइ हों।

अंचरा बाबुल आज भीजत मोरा

असुवन नी बहाइ हो।"......[114]

वैश्वानर जैसे वृहद उपन्यास में गीतों की भरमार है। धन्वतरि गीत गाती है–

"मनुष्यों के स्वामी अग्ने

तेजयुक्त तू होता है जब

तू सर्वत्र दीप्तिमान सबका सेशोधक

तू बन से, तू औषधि से"......[115]

'दिल्ली दूर है' में भी आनन्द वाशेक धीमे पर मीठे स्वर में गा रहा था।

"'अकुलकुलमयन्ती चक्रमध्ये स्फुरन्ती।

मधुर मधु पिवन्ती साधकान् तोषयन्ती'.....[116]

3. संदर्भग्रन्थ सूची

1. ''शैली विज्ञान'' डॉ0 भोलानाथ तिवारी पृ0 9
2. ''शैली विज्ञान'' डॉ0 भोलानाथ तिवारी पृ0 4
3. ''शैली विज्ञान'' डॉ0 भोलानाथ तिवारी पृ0 14
4. ''शैली विज्ञान'' डॉ0 भोलानाथ तिवारी पृ0 11
5. 'महाभाष्य' पंतजलि, 2–1–3 झन्झर संस्करण, पृ0 563
6. ''शैली विज्ञान'' डॉ0 भोलानाथ तिवारी पृ0 12
7. 'हेनरी नोरियन', पृ0 125/5
8. 'स्पेंसर' पृ0 10–11
9. ''शैली विज्ञान'' डॉ0 भोलानाथ तिवारी पृ0 22
10. डॉ0 सत्यपाल चुद्य : प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास की शिल्प विधि पृ0 208
11. सं0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्यकोश भाग–1, पृ0 837
12. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 66
13. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 14
14. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 437
15. ''नीला चाँद'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 33
16. ''नीला चाँद'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 88
17. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 17
18. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 23
19. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 8
20. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 10
21. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 137
22. ''औरते पाकिस्तान बनाम हिन्दुस्तान'' विश्वनाथ शर्मा पृ0 1
23. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 15
24. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 78
25. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 116

26. "औरत" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 181
27. "गली आगे मुड़ती है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 100
28. "गली आगे मुड़ती है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 133
29. "दिल्ली दूर है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 306
30. "दिल्ली दूर है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 39
31. "दिल्ली दूर है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 409
32. "वैश्वानर" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 95
33. "वैश्वानर" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 94
34. "कुहरे में युद्ध" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 20
35. "वैश्वानर" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 31
36. "चिन्तामणि भाग–1" रामचन्द्र शुक्ल पृ0 228
37. "अलग–अलग वैतरणी" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 86
38. "अलग–अलग वैतरणी" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 311
39. "नीला चाँद" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 31
40. "नीला चाँद" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 121
41. "मंजूशिमा" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 97
42. "मंजूशिमा" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 30
43. "शैलूष" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 64
44. "शैलूष" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 75
45. "औरत" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 37
46. "औरत" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 43
47. "गली आगे मुड़ती है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 126
48. "गली आगे मुड़ती है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 131
49. "दिल्ली दूर है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 254
50. "दिल्ली दूर है" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 396
51. "वैश्वानर" डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 325

52. द्विवेदी युग की हिन्दी गद्य–शैलियों का अध्यन–डॉ0 शंकर दयाल चौऋषि पृ0 85
53. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 41
54. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 66
55. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 323
56. ''नीला चाँद'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 243
57. ''नीला चाँद'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 253
58. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 115
59. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 133
60. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 129
61. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 35
62. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 43
63. ''गली आगे मुड़ती है'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 35
64. ''गली आगे मुड़ती है'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 37
65. ''वैश्वानर'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 188
66. ''वैश्वानर'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 325
67. ''कुहरे में युद्ध'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 70
68. ''कुहरे में युद्ध'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 71
69. 'काव्यादर्श' : आचार्य दण्डी पृ0 1/40
70. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 266
71. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 452
72. ''नीला चाँद'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 221
73. ''नीला चाँद'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 242
74. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 56
75. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 83
76. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 27

77. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 32

78. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 37

79. ''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 145

80. ''दिल्ली दूर है'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 150

81. ''दिल्ली दूर है'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 477

82. ''दिल्ली दूर है'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 518

83. ''वैश्वानर'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 23

84. ''वैश्वानर'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 50

85. ''कुहरे में युद्ध'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 161

86. ''दिल्ली दूर है'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 428

87. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 305

88. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 49

89. ''अलग–अलग वैतरणी'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 372

90. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 133

91. ''शैलूष'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 19

92. ''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 82

93. ''वैश्वानर'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 327

94. ''उपन्यासएवं तत्व विधान'' डॉ0 श्री नारायण अग्निहोत्री पृ0 195

95. ''काव्य के रूप'' बाबू गुलाब राय पृ0 204

96. ''उपन्यासएवं तत्व विधान'' डॉ0 श्री नारायण अग्निहोत्री पृ0 207

97. ''सृष्टा और सृष्टि'' सम्पादक–पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु पृ0 281

98. इन्हें भी इंतजार है–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह , फ्लैप पर

99. 'डॉ0 शिव प्रसाद का कथा साहित्य' डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी पृ0 339

100. 'समीक्षा'– अप्रैल–जून 1974, पृ0 13–14

101. सम्मेलन पत्रिका, भाग–57, संख्या दो, पृ0 85

102. ''समीक्षा'' अप्रैल–जून 1974 पृ0 31

103.'शैलूष' भूमिका – पृ016

104.समीक्षा के सन्दर्भ – भगवत शरण उपाध्याय, पृ0 167

105.दिशाओं के परिवेश–सम्पादक ललित शुक्ल पृ0 32

106.अलग–अलग वैतरणी–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 37

107.मुरदासराय, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 141

108.अलग–अलग वैतरणी, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 223

109.अलग–अलग वैतरणी, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 243

110.गली आगे मुड़ती है, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 131

111.अलग–अलग वैतरणी, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 172

112.हिन्दी अनुशीलन (पत्रिका) अप्रैल 'सितम्बर 1994' पृ0 137

113.अलग–अलग वैतरणी, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 333

114.मंजूशिमा, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 148

115.वैश्वानर, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 65

116.दिल्ली दूर है, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 363

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का उद्देश्य

१. उपन्यासों की मूल संवेदना

२. उपन्यासों में निहित विचार सूत्र

३. समस्याएं एवं समाधान

४. उद्देश्य की वर्तमान से संगति

   १. अलग-अलग वैतरणी

   २. नीला चाँद

   ३. मंजूशिमा

   ४. शैलूष

   ५. औरत

   ६. गली आगे मुड़ती है

   ७. दिल्ली दूर है

   ८. वैश्वानर

   ९. कुहरे में युद्ध

५. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सप्तम अध्याय

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का उद्देश्य

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का उद्देश्य चरित्र रचना, जीवनबिम्ब और मानवीय व्यवहार की संरचना हैं। इस संसार में वास्तविक चरित्र व्यक्ति के रूप में रहते हैं चरित्र से व्यक्तित्व एवं कृतित्व का निर्माण होता हैं, "चरित्र ही मानव जीवन का दर्पण हैं।" किन्तु नाटकीय पात्र अपनी विधा में संसार में ही बनते हैं और क्रियारत रहते हैं। पात्रों के चरित्र बन जाने की प्रक्रिया में मूल संवेदनायें, निज बोधरूपा, और जीवन का सक्रिय उद्देश्य नजर आता हैं। चरित्र के द्वारा ही मानवीय लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती हैं। उपन्यासों की मूल संवेदना में वस्तुतः मानवीय प्रकृति और उनके बीच का क्रिया व्यापार किसी भी चरित्र की मूल संवेदना के लिए अनिवार्य तत्व होते हैं। उपन्यासों की मूल संवेदना में स्वच्छन्दतावाद, आदर्शवाद एवं कर्मवाद, निजी जीवन दर्शन तथा इतिहास की वस्तु आदि सभी बातों का मुख्यतः समन्वयीकरण किया जाता हैं। मूल संवेदना में कर्म एवं सृजन का महत्व छिपा हुआ हैं, संवेदना से जीवन–दृष्टि, जीवन अनुभव, ज्ञान और कल्पना का सामंजस्य होता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के विभिन्न उपन्यासों– जैसे– नीला चाँद, अलग–अलग वैतरणी मंजूशिमा, शैलूष, औरत, गली आगे मुड़ती हैं, दिल्ली दूर हैं, वैश्वानर कुहरे में युद्ध, में मूल संवेदनाओं की जन चेतना और मानवीय मूल्यों की स्थापना का अद्भुत कौशल दिखाया गया हैं।

मूल संवेदनाओं का सम्बन्ध गुणात्मक और मात्रात्मक प्रसंगो, भावों और चरित्र से होता हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' में मूल संवेदनाओं का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के ग्रामीण रिश्तों में जैसे– फूला, कनियाँ, पुष्पी, चचिया आदि में झलकता हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का उद्देश्य समाज को सही प्रेरणा देना एवं सामंजस्य के ज्ञान को समाज में विस्तृत करना हैं।

1. उपन्यासों की मूल संवेदना

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का पहला उपन्यास "अलग–अलग वैतरणी" है जिसमें मूल संवेदना विभिन्न प्रकार के ग्रामीण रिश्तों में आदर्श, मानवीय मूल्यों की स्थापना का सामंजस्य निहित है। मूल संवेदनाओं से मानवीय विचारों का आदान–प्रदान और आन्तरिक चेतना का स्पष्टीकरण लेता हैं। मूल संवेदना पुरूष एवं नारी पात्रों दोनो में पायी जाती हैं जिसके आधार पर मानवीय रिश्तों की सार्थक पहचान और सार्थकता के संकेत समय पर अंकुरित होते रहते हैं, जिसमें कि एक नये सृजन का निर्माण होता है। मूल संवेदनाओं से विस्थापित मूल्यों से काव्य चेतना, नाट्य–बोध तथा सौन्दर्य बोध का वास्तविक ज्ञान होता हैं और मूल संवेदनाओं से ही मानवीय आचार–विचार व्यवहार और गतिविधियों का आकलन किया जाता है।

भारतीय संस्कृति और समाज में संवेदनाओं के आधार पर विभिन्न परिवारों और समाज में जन सहयोग करने की भावना का निर्माण होता हैं, तथा आदर्श का सामंजस्य लोकमंगल और हित की भावना का नवीनीकरण होता हैं, मूल संवेदना से पात्रों में काव्यात्मक सघनता प्रगाढ़ता और रहस्यमयता की प्रवृत्ति अनेक रूपों में बलवती बनाती हैं, मूल संवेदनाओं एवं चारित्रय पात्रों का जीवन उद्देश्यात्मक हो जाता हैं।

'अलग–अलग वैतरणी' मूल संवेदनाओं को उभारने के लिए डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने जीवन मूल्यों, शक्तियों का संघर्ष और दर्शन का एक ऐसा पूरा परिवेश खड़ा करते हैं, जिसमें आदर्शवाद की वह प्रवृत्ति उभरे बिना नहीं रहती जिसमें विभिन्न पात्र मूल संवेदनाओं के लिए हुये सत्य और असत्य का संघर्ष करता हैं।
'नीला चाँद' में भुवनादेवी और कीरत जैसे पात्रों में मूल संवेदनाओं की झलक पारम्परिक और ऐतिहासिक हैं जिनमें धीरता, वीरता, दया, क्षमा, त्याग और सेवा जैसी मानवीय चेतना की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती हैं। मूल संवेदनाओं से

चारित्रक गुण दोष का भी मूल्यांकन किया जाता हैं, जो पात्रों की महानता और दुर्बलता का स्पष्टीकरण करते हैं। ''नीला चाँद'' भी अमा से ओझल प्रकाश की मुक्ति चेतना इच्छाशक्ति का प्रतीक हैं।

''नीला चाँद'' में काशी प्रांतर के गुवालों, नटो, गोड़ो आदि के जीवन, खान–पान, रहन–सहन, सोच–विचार, संस्कार, स्वभाव और नाच–गाने आदि का काफी वर्णन हुआ है। काशी के अलावा महोबा, खजुराहों आदि चंदेल कालीन राज्यों और वहाँ के जंगलों में रहने वाली अनेक जातियों, उनकी रीति–नीति व संस्कृति आदि के समुचित उल्लेख के साथ उनके नाच–गानों के साथ उनकी सभी मूल संवेदनाएं व उद्‌देश्य जुड़े थे।

''मंजूशिमा'' उद्देश्यात्मक एवं प्रेरणात्मक उपन्सास है जिसमें जीवन की संवेदनाओं का सही मूल्यांकन किया जा सकता हैं। 'मंजूशिमा' के एक पात्र दूसरे पात्र के नजदीक आने का प्रयास करता हैं जिसके द्वारा कर्तव्य बोध का ज्ञान होता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास मंजूशिमा में वस्तुतः मूल संवेदना उन पात्रों के बीच घटित होती हैं, जो ज्ञान सम्पन्न जागरूक व्यक्ति हैं, भले ही वह ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता से जुड़े हो उनका अपना एक आत्मिक और बौद्धिक स्तर है। उनके क्रिया–कलाप जन साधारण हैं परन्तु उसमें बुराइयाँ, विसंगतियों और कुरीतियों का सम्मिश्रण हैं। जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जीवन की सार्थकता की खोज में रात दिन बनते और बिगड़ते हैं। मूल संवेदनाओं से देव–दानव का विभाजन होता है, और उनमें अहम्, हीनता, प्रतिशोध, वासना आदि का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन किया जा सकता हैं। डॉ0 सिंह के उपन्यासों में संघर्ष तथा मानवीय भाषा का चित्रण किया गया हैं तथा जीवन के वास्तविक आदर्श एवं कर्म के सम्मिश्रण का ज्ञान मिलता हैं।

''शैलूष'' उपन्यास में एक पराशक्ति के रूप में नारी के प्रभावशाली स्वरूप की अवधारणा के रूप में उनको व्यक्त करती हैं। मूल संवेदनाओं की एक अस्तित्ववादी पहचान हैं। इस उपन्यास में बदकिस्मत जिन्दगीं की गाथा को दर्शाया गया हैं। ''शैलूष'' लोक–संस्कृति की पृष्ठभूमि पर एक सशक्त उपन्यास कृति हैं। खानाबदोश के जीवन के संघर्षो को और उनकी मूल संवेदनाओं को परत–दरपरत उकेर कर संजोया हैं। नट जाति की संवेदनायें अन्य जातियों से भिन्न होती हैं। उनकी मूल संवेदनायें विभिन्न प्रकार के रीति–रिवाजों, तौर तरीके और संस्कृति से जुड़ी हुई हैं। संस्कृति तथा सभ्यता का आपस में गठबन्धन हैं, डॉ0 सिंह ने मानव को संस्कृति से परिचित कराया हैं, जीवन को निरपेक्ष बनाने का प्रयास किया हैं 'शैलूष' का मुख्य उद्‌देश्य यही हैं।

यायावरी जीवन में घटने वाली तमाम बाहरी शक्तियों के दबाब, अत्याचार, अन्याय और छल–कपट आदि मूल संवेदनाओं को डॉ0 सिंह ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन्त कर दिया हैं। जीवन की मूल संवेदना–क्षमता सच्चाइयों और मानवीय संवेगो और संवेदनाओं सहित चित्रण भी उपन्यास में उभरकर सामने आया हैं। कबीलाई जीवन के हिस्सों में आये अभाव और अस्मिता के संघर्ष को साकार करने वाले डॉ0 सिंह इस सम्बन्ध में कहते हैं –

''यायावर जीवन, जरायम पेशा, खाना–बदोश नटो की जिन्दगी, मैं दस वर्ष की उम्र से न केवल देखता रहा, बल्कि दुःस्वप्न की तरह वह मेरी जिन्दगी पर छायी रही – इस अपढ़, अभिष्ट, क्लेश भरी जिन्दगी को भाषा बाँध पायेगी? कोशिश हैं।''........[1]

कबीलाई जीवन और उनमें पाई जाने वाली विस्मता, गरीबी, भावुकता, आशावादिता आदि मूल संवेदनाओं तथा उनकी लोक–संस्कृति का गहन चिन्तन और अभिव्यक्ति को बताया हैं। कबीलाई जीवन की मूल संवेदनाओं का सम्बन्ध निचले तबके से हैं। डॉ0 सिंह ने मौसी, शब्बो, रूपा, लालूनट, अमरत, मूंगा, माला, देविका, जुबेदा और ताहिरा जैसे पात्रों के साथ भावात्मक सम्बन्धों के जोड़ पर

उनकी मूल्य संवेदनाओं को व्यक्त किया है। डॉ0 सिंह ने कबीलाई जीवन की भीतरी दास्तान एवं उनके जीवन के संस्मरण को "शैलूष" नामक उपन्यास के द्वारा सांस्कृतिक धरातलीय जीवन के रूप में प्रस्तुत किया हैं।

संस्कृति जीवन की मुख्य धारा हैं, संस्कृति के द्वारा जीवन में अलौकिकता, अनुपमता, एवं प्रामाणिकता का विकास होता हैं संस्कृति से जीवन उद्देश्यात्मक एवं निगूढ़ार्थ को प्राप्त कर सकता हैं।

मूल संवेदनायें हमेंशा सामाजिक साहित्यक, पारिवारिक, पारम्परिक और पौराणिक स्थितियों को उजागर करती हैं। उद्देश्य में यथार्थ और नियति के स्पष्ट संकेत दिखलाई पड़ते है जो नई–नई कसौटियों से परखी जाती हैं। उद्देश्यात्मक विचारधारा मानवीय जीवन में कोलाहल पैदा करती हैं जिनसे कई प्रकार के रचनात्मक और सकारात्मक विचारों का निर्माण होता हैं।

"औरत" उपन्यास में डॉ0 सिंह ने मूल संवेदनाओं की नवीनतम कड़ी जोड़ी हैं, जिसमें भारतीय नारी की संवेदनाओं, व्यक्तित्व, कृतित्व का सही मूल्यांकन कर वास्तविकता को उजागर किया हैं। औरत की मूल संवेदनाओं, व्यथा, यथार्थता का विभिन्न रूपों में उनका निरूपण किया हैं। उपन्यास के प्रारम्भ से अन्त तक औरत का अस्तित्व हावी हैं, इसका नाम शिवेन्द्र है जो एक समाजशास्त्री हैं। शिवेन्द्र एक व्यवहारिक व्यक्ति भी हैं।

शिवेन्द्र की मूल संवेदनायें नारी के व्यक्तित्व के लिए अलग–अलग हैं। 'औरत' उपन्यास में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने उसकी मूल संवेदनाओं को अन्तरमन में छुपी तड़प उसके स्वाभिमान और कमजोरियों को साकार रूप दिया है, तथा उसके मन की दुर्बलता और वीरता से सम्बन्धित मूल संवेदनाओं को भी एक व्यवस्थित परणिति के रूप में व्यक्त किया है जो मानवीय मूल्यों को अँधेरे में उजाले की सही

किरण देते हैं। उपन्यास का उद्देश्य मुख्य रूप से जीवन को भय रहित, सुरक्षित एवं निरापद बनाना चाहिए तथा जीवन की गतिविधियों को निर्दोष एवं निरपराध बनाना चाहिए। वास्तविकता यह हैं कि नारी आज की उपेक्षित हैं। समाज के कठोर बन्धनों से बँधी हैं। उसका प्रगतिशील होना इस सामाजिक व्यवस्था को सहन नहीं हो पाता है और उसे नीचे खीचने के लिए सभी सम्भव प्रयास किये जाते हैं।

भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु हैं।

"गली आगे मुड़ती हैं" उपन्यास में मूल संवेदना पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण और समाज की विभिन्न आदि कालीन समस्याओं से जोड़ने का प्रयास तथा सांस्कृतिक तथ्यों को उभारने की प्रवृत्ति की कुछ ऐसी विशेषतायें है जो "गली आगे मुड़ती है" के पात्रों को विशिष्ट बनाती हैं। पात्रों का क्रिया–कलाप जैसे भट्टाचार्य और रामकीरत दास जैसे व्यक्तियों के चित्रण में कुछ ऐसी मूल संवेदनायें है जो मानव को हृदय से बहुत निकट ला खड़ा करती हैं। जीवन कर्म के अनुसार नियात हो जाता है अच्छे कर्म करने से जीवन नियातित और पथ–भ्रष्ट की ओर मुड़ जाता हैं।

"गली आगे मुड़ती है" नामक उपन्यास से जीवन को नियोजित करने के उद्देश्य की प्राप्ति होती हैं जीवन अनुशासित एवं नियमबद्ध हो जाता हैं। उपन्यास का मूल उद्देश्य स्वतन्त्रता के बाद वाले वर्षो की एक अहम् राष्ट्रीय समस्या युवा–आक्रोश, युवा–असंतोष या युवा–विद्रोह को समर्पित हैं। एक संवेदनशील समाजचेता कथाकार होने के नाते डॉ0 सिंह ने इस उपन्यास में अपने समय की चुनौतियों से रूबरू होने का खतरा मोल लिया है। बनारस की गली में युवा–विद्रोह की अलग–अलग शक्लें दिखाई गई हैं या युवा रोमांस की इन्द्रधनुषी छवि।

डॉ0 सिंह ने पूरे विश्व में एक साथ धधकती हुई इस ज्वाला के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण रखते हुए साफगोई ढंग से उसके विभिन्न पहलुओं को अपनी संवेदनाओं के माध्यम से उभारा हैं।

"दिल्ली दूर है" उपन्यास में इस्लाम और हिन्दू दर्शन एवं अध्यात्म का संगम हैं। डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यास के माध्यम से पात्रों की आन्तरिक मूल संवेदनाओं पर प्रकाश डाला है, जिससे कि मानव उनके मूल्यों को समझे, समाज और परिवार उनका अनुसरण करके जीवन को उद्देश्यात्मक बना सकें उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करके यश एवं अपयश की श्रेणी में रखा जा सकता हैं। उद्देश्यात्मक सोच हमेशा मानवीय मस्तिष्क पटल पर छायी रहती हैं, जो समय–समय पर व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक दृष्टि से उनको उपयुक्त बनाता हैं। जिससे जीवन सुस्पष्ट, सुघट्ट एवं गम्भीर की श्रेणी में आ सकें। उद्देश्य हमेशा पारम्परिक और पारस्परिक होता है, जो मनुष्य के लिए उपयोगी और अनुपयोगी होता है। प्रत्येक व्यक्ति को उद्देश्यों का मूल एवं उनके उपमानों को समझना चाहियें। उद्देश्य महत्वपूर्ण होते हैं, जिसमें मनुष्य में विनम्रता, शान्ति एवं शीतलता का विकास हो सकें। डॉ0 सिंह ने जीवन को उद्देश्यों के द्वारा कुशल एवं सांस्कृतिक बनाने का प्रयास किया।

"दिल्ली दूर है" ऐतिहासिक उपन्यास में वर्तमान की चीख से मूल संवेदनाओं का विहंगम दृश्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है, वस्तुतः डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने मध्यकालीन जुझौती को केन्द्र में रखकर भारत की धरती पर प्रतिकूल आचरण और संस्कृति के संघर्ष के चित्रण के लिए दो खण्डों वाली उपन्यास की रूपरेखा बनाई हैं। 'दिल्ली दूर है' में महाराज त्रैलोक वर्मा की मूल संवेदनाओं को डॉ0 सिंह ने जन–जन तक पहुँचाया हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के ऐतिहासिक पात्रों की मूल संवेदनायें एवं मूल भावनाएँ कहीं न कहीं अध्यारोपित की जाती हैं। नई पीढ़ी की उन संवेदनाओं को

समझे यदि उन संवेदनाओं को जीवन में न उतारा जाये तो ऐतिहासिक उपन्यासों की क्या उपयोगिता हैं। ऐतिहासिक विचारधारा एवं उद्‌देश्य मनुष्य में ओजस्विता एवं तेजस्विता का निर्माण करता हैं। ऐतिहासिकता से अतीत के भावों एवं उद्‌देश्यों का पता चलता हैं। उद्‌देश्य कभी भी अप्राकृतिक, अस्वाभाविक नहीं होने चाहियें।

''वैश्वानर'' की मुख्य–मूल संवेदना प्राचीन काशी की लोक संस्कृति पर आधारित हैं। ''काशी यूँ तो डॉ0 सिंह के साथ सर्वदा रही हैं''।......[2] ''वैश्वानर'' का फलक बहुत वैविध्यपूर्ण है। इसका कथानक भी बड़ी सफाई से वैदिक परम्परा को उजागर करता है। उपन्यास में कला, इतिहास, प्राचीन संस्कृति की वैचारिकता स्पष्ट रूप से अंकित हैं तथा डॉ0 सिंह ने अपनी कला की स्पष्ट छाप छोड़ते हुए वैदिक परम्परा का आश्रय ग्रहण करते हुए धनवन्तरि की आयुर्वेदिक परम्परा को समेटा हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का मानवीय उद्‌देश्य एवं अवधारणा आम आदमी के विचारों से मिलती जुलती है, इसलिए वैश्वानर में वैदिक परम्पराओं को मूल संवेदनाओं से जोड़ा हैं। डॉ0 सिंह ने मानव ह्रदय और मस्तिष्क का विश्लेषण कर उसमें पायी जाने वाली संवेदनाओं का अवलोकन किया।

मूल संवेदनाओं में आत्मीयता, भक्तिपथ एवं रागात्मक मनः अनुकूल के संकेत स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। मानवीय जीवन को सर्वत्र और सामर्थ्य बनाने के लिए उन्हें जीवन में उतारकर व्यावहारिक बनायें जिससे मानव जाति का जीवन मूल्यवान बनें।

''कुहरे में युद्ध'' उपन्यास की मूल संवेदना ऐतिहासिक हैं। मध्यकाल से लेकर आजादी पूर्व तक भारतीय इतिहास, उथल–पुथल युक्त रहा है। अलक्षेन्द्र से लेकर शक और हूणो तक का उद्‌देश्य इस देश को लूटना मात्र था। इन शासकों

की उपेक्षा अलग थी उद्देश्य, समय और परिस्थितियों के अनुसार बनते और बिगड़ते रहते हैं। विक्षिप्त विचारधारा हमेंशा होती है जो कभी–कभी मानवीय जीवन को झकझोर देती हैं। मूल संवेदना के कारण ही मानवीय जीवन में कई प्रकार के उतार–चढ़ाव आते है जो एक नवीन जीवन को दृष्टि देने का प्रयास करते हैं। मानवीय मूल्यों में और मूल संवेदनाओं में आपस में एक तार्किक और बहुमूल्य गठबन्धन हैं। अलक्षेन्द्र शक और हूणो का हमेशा उद्देश्य भारत को पद्दलित कर उसको लूटना रहा। प्रत्येक अलग–अलग शासकों की अलग–अलग प्रकार की मूल संवेदनायें रही जो संस्कृति को ध्वस्त करती रहीं। 'कुहरे में युद्ध' उपन्यास में शासक–वर्ग की जीवन–पद्धति का ज्ञान होता हैं तथा उनके उद्देश्य क्रिया प्रणाली शस्त्र एवं सेना की उपयोगिता का मूल्यांकन किया जा सकता हैं शासक का उद्देश्य दुराग्रहों से रहित होना चाहिए। दुराग्राही जीवन मानव को कुरूप एवं दुस्कुल बनाता है। जीवन को अधिक उद्देश्यात्मक बनाने के लिए प्राचीन संस्कृति एवं नीतियों के मूल्यों को समझना चाहियें। भारतीय शासकों को आपसी कलह और मूलभूत संवेदनाओं का प्रत्यक्ष और परोक्ष दस्तावेज है। विष्णु मन्दिर का सांस्कृतिक गौरव को ध्वस्त करके 'कुहरे में युद्ध' कुतुबमीनार की भव्य इमारत का निर्माण हुआ इसका मुख्य कारण मूल संवेदनायें ही थी। जहाँ पर कुतुबमीनार है वहाँ विष्णु पद की पहाड़ी थी, जिस पर विष्णु मन्दिर था उसे तोड़कर मस्जिद कुब्बतेइस्लाम ऐबक के समकक्ष बनाई गयी थी, जिसे इल्तमस और अलाउद्दीन खिलजी ने आगे बढ़ाया था। इससे मालूम पड़ता है कि कुतुबुद्दीन ऐबक की मूल संवेदनायें धर्म के लिए अच्छी नहीं थीं। इसका श्रेय उसकी कट्टर इस्लामी मूल संवेदनाओं को जाता है। इतिहास में ऐसे बहुत से कटु सत्य हैं जिसमें कि मूल संवेदनाओं के द्वारा अतीत से वर्तमान काल निरन्तर साम्प्रदायिक तांडव का रूप देख रहे हैं।

"अतीत हमें पंगु बनाता है और ऐतिहासिक कला लेखन वर्तमान स्थितियों और चुनौतियों में परिष्कृत पलायन हैं"........[3]

मूल संवेदनाओं से बाह्य रंग और आन्तरिक मिश्रित होते हैं। अंतरंग में भारतीय मनीषियों ने सत्, रज और तम् को माना हैं मनुष्य के कार्य और वाणी में कई प्रकार की मूल संवेदनाये पायी जाती हैं।

'कुहरे में युद्ध' की परम्परायें और विभिन्न प्रकार के चरित्रों की पृष्ठभूमि भी दिखलाई पड़ती हैं उद्देश्य हमेशा चरित्रों की आन्तरिक संरचना की विवेचना और विश्लेषण करते उद्देश्यात्मक सोच हमेंशा विभिन्न प्रकार के ग्रामीण, शहरी, ऐतिहासिक और आंचलिक पात्रों के व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्रस्तुत करते है जीवन को दूरदर्शी बनाने का उद्देश्य प्राप्त होता हैं। जीवन की गतिविधियाँ हमेशा अनुबंधी एवं अनुप्राप्ति होना चाहियें।

डॉ0 सिंह के उपन्यासों में मूल संवेदनाये सम्पूर्ण रूप से विभिन्न प्रकार के नायक और नायिकाओं की त्रासदियों को महत्व, विश्व के साहित्य को देखे तो मूल संवेदनायें अलग–अलग विधाओं के रूप में पायी हैं। डॉ0 सिंह के उपन्यासों के पात्रों में प्रतिबिम्बित और परिलक्षित होती हैं उनसे पात्रों की रचनाभूमि और रचनाधर्मिता का मूल्यांकन किया जा सकता हैं। मानवीय जीवन को उद्देश्यात्मक एवं अनुभवात्मक बनाया जा सकता हैं। उद्देश्य से जीवन अनुभाजन बन सकता हैं, त्रासदी से जीवन की वास्तविकता का ज्ञान मिलता हैं।

भारतीय उपन्यास परम्परा में विभिन्न उपन्यासकारों के द्वारा मूल संवेदनाओं, उद्देश्यात्मक अवधारणाओं को अलग–अलग तरीके से प्रस्तुत किया। मुंशी प्रेमचन्द्र के विभिन्न सामाजिक उपन्यासों में तथा वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी उद्देशयात्मक अवधारणाएं एवं विचार धारायें पायी जाती हैं अपने उद्देश्यों जो कि मानवीय जीवन में भी विचारधाराये पायी जाती है पर विभिन्न तरीकों से अपने संदेश को जन–जन तक पहुँचाती है। उदेदश्यात्मक पुर्नकथन मानवीय मूल्यों को केन्द्रीभूत करती है, जिसका कि एक निश्चित परिसीमन हो

सकता हैं। मानवीय मूल्यों को हमेंशा अलग–अलग तरीके से मानवीय आचरण में मूल संवेदनाओं को स्पष्ट करती हैं।

उद्देश्यों एवं मूल संवेदनायें साहित्य की सभी विधाओं में पायी जाती हैं, जैसे नाटक, उपन्यास, कविता, कहानियाँ, एकांकी एवं निबन्ध इत्यादि। सभी साहित्यक विधायें उद्देश्यात्मक होती है उद्देश्य एवं संवेदनायें व्यावहारिक, प्रयोगात्मक एवं प्रतीकात्मक है, डॉ0 सिंह के उद्देश्य से ही मानवीय विचारों का आदान–प्रदान एवं सामंजस्य के संकेत दिखलाई पड़ते हैं। बिना उद्देश्य से सामाजिक जीवन अपूर्ण एवं निरर्थक माना जाता हैं।

हमारे देश में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ और बोलियाँ, बोली जाती है, जिनमें कि अलग–अलग प्रकार की मूल संवेदनायें एवं उद्देश्यात्मक आवरण दृष्टिगोचर होता है। मूल संवेदनाओं के द्वारा विभिन्न क्षेत्रीय साहित्यिक विधाओं का मूल्यांकन कर सकते है, जो समाज और राष्ट्र के व्यापक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। बल्कि व्यक्ति और पदार्थो के बीच आंतरिक पर उद्देश्य बनते बिगड़ते सम्बन्धों के प्रति सततः जाग्रत करते रहते हैं, मानव समाज एवं राष्ट्र को वस्तुओं और मनुष्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में उद्देश्यों का विशेष योगदान रहता हैं।

जो मानव और मानव के बीच परिचय सूत्र स्थापित करने में विशेष भूमिका निभाते है तथा उद्देश्यों को लेकर चेतन और अवचेतन, जड़ और चेतन, व्यक्ति और समाज में कशमकश चलती रहती हैं। उद्देश्यों के द्वारा समाज पर आवरण मूलक सत्यों एवं जनचेतना का स्पष्टीकरण करता हैं। डॉ0 सिंह ने समाज और इकाई के बीच में संघर्ष को सतत् जागरूक किया हैं।
उद्देश्यात्मक विचारधारा के विभिन्न प्रकार की छायावादी स्मृतियाँ दास्तानें एवं जीवन की अनुभूतियों को विभिन्न उपन्यासों में सीमित कर दिया हैं उन्होंने गहन

अध्ययन करके मानव के मानव को समझा और उसमें पायी जाने वाली गहराई रहस्य, गूढ़ता एवं उद्देश्य को अपने उपन्यासों में व्यक्त किया। डॉ0 सिंह के मन का मनुष्य में मूल भावनाओं को बंगला साहित्य के साथ–साथ हिन्दी साहित्य का सृजन किया उन्होने हिन्दी की उपन्यास विधा में अनेक अवसरों पर अनेक प्रकार से उद्देश्यों को व्यक्त किया उनके उद्देश्य बाहरी आघातों एवं बाहरी उल्लासों से विचलित नहीं होते उनके उद्देश्यों में ओज एवं शक्ति का संग्रह मालूम होता है। डॉ0 सिंह के उद्देश्यात्मक स्वरूप द्वारा मनुष्य कई प्रकार की लौकिक एवं पारलौकिक उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता हैं। जिससे कि अपने को उत्कृष्ट बनाकर सामर्थ्य युक्त बन सकें। डॉ0 सिंह की सोच में समन्वय एवं समागमता हैं। उद्देश्य और प्रेरणाएँ हमेशा मानवीय विचारों को फलीभूत करके उनमें समय–समय पर नव–लेखक सृजनात्मक परत दर परत विचारों का संश्लेषण करते हैं, जिससे मानवता के रिश्तों में जड़ता और दृढ़ता पैदा होकर मानवीय संवेदनाओं से जीवन में संश्लेषणात्मक, विश्लेषणात्मक और समीक्षात्मक विचारधाराओं का जन्म होता है। उद्देश्य मानवीय प्रगति और विकास के लिए आवश्यक हैं उद्देश्य के द्वारा दिन प्रतिदिन मानवीय रिश्तों में प्रागढ़ता आती हैं जिसमें विभिन्न प्रकार की नयी भावनायें विचार तथ्य एवं तर्क का जन्म होता हैं। उद्देश्य से जीवन में उत्कर्ष और उन्नति के आयाम बनते हैं।

वरिष्ठ उपन्यासकारों के द्वारा विभिन्न प्रकार की अलग–अलग उपन्यासों में उद्देश्य का प्रयोग किया हैं मुंशी प्रेमचन्द्र, देवेन्द्र, सत्यार्थी, जैनेन्द्र कुमार, भीष्म साहनी, प्रत्येक उपन्यासकारों के उद्देश्यात्मक एवं प्रेरणात्मक है उपन्यासों की कथावस्तु डॉ0 सिंह की साहित्यिक विधायें हमेशा प्रेरणा देती रही हैं जिससे मानवता हमेशा गत्यात्मक और गतिशील रहें। डॉ0 सिंह के उपन्यास समस्त जन मानस को हमेशा प्रेरणा देते रहेगें। उद्देश्यात्मक तथ्य एवं तर्क से ही मनुष्य में कई प्रकार के

नैतिक मूल्यों का विकास और उत्कृष्ट बिन्दुओं का जन्म होता हैं जिससे कि उद्देश्यात्मक एवं सकारात्मक धारा और समाज में नव–चेतना पैदा हों।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के विभिन्न ऐतिहासिक उपन्यासों में उद्देश्यों का प्रत्यक्षीकरण करके उनको जन उपयोगी बनाया है, जिससे समाज में अवांछनीयता और अपरिपक्वता को समाप्त किया जा सकें। डॉ0 सिंह ने विभिन्न प्रकार के प्रतिलोम और अनुलोम को आपस में जोड़कर उद्देश्यों के बीच में जीवन अनुकरणीय बनाया। 'शैलूष' और 'औरत' जैसे उपन्यासों में डॉ0 सिंह ने अपने उद्देश्यों के द्वारा मानव 'आत्मशोधन' और आत्मविवेचन करने का प्रयास किया।

मुंशी प्रेमचन्द्र और डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अपने जीवन को विभिन्न आयामों प्रतिमानों और परिवेशो से जोड़कर समाज का यथार्थ और सही चिन्तन किया। उनके द्वारा मानव के क्रिया कलापों और क्रिया व्यावहारिकता की सही विवेचना की। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उद्देश्यों में चितंनीय अवधारणायें एवं व्याख्याओं में मौलिकता झलकी हैं।

2. उपन्यासों में निहित विचार सूत्र

हिन्दी उपन्यासों में विचार सूत्र मानवीय जीवन और व्यवहार पर अपना प्रभाव डालता हैं, सूत्र और सूक्ति दोनों ही भारतीय प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का मनोबल बढ़ाने वाले शक्ति के स्रोत हैं। सूत्र हमेशा मानवीय जीवन और दर्शन को बदलने में जुड़े सहयोगी होते हैं, सूत्रों के द्वारा ही जीवन के दार्शनिक तत्वों और तथ्यों से बदला जा सकता है, जो मानवीय जीवन को सुन्दर और स्वच्छ करने का तरीका है सूत्र और सूक्ति का वर्णन भारतीय धर्मशास्त्र जैसे कि उपनिषद् वेदों पुराणों और शास्त्रों में निहित हैं। विचार सूत्र मानवीय मस्तिष्क एवं हृदय में विभिन्न उत्कंठाओं को पैदा करते हैं।

उपन्यास और कला मुख्य विधाये होती हैं इसके साथ–साथ उपन्यासों में निहित विचार सूत्र मूल विधान का प्रमुख साधन हैं। विचार सूत्र हमेंशा बड़ी प्रखरता के साथ उभरते हैं जो जीवन के विभिन्न आयामों को आपस में जोड़ते हैं। सूत्र और सूक्ति से मनुष्य में चरित्र और नैतिकता का जन्म हो जाता हैं। सूत्र और सूक्ति का आपस में जुड़ाव रहता हैं, सूत्रों के द्वारा जीवन की उपलब्धि को प्राप्त कर सकते हैं। सूत्रों में अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाये, जीवन की श्रृंखला और कड़ियाँ एवं जीवन का आत्म स्पष्टीकरण करते हैं। हमेशा मानव के लिए जीवन के सजीव अनुभूति को साकार अभिव्यक्ति करते हैं। सूत्र और सूक्ति एक ही डाल के दो पुष्पों की भांति हिन्दी के उपन्यासों की दो महत्वपूर्ण विधाये हैं। सूत्रों के द्वारा उद्देश्य को धरातलीय यथार्थवाद से जोडकर ठोस मजबूत बनाया जा सकता हैं।

'मनुष्य स्वभाव से अपूर्ण है' अपनी अपूर्णता को विभिन्न सूत्रों और उद्देश्यों से दूर कर सकता है, अतः किसी आदर्श, सौन्दर्य, यथार्थ और सच्चाई लौकिक से अलौकिक बनाने के लिए विभिन्न सूत्रों का परिवेश हैं। भारतीय विचारधारा जनोपयोगी उपनिषद् और सूत्र हैं। सूत्रों के द्वारा विभिन्न प्रवृत्तियों का जन्म होता हैं, सूत्रों से परम तत्व और आत्मा के बीच में माधुर्य भावमूलक सम्बन्धों को स्थापित

करने कि लिए मानव जीवन को उद्देश्यात्मक बनाया जाता हैं। सूत्रों के द्वारा समाज और परिवार को विभिन्न प्रकार के अभिजात संस्कार के द्वारा अनुकरणीय और उपयोगिता पूर्ण बनायें जातें हैं, उद्देश्य के द्वारा वाक्य संरचना और भाषिक संरचना को शब्दक्रम में व्यवस्थित कर क्रियात्मक बनाया जाता है।

डॉ0 सिंह ने हमेंशा मनुष्य के भीतर की भावनायें, गहनता और उसमें पायी जाने वाली कई प्रकार की व्यापकता को एक सूत्र में पिरोकर विभिन्न प्रकार की रचना की जिसको मानव–जाति अपने जीवन में उतार सकें। डॉ0 सिंह के समस्त उपन्यासों में मानवीय हित को दृष्टि में रखते हुये विभिन्न प्रकार के अनुभव और विवादों को तथा चिन्तन और आधार को सबसे अधिक प्रभावित किया। उन्होने विभिन्न प्रकार के सूत्रों और व्यंग्यों के द्वारा अपने वक्तव्यों को कहा –

''अलग–अलग वैतरणी'' में विपिन कहता हैं – ''हमारे गाँव उस स्थिति में पहुँच गये है जहाँ दर्द की इन्तहा की दवा बन गई।''.......[4] ग्रामीण और आंचलिकता उद्देश्यात्मक भावना की पूर्ति करता है जिसमें जीवन की संकीर्णतायें समाप्त हो जाती है।

सूत्र एवं सूक्ति दोनों का मेल प्रायः दुर्लभ होता हैं, उद्देश्य एवं लक्ष्य का गठबन्धन भी अमरता को प्रदर्शित करता हैं। सृजनात्मक लेखक सूत्र और सूक्ति को एक जीवन की मीमांसा, दर्शन और उपनिषद् मानतें हैं। सूत्र जीवन को सृजनात्मक रास्ते बताते हैं, और सूक्ति जीवन को दर्शनात्मक बनाते हैं। सूत्र हमेशा जीवन में दायित्व बोध और प्रतिबद्धता के रहस्यों का उद्बोध करते हैं, जिससे जीवन निरंकुश बन सकें। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, अज्ञेय और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उपन्यासों के लेखन में सूत्रों की गरिमा एवं उद्देश्यात्मक विचारधारा को बनाये रखते हुये विभिन्न रचनायें प्रस्तुत की, जिससे जीवन उद्देश्यपूर्ण सामान्य हो सकें। शोधपरक रचनाओं को आधार मानकार उन्हें मानवीय जीवन से जिससे कि मनुष्य

अपने जीवन की उत्कृष्ट समीक्षा करके विभिन्न प्रकार की ख्याति को अर्जित कर सकें सूत्रों एवं उद्देश्यों के द्वारा मानव अपनी प्रतिष्ठा और गरिमा को अर्जित करता हैं। विचारों को हमेशा प्रभावशाली और गौरवशाली होना चाहिए। जिससें जीवन मर्मस्पर्शी और मानव प्रेमी बन सकें। सूत्र और सूक्ति डॉ0 सिंह के औपन्यासिक उद्देश्य प्रतीक हैं। जिनके द्वारा कई प्रकार के संदेश जनमानस तक पहुँचते है। जिससें मानवीय सोच और उसके आचरण बदलें। ''आज की तारीख से अमल में लाने से भारत का सुख चैन लौट सकता है, फिरकापरस्ती अपना दम तोड़ देगी और शक्ति चैन भारत के चरण चूमने लगेगी।''......[5]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह एक इतिहासकार, साहित्यकार, कथाकार और उपन्यासकार तथा सूत्रमयी जीवन व्यतीत करने वाले एक प्रतीक के रूप में पहचाने जाते हैं। उन्होंने खुद को खोजा था और वे हर दिन अपने अस्तित्व के विकास में गाँव के उस अन्तिम आदमी को, टूटे और बिखरे हुए अन्तिम इन्सान को देखते है और जीवन को विभिन्न तरीके से उद्देश्यात्मक, सूत्रात्मक और रचनात्मक के रूप में देखते हैं जैसे ''अलग–अलग वैतरणी'' में जूझते हुये लोग हो या फिर ''अन्धकूप' 'कर्मनाशा की हार' और 'गली आगे मुड़ती है' आदि के पात्र हो। उनमें हमें समाज के सच्चे चित्र मिलते हैं जिनको जरूरत है जीवन के सही सूत्र, सूक्ति उद्देश्य एवं आदर्श की।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, डा0 लोहिया से प्रभावित थे सम्भवतः वे स्वयं को लोहिया दर्शन में जीवन्त पाते हैं, लोहिया की समाजवादी सोच और विविध वर्गो में फैली विषमता और संघर्ष के प्रति आक्रोश पूर्ण भाव डॉ0 शिवप्रसाद सिंह को अपना लगता था। उन्हें सम्भवतः एक ऐसा इतिहास पुरूष दिखाई देता हैं, जो उनके विचारों के प्रतिभूति था और जिसे वे अपने काव्य और सन्दर्भो में सादर स्थान दे सकते थे। लोहिया और शिवप्रसाद सिंह की सूत्रात्मक और रचनात्मक विचार धारायें उद्देश्यात्मक है, इन दोनों की विचारधाराओं में समाजवाद और जातिवाद

को समाप्त करने की प्रेरणा मिलती हैं। जिससे कि लोगों में जातीय वैमनुस्य कम हो इनके विचारों में जातीय संतुलन समता और क्रियात्मक व्यवहार सबके साथ होना चाहिए इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता वर्गविहीन समाज की स्थापना विश्व चेतना और विश्व शान्ति के प्रहरी के रूप में खड़े हैं। डॉ0 सिंह के उपन्यासों में उच्चकोटि के उद्देश्य एवं विचारधारा का सम्मिश्रण प्राप्त होता हैं।

मुंशी प्रेमचन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा तथा डॉ0 धर्मवीर भारती ने उद्देश्यपूर्ण वर्तमान की संगति से जोड़कर विभिन्न प्रकार की संगति से संरचना की उन्होंने मानवीय दृश्य निर्माण संरचनात्मक उपादानों और प्रतिमानों को व्यक्त किया। जिनका सम्बन्ध कहीं न कहीं संगति से हैं प्रत्येक उपन्यासकार उपन्यास के कथानक, पात्रों, शैली तत्व, संरचना और संवाद के माध्यम से संगति को प्रस्तुत करता हैं, जिससे मानवीय जीवन बदले और उसका सकारात्मक विकास हो तथा मानव जीवन को परिवर्तनशील संगतिपूर्ण बनाया जा सकें। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी के विभिन्न पात्रों की संगति अपने उद्देश्य को पूर्ण करती हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह समाज के उपेक्षित तथा निचले तबके के प्रति विशेष रूप से सहानुभूतिशील रहें है। उन्होंने बंजारों और नटो की जिन्दगी पर कई प्रकार के उपन्यास लिखे जिनके अपने उद्देश्य से परिपूर्ण सूत्रों को भी व्यक्त किया। डॉ0 सिंह के उपन्यासों में ग्राम एवं महानगरों दोनों की संस्कृति के अनुभव और विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों से भरे हुये निहित विचार सूत्र में प्रतीकता झलकती हैं। डॉ0 सिंह आस्थाशील और उद्देश्यपूर्ण सूत्र रचनाकार हैं।

डॉ0 सिंह, डॉ0 धर्मवीर भारती, रांगेय राघव जैसे महान उपन्यासकारों और साहित्यकारों ने समाज में फैली विसंगतियों, ईर्ष्या के सम्बन्ध में जानकारी दी है तथा इस प्रकार के गलत उद्देश्यों को रखना जनहित में नहीं है। यदि किसी

दर्शन ने उन्हें प्रभावित किया है तो योगी अरविन्द के दर्शन ने उनकी मानवीय संवेदनाओं को उद्वेलित करने वाली दार्शनिक सूत्रमयी विचारधारा हैं।

"क्या पत्थर से फूल खिलेगा"........[6] डॉ0 सिंह मानते है कि इतिहास ही वह फूल है जो कली रूप में है खिलकर बाहर आयेंगा। डॉ0 सिंह ने सूत्रों को पाणिनि के सूत्रों से लिया है। उपन्यासों में सूत्र का विशेष प्रभाव पड़ा हैं, विभिन्न प्रकार अनुभवों और उद्देश्य को पाणिनी सूत्रों पर केन्द्रित किया जिससे कि उपन्यासों में 'मेटा लैग्वेंज' का निर्माण हो सका। पाणिनि सूत्र एक रचनात्मक और भावात्मक अनुभूति को प्रकट करतें है। पाणिनि के सूत्रों को प्रत्याहार और अन्तः प्रज्ञा से जोड़ने से 'मेटा लैग्वेज' का निर्माण होता हैं, जो सृजनात्मक सांत्वना को नई सार्थकता देने को सृजन करता हैं सूत्रों के द्वारा संवेदनात्मक पक्ष को मजबूत किया जाता हैं। उपन्यासकार की सृजनात्मक चेतना भी उसको निम्नतम से उच्चतम की ओर ले जाती हैं, सूत्रों के द्वारा जीवन के बाह्य स्तर को और मन की पर्तो को खोलते है जिससे मानवीय मस्तिष्क पर उनका प्रभाव पड़ा।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में बड़े कैनवास पर डॉ0 सिंह ने उन सबका पर्दाफाश किया जो मनुष्य को नाम देकर अपना स्वार्थ साधते है और करैता गाँव की स्थिति सुनने के बहाने आजादी के बाद के समूचे भारतीय परिवेश और जीवन में होने वाले परिवर्तनों, विसंगतियों, कठोर सच्चाई और प्रतिक्रियाओं का सीधा सूत्रमयी विचारधारा का साक्षात्कार करने की ईमानदारी से कोशिश और गाँव के जीवन में अनेक बहने वाली वैतरणी को साहित्यकार ने उजागर किया हैं। करैता गाँव का दुःख पूरे भारत देश के गाँवों का दुःख हैं। जो एक के बाद एक क्रान्तियों की लगातार घोषणाओं के बाद आज वही ठहरे हुये हैं, ठिठके हुये है और दिन प्रतिदिन जीवन दृष्टियों के विरोधाभास में पिस रहें। करैता गाँव डॉ0 सिंह के

लिए एक सूत्रमयी संरचनात्मक ज्ञान का स्रोत है। करैता मानव जाति के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है जिसमें मानव समाज में विभिन्न घोषणाएं उद्धेलित हो सकीं।

डॉ0 सिंह ने मानवीय सूत्रों और सूक्ति के अनुभव लोक संस्कृति और लोक परम्पराओं में चरित्रार्थ किये हैं, सभी रचनाकार, कथाकार और उपन्यासकार सूत्रों में विश्वास रखते हैं, सूत्रों के द्वारा जीवन अन्तर्विरोध और क्लेश से मुक्त हो जाता हैं। डॉ0 सिंह हमेशा ऐसे सूत्रों को बनाते है। जो पाथेय के जीवन को अलौकिक, व्यावहारिक और सारगर्भित बना सकें जीवन में कई बार बीहड़ पथ आते हैं, परन्तु शरीर के अंगो को सबल और मजबूत होना चाहिए। जिससे विभिन्न प्रतियोगी सूत्रों का सामना कर सकें सूत्र विजातीय और सजातीय दोनो ही होते है ये तो मानवीय सोच पर निर्भर करता हैं किन्हें चुने और किनकों त्यागे। उद्देश्य वास्तव में अस्तित्वकारी होते हैं प्रत्येक उद्देश्य का अपना एक अर्थ एवं महत्व होता हैं।

''नीला चाँद'' अनादिकालीन इतिहास और पुराणों में करवटों को बदला जिस कारण से बहुत सी संस्कृति और सभ्यता को बदला जिससे वर्तमान भूगोल और जनजीवन को सूत्रमयी बनाया वास्तव में उपन्यासकारों के मुख्य पात्रों की जीवनव्यापी असफलता का संस्कृति के भीतर से ही उठने की प्रक्रिया हैं। पूरा समाज एक जंजीर से बँधा हैं, जिसमें कई प्रकार के सूत्रों के द्वारा नेतृत्व को बदला जा सकता है। अमूर्त को मूर्त की ओर ले जाया करता हैं। कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक, जीवनी, साहित्य और शोध के जरियें अपने मौलिक विचारों का प्रस्तुतीकरण करने की सौन्दर्य चेतना का सूत्र एवं उद्देश्य में पिरोना मनुष्य की सार्थकता के अनुसंधान का प्रयास है। मनुष्य जड़ता से मुक्त होकर चिन्मय तत्व की ओर अग्रसर होकर मनुष्य नैतिक मान्यताओं के दबावों को स्वीकार करता हैं।

''मंजूशिमा'' 'मंजूशिमा' शिवप्रसाद सिंह के जीवन का वह कालखंड है जिसने सात वर्ष तक एक व्यक्ति की परीक्षा ली। एक पिता की भावनाओं को लगातार ललकारा। मृत्यु के द्वार पर खड़ी बेटी को बचाने की एक पिता की छटपटाहट हैं– मंजूशिमा। डॉ० सिंह की पुत्री मंजूश्री गुर्दे की बीमारी से ग्रस्त थीं। उन्होंने अपनी बेटी के इलाज के लिए बनारस, चंड़ीगढ़, दिल्ली और मद्रास के अस्पतालो की खाक छान मारी पर सब बेकार। मृत्यु और मृत्यु के बाद की स्थितियों से जूझते हुए डॉ० सिंह यथार्थ और नियति के बीच झूलते हुए जीवन की कठोरतम् स्थितियों के गवाह रहें। यह मौत को पछाड़ देने वाले पिता की व्यथा–कथा हैं।

"बिन ब्याहे बेटी मरे, ठाढ़ी ऊख बिकाय, बिन मारे मुदई मरे, तीनो हरै बलाय।"......[7] जो माता पिता पूर्व जन्म में हाथी–दान कर चुके होते है उनकी बेटी विवाह से पहले मर जाती हैं। पुत्री पिता का अंश होता है। उसे बचाना उसका दायित्व है पर पूर्वांचल में पुत्री का स्थान बचा हैं जानने के पश्चात् ही। यह लड़ाई सिर्फ मौत से नहीं थी, उतनी ही भयानक आंधी रूढ़ियों के विरूद्ध भी थी, जो बेटी के लिए यह मान कर चलता था कि बेटी ही सब कुछ हैं असमय मृत्यु ही डॉ० सिंह की वेदना का कारण है। जो मंजूशिमा उपन्यास के नाम से लिख गया हैं। जिसमें डॉ० सिंह ने राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थितियों को अनायास ही छुआ हैं।

''शैलूष'' डॉ० सिंह ने लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर खानाबदोश नटों के जीवन के संघर्ष को परत दर परत उकेरकर संजोया हैं। यायावरी जीवन में घटने वाली तमाम वाह्य शक्तियों के दबाब, अत्याचार, अन्याय और छलकपट को डॉ० सिह ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन्त कर दिया हैं। बनारस के निकटवर्ती कमालपुर और रेवतीपुर कथा के केन्द्र में हैं। 'शैलूष' में जीवन की संवेदनक्षम सच्चाईयों और मानवीय संवेगो का सहज चित्रण भी उभरकर सामने आया हैं। कबीलाई जीवन के हिस्से में आये अभाव और अस्मिता के संघर्ष को साकार करने वाले डॉ० सिंह इस सम्बन्ध में कहते हैं–

"आपको दुःख हुआ कि नटों को बनाफर कहा गया है। मैं आपके क्लेश को समझ रहा हूँ, पर आपको राजपूत शब्द से इतना मोह क्यों हैं?"........[8]

'शैलूष' में समाज में व्याप्त ऊँच–नीच की ऐतिहासिक परिभाषाएँ और मान्यताएँ कदम–कदम सिर उठाती हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने स्वातंत्र्योत्तर इतिहास को सूक्ष्मता से छुआ है, जिसमें विषमता, गरीबी, भावुक, आशावाद और उच्च्व वर्ग के लोगों की तिकड़म और चालाकियों को बयान किया हैं। जीवन्त पात्रों के इर्द–गिर्द लेखक ने वर्ण–व्यवस्था, वर्ग–भेद और आजादी के बाद पनपे चालाक लोगो के हाथों छले जा रहे मासूम कबीलाई और निचले तबके को वाणी दी हैं।

"औरत" डॉ0 सिंह मानते है कि भारतीय नारी अब अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई है। उसे समानाधिकार मिल गये हैं। वह पुरूष से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ हैं। आज की नारी अपनी अस्मिता को पहचानने के काबिल हो गई हैं, इतना कुछ होने के बाबजूद वास्तविकता यह कि नारी आज भी उपेक्षित हैं। समाज के कठोर बन्धनों में बँधी हैं उसका प्रगतिशील होना इस सामाजिक वर्ण–व्यवस्था को सहन नहीं हो पाता हैं और उसे भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु हैं। यह वह औरत है। जिसका चेहरा, जिसका व्यक्तित्व सरकारी आंकड़ो में दिखाई गयी औरत से पूरी तरह भिन्न हैं यह उपन्यास खुशफहमियों के अँधेरे में उजाले की सही किरण हैं, औरत की वास्तविक स्थिति को सामने लाना डॉ0 सिंह का भागीरथ प्रयास रहा हैं।

"गली आगे मुड़ती हैं" स्वतंत्रता के बाद वाले वर्षो की एक अहम् राष्ट्रीय समस्या युवा आक्रोश, युवा असंतोष या युवा विद्रोह को समर्पित उपन्यास हैं।

संवेदनाशील, समाज चेतना डॉ0 सिंह ने समय की चुनौतियों से रूबरू होने का खतरा मोल लिया है। 'गली आगे मुड़ती है' का परिवेश भी शहरी है।

"समकालीन काशी को संपूर्णता में प्रस्तुत करना डॉ0 सिंह का उद्‌देश्य भी रहा हैं।"......[9]

संस्कृति के चित्रण में काशी नगरी जिस प्रकार ढंकी–तुपी रह सकती थी, इसकी समग्र प्रस्तुति भी रचना का एक महत्वपूर्ण आयाम बनकर उभरी हैं। क्षेत्र के रूप में काशी का चुनाव कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा हैं। पहला डॉ0 सिंह के शब्दों में, "काशी का नाम युवा–आक्रोश के साथ बदनामी की हद तक जुड़ गया हो' इसलिये उसने काशी को ही उपन्यास का केन्द्र बनाया हैं।"........[10]
उपन्यास में युवा आक्रोश के नाटक का रंगमंच आदि बनारस और उसकी संस्कृति है तो इस परलगे पर्दे निश्चित रूप से राजनीति के है। जहाँ राजनीति होगी वहाँ भ्रष्टाचार होगा और इनमें सफलता पाने के लिए नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में टकराव तथा बुद्धिजीवियों का पतन भी होगा।

'गली आगे मुड़ती है' में युवा–वर्ग का बिगड़ती और बनती अवधारणा पर विचार किया हैं, उद्‌देश्य से भटके युवा वर्ग को एक किरण के समान रास्ता देना मात्र है।

"दिल्ली दूर हैं" डॉ0 सिंह ने 13वीं, 14वी सदी के संघर्षपूर्ण भारतीय जीवन पर 'दिल्ली दूर हैं'–जुझौती खंड और दिल्लीखंड को एक ही उपन्यास को दो खण्डों में प्रस्तुत किया हैं। उपन्यास मध्यकालीन स्वातंत्र्य संघर्ष की भीषणता तथा त्रासदी को दिखा रहा हैं। भूमिका में डॉ0 सिंह ने लिखा हैं– " मेरी बौद्धिक क्षमता में जितनी भी भाषिक शक्ति हैं, जितनी भी समझ है, और जितनी भी सदाशयता, उसी का सम्बल लेकर मैंने यह खंड की रचना की है। मैंन इस्लाम को गहराई से समझने की कोशिश की हैं।........[11]

इतिहास के अनुसंधान, चरित्र की योजना, मुस्लिम सियासत के भयानक रूप सांस्कृतिक साधना तथा बिखरे हुए राष्ट्रीय संघर्ष के अंकन की दृष्टि से यह उपन्यास के शिखर पर पहुँच रहा हैं। 'दिल्ली दूर हैं' की त्रासदी अधिक स्वाभाविक तथा यथार्थ हैं।

दिल्ली–कथा कहते हुए डॉ0 सिंह मानवता के विकास पर सदैव नजर लगाये रहते हैं। मध्यकाल की कथा में से वर्तमान हमेशा झाँकता रहता हैं।

भारतीय दर्शन, ज्ञान के प्रतीक रावलपीर के समक्ष उनका नतमस्तक होना यह सिद्ध करता है कि साधना, तपस्या, ज्ञान सभी को एक ही उपलब्धि प्रदान करता है और वह हैं परमतत्व। अगर परमतत्व एक हैं तो उसके अंश चाहे हिन्दू हों या मुसलमान एक हैं।

'वैश्वानर' आर्यो के परिवार अपने मूल संस्कार सार्वभौमिक सुख–शान्ति के साथ–साथ व्यक्तिगत स्वार्थ तथा संक्रमित जीवन मूल्यों से भी प्रभावित होते हैं। जीवन मूल्यों की कसौटी भिन्न–भिन्न होती है। जीवन मूल्य परक कसौटी पर मात्र शुद्ध आर्य ही खरा उतर सकता है प्रकृति की गतिशीलता की तरह मनुष्य की जीवन शैली में भी गतिशीलता हैं। 'वैश्वानर' का सामाजिक ढाँचा सभी जातियों एवं मूल्यों का मिश्रण हैं उद्देश्य एवं सूत्र की दृष्टि में सामाजिक मूल्यों की रक्षा करना सामाजिक दायित्व हैं।

'कुहरे में युद्ध' के द्वारा डॉ0 सिंह ने इतिहास के माध्यम से आज को समझने और समझाने का प्रयत्न किया हैं। इस उपन्यास के मूल में कालंजर के शासक त्रैलोक्य मल्लदेव, उनके सेनापति आनन्द वाशेक और दिल्ली दरबार।

डॉ0 सिंह का कर्तव्य इतिहास की उन महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों को एक विशेष दृष्टि देना होता हैं, जो इतिहास को सन्दर्भित रखते हुए वर्तमान के लिए संदेश हों। शायद इसीलिये युद्ध की विभीषिका में झुलसती जुझौती के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए नायक तैयार रहता हैं। मध्यकाल में हो रही उथल–पुथल, युद्ध संघर्ष दो जातियों से कहीं अधिक दो संस्कृतियों के लिए था।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के साहित्य में तीन विशेष सूत्र नजर आते है, प्रथम सूत्र अनुभव के साथ इतिहास में उतरने की ओर अपने समय को अतीत के सन्दर्भ में पहचान की, दूसरे में गाँव के सामाजिक जीवन को उसकी लोक गन्ध और पूरी नाटकीयता के साथ ठोस और जीवन्त रूप में मूर्त करने की ओर तथा तीसरे सूत्र में मानवीय स्थितियों की क्रूर और निर्मम सच्चाई के उद्‌भव की। पहले सूत्र के उपन्यास है, 'नीला चाँद' कुहरे में युद्ध, और दिल्ली दूर है दूसरे सूत्र के अनुसार 'अलग–अलग वैतरणी, और शैलूष तथा तीसरे सूत्र के अनुसार ' गली आगे मुड़ती है' 'मंजूशिमा' और औरत।

सभी उपन्यास उद्‌देश्यात्मक एवं विवरणात्मक है। उपन्यासों की अपनी एक अलग पहचान और सार्थकता हैं।

3. उपन्यासों में समस्यायें एवं समाधान

उपन्यास विस्तीर्ण गद्य तथा यह कथा साधारण जीवन जैसी हैं पर गति में प्रखरता हैं, और उसके पात्र मनुष्य सरीखे होकर भी विलक्षण होते हैं। ''साधारण जीवन में वृहदता हैं, बिखराव हैं, और कार्य कारण सम्बन्ध अस्पष्ट सा हैं। उपन्यासों में इनका जीवन अनुभूति और विश्लेषण होता हैं।''.......[12] जीवन मनुष्य जीता हैं, अकेला नहीं हैं, दूसरों के साथ उसके जीवन में कईप्रकार की समस्यायें होती हैं। उनसे निकलने का प्रयास करता है कई प्रकार की समस्यायें ढूँढ़ता हैं जिससें उसका जीवन सार्थक बन सकें कभी वह दूसरों का सहयोग करता हैं, कभी असहयोग, कभी उसकी संगति समाज से नहीं बैठती और कभी अपने मन में अनेक उलझनों में फँसा रहता हैं, जिससे जीवन में गतिरोध उत्पन्न हो जाता हैं। गतिरोध को दूर करने के लिए विशेष गतिशील होना पड़ता हैं। उपन्यास मुख्यतः जीवन पक्ष एवं विपक्ष को उभारता हैं। उपन्यास के द्वारा जीवन की उलझनों एवं चुनौतियों का स्पष्टीकरण किया जाता हैं। उद्देश्य उपन्यासों में काल के आयाम में फैलकर कथा बनाता हैं, और पात्रों का चरित्र उद्घाटित करता हैं।

उपन्यास साधारण जीवन की समस्यायें एवं उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं। उपन्यास समय–समय पर विभिन्न पात्रों की समस्याओं को उजागर करता हैं जो कि मानव जीवन से सम्बन्धित होती है। समस्यायें एवं उद्देश्य ही जीवन की यथार्थ को उजागर करते हैं और उनके द्वारा विभिन्न प्रतिमानों को अलग–अगल विधाओं में क्रिया–प्रतिक्रिया के रूप में उसकी आख्यान और समीक्षा करता हैं। पात्रों के मनोभाव उनकी समस्यायें एवं उनके समाधानों को समझ अधिकाधिक उपन्यासकार डॉ0 सिंह मूर्त करने का प्रयत्न करते हैं। उसमें प्रत्यक्षीकरण और संप्रेषणीयता के तत्व प्रधान रहते हैं। उपन्यास राष्ट्र या समाज की विभिन्न शक्ति धाराओं की पारस्पारिक क्रिया–प्रतिक्रिया का आख्यान करता हैं। व्यक्ति के गहन और समाज के विशद समस्याओं को प्रस्तुत करने में उपन्यासों की अहम् भूमिका

हैं। उपन्यासों का उद्देश्य वास्तव में जीवन के सकारात्मक तत्वों को जोड़ना एवं उसमें उज्ज्वलता को प्रवाहित करना।

'अलग–अलग वैतरणी'– उपन्यास से गतिमय जीवन की प्रेरणा मिलती हैं 'अलग–अलग वैतरणी' के जमींदार जैपाल और उसके भाई देपाल के वंश की कथा से आरम्भ होता हैं। जिसके द्वारा पुश्तैनी दुश्मनी की समस्याओं का संकेत किया गया हैं। करैता गाँव में किस प्रकार से जमींदारी समस्या बनी हुई हैं, जो ठाकुर मेघनसिंह ने अपनी बहन राजमती के हाथों देपाल के लिए भेज दिया था क्योंकि वे दोनों का विवाह नहीं चाहते थें, तब इन दोनों परिवारों की शत्रुता भी बढ़ती चली गई। हमारे देश में अतीतकाल से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न प्रकार की जातीय लड़ाईयाँ होती रहीं जमींदारों में अहम् पद प्रतिष्ठा और उसके मान–सम्मान को रखता हैं। जिस कारण से उन लोगों में अस्पृश्यता, उच्च और निम्न का भेद मौजूद हैं।

जो उनके अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में सांमजस्य करता हैं। जमींदारी प्रथा का उद्देश्य निम्नवर्ग का शोषण करके अपनी समस्त इच्छाओं की पूर्णतः की जा सकें। हमेंशा उच्च वर्ग ने निम्नवर्ग का शोषण किया।

हमारे देश में जमींदारी प्रथा ने कई प्रकार की रूढ़िवादी परम्परायें समाज को दी परन्तु आजादी के बाद धीरे–धीरे जमींदारी प्रथा समाप्त हो गयी, परन्तु 'अलग–अलग वैतरणी' में डॉ0 सिंह ने परिवार और उसके मुख्य सदस्य बुझारथ, विपिन, कनिया ने कई प्रकार की पारिवारिक और समााजिक समस्याओं का सामना किया और उनका समाधान भी निकाला। जमींदारी प्रथा हमारें देश के लिए एक अभिशाप थीं, जिसमें आजादी से पूर्व भारत में कई प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक समस्यायें खड़ी कर दी जो हमारे देश और समाज के विकास

में बाधक थीं। जमींदारी प्रथा ने देश में कई प्रकार के अवरोध तैयार कियें। जिससे निम्न वर्ग के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की कभी पूर्ति नहीं हो सकीं।

जमींदारी प्रथा के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की समस्यायें खड़ी हुई जिनकों कि आजादी के बाद धीरे–धीरे समाप्त कर दिया गया और उनके स्थान पर नई अर्थव्यवस्था चालू की गयी, जिससें कि समाज और राष्ट्र का विकास हो सकें। इसी तरह से सामाजिक परम्परायें, रीति–रिवाज और तौर तरीके थे कई प्रकार की और जातीय व वर्ग सम्बन्धी कई समस्यायें बनी। गरीब एवं निम्न वर्ग हमेंश पिसता रहा। गरीब वर्ग के उद्देश्य हमेंशा अपूर्ण और अधूरे रहें हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में कई प्रकार के संगठन और समितियों ने धीरे–धीरे जातीय तनाव को समाप्त किया, जिससे कि उच्च और निम्न वर्ग में नजदीकियां आ सकें जो सामाजिक वैमनस्य को समाप्त कर जतियों में और विशेष वर्गो में नजदीकियाँ और लोगो में नए सम्बन्ध स्थापित हो सकें।

प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में जमींदारी प्रथा को व्यक्त करने के बाद प्रमुख रूप से स्थान डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने पाया हैं। डॉ0 सिंह ने 'अलग–अलग वैतरणी' में भारतीय गाँव करैता का चित्रण किया हैं, जिसमें जमींदारों द्वारा छोटे–छोटे लोगों का शोषण उनके साथ अमानवीय कृत करना तथा पेशा प्रवृत्तियों, संवेदनाओं और उनके उद्देश्यों को कुचलना एवं नष्ट करना। गाँव की घुटन भरी जिन्दगी को अपने कर्तव्य से विमुख कर देना इन सभी बिन्दुओं को डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने बताया कि उन्होंने करैता गाँव को समस्त भारतीय गाँव के एक प्रतिनिधि के रूप में माना और गाँव की यथार्थवादी स्थितियों से लोगों को परिचित कराया जो समाज और राष्ट्र के विकास में बाधक थीं। गरीबी और आर्थिक तंगी के कारण उन्होंने अपने उद्देश्य को कभी पूरा नहीं किया। जीवन अपूर्ण और अंधकारमय रहा।

जमींदारी प्रथा की समस्या समाधान करने के लिए हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक प्रणाली स्थापित हुई, जिसने कि धीरे–धीरे जमींदारी प्रथा को समाप्त किया और उसके स्थान पर प्रत्येक गाँव में लोकतन्त्र के बीज स्थापित हुये। भारतीय समाज में आज लोकतन्त्रात्मक प्रणाली को शासन करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका माना हैं जिसके द्वारा राष्ट्र और समाज की समस्त बुराईयों को दूर किया जा सकता हैं एवं विभिन्न उद्‌देश्यों को गतिशीलता मिल सकती हैं, जो मानवीय हित के लिए उपयोगी हैं। हमारे देश में जमींदारी प्रथा एक अभिशाप थीं। आजादी के लिए पहले आजादी के बाद भारत में लोकतन्त्र प्रणाली ने जमींदारी प्रथा को कुचलदिया और उसके स्थान पर एक नयी आदर्श प्रणाली स्थापित हुई।

''नीला चाँद'' हिन्दी में कई ऐतिहासिक उपन्यासकार हुये है। हिन्दी में सर्वप्रथम उपन्यासों के कथानक के आधार स्वरूप, ऐतिहासिक आख्यानों का सहारा लिया, यद्यपि इनमें उनकी कल्पना की प्रधानता रहीं।

''हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक काल में नाटकों की भाँति उपन्यास साहित्य भी अनूदित हो रहा है। बंगला के अच्छे–अच्छे उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। युग प्रवर्तक भारतेन्दु जी ने आधुनिक काल में स्वयं तो साहित्य का निर्माण किया साथ ही दूसरों को भी प्रेरणा दी उनकी प्रेरण से उनके सहयोगी ठाकुर गदाधर सिंह ने 'कादम्बरी' नामक बंगला उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद किया हैं।''.......[13]

'नीला चाँद' ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा के विकास की कड़ी हैं। इस उपन्यास की जो कथा हैं, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मानवता के सन्दर्भ में तथा मार्क्स की उद्‌घोषणाओं के सन्दर्भ में इतिहास मनुष्य को अतीत से परिचित कराता हैं। इसके साथ–साथ वर्तमान के विभिन्न उद्‌देश्यों की पूर्ति करने की प्रेरणा मिलती हैं। इतिहास के द्वारा मानव अपनी व्यावहारिकता को तैयार करता हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का तीसरा उपन्यास हैं, वृहदाकार यह मध्यमकालीन 11वीं शताब्दी पर लिखा

गया उपन्यास हैं। डॉ० सिंह काशी की विशिष्टता से इसको जोड़ते हैं। इस उपन्यास में वर्तमान जीवन के सामाजिक मुद्दे तथा कई प्रकार की समस्यायें सामने उभर कर आयी हैं। 'नीला चाँद' में डॉ० शिवप्रसाद सिंह जी मध्य काल की वहीं काशी देखना चाहते हैं जो विदेशी आक्रान्ताओं से पहले थीं, अतः वहाँ विशेष समस्यायें थी जो मुसलमान आक्रान्ताओं के द्वारा पूर्व के उत्तर भारत का आइना बन गयी आपसी फूट देशी राजाओं के अत्याचार उनके द्वारा पैदा की गयी समस्यायें तथा लड़ मरने की उनकी नियत इन्हीं सबकों सम्मुख लाने के लिए डॉ० सिंह ने काशी के अलावा उसके सीमावर्ती आख्य प्रदेश (मिर्जा प्रदेश) और खुर्जरवाह (खजुराहों) महोबा व जैजाक भुक्ति (बुन्देलखण्ड) आदि चन्देल राज्य के क्षेत्रों को मिलाकर लगभग पूरा उत्तरांचल की तत्कालीन समस्याओं का साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया हैं।

'नीला चाँद' डॉ० शिवप्रसाद सिंह की एक कसौटी एवं चुनौती हैं। जो मानवीय आंकाक्षाओं की पूर्ति करता हैं जिसमें कई ऐतिहासिक उद्देश्यों की पूर्ति होती हैं। डॉ० सिंह ने राजाओं के द्वारा उत्पन्न की गयी उनके व्यक्तिगत स्वार्थ महत्वाकांक्षायें जो जनहित में हानिकारक थी क्योंकि तत्कालीन स्थितियों के मुताबिक भी समस्याओं के समाधान के लिए राजनीतिक परिवर्तन की बहुत आवश्यकता थी, जिससे इन समस्याओं से छुटकारा मिलें और उनके स्थान पर नयी प्रणाली स्थापित हो। उन्होंने कलचुरी राजाओं के हाथों चंदेलों की पराजय व काशी के शासक गहड़वालों के पराभाव के द्वारा भी कई प्रकार की समस्याओं को व्यक्त किया हैं। काशी में रूचि रखने वालों की दृष्टि से समस्याओं के कारण ही अत्याचारी राजाओं का पतन हुआ। 'नीला चाँद' अतीत की पृष्ठभूमि पर जन चेतना की एक नई पहचान हैं। वस्तुतः 'नीला चाँद' एक नये प्रकाश पुंज के रूप में उपन्यास जगत में हमारे सामने उपस्थित हैं जिसका आधार क्या है इतिहास, किन्तु इतिहास के बीच से डॉ० शिवप्रसाद सिंह उस कल्याणकारी 'स्त्रोत' की खोज करते दिखाई देते हैं, जिनमें राज्य संगठन के सूत्र, शक्तिशाली राज्य स्थापना के मन्त्र हैं

एक संघर्षमयी व्यक्ति का भाव चित्र तथा उसमें मानवता के विकास की संभावना उभरकर सामने आयी इसमें पूर्ण मानवता की दृष्टि है राजा और प्रजा के दुःख दर्दो और समस्याओं में समान रूप से हिस्सा लेते थे। उनकी भावनाओं का आदर करते थे। उनसे कंधा से कंधा मिलाकर चलना चाहते थे। वह जो करें, उसका पहला आधार हो प्रजाहित जिसमें विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना हो यही 'नीला चाँद' का मुख्य उद्देश्य एवं कथ्य हैं।

''मंजूशिमा'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की एक ऐसी प्रयोगात्मक और सशक्त रचना हैं, जो साहित्य विद्या की तय सुदा हदबन्दी को तोड़ती हैं। इसे सरोज स्मृति से सन्दर्भित किया हैं निश्चय ही 'मँजूशिमा' हिन्दी गद्य की 'सरोज स्मृति हैं, जिसमें एक साथ आत्मकथा, आत्मकथात्मक भावनायें, आत्म–स्मरण एवं पुत्री–संस्मरण, यात्रा वृत, चिकित्सा वृत, चिकित्सा–प्रक्रिया, चिकित्सा–विवरण डायरी पत्र ललित निबन्ध और दार्शनिकी सबके एक साथ दर्शन हो जातें हैं। डॉ0 सिंह का व्यक्तित्व, कहानीकार, उपन्यासकार, काव्यरूपक कार्य ललित निबन्धकार और चिन्तक तथा दर्शनिक का व्यक्तित्व रहा, ऐसा प्रतीत होता हैं मानो 'मंजूशिमा' में स्मृति और बुद्धि दोनों ही का समागम हैं। मंजू की मृत्यु के कारण ही पिता का कई प्रकार की वेदनाओं और समस्याओं का सामना करना पड़ा जिससे उनके जीवन में मंजू की मृत्यु से घोर निराशा और जीवन में स्तब्धता आ गयी थी। सरोज स्मृति में मृत्यु को कलंकित किया हैं। 'मंजूशिमा' में मृत्यु की स्थलीकृत और कंलकित करने से पूर्व उसे बार–बार चुनौती भी दी गई। 'स्मृति' में सरोज के चांचल्य और सौन्दर्य का वर्णन हैं, 'मंजूशिमा'' में मंजू की चंचलता, प्रतिभा व्यक्तिगत समस्यायें एवं रूग्णता का वर्णन हैं। जिससे मानव जाति को अपने उद्देश्य एवं कर्तव्य–बोध का परिचय कराती हैं।

'स्मृति' में पुत्री के प्रति पिता का एकोन्मुख विकल्प प्यार हैं, मंजू में पुत्री के प्रति पिता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व चिन्ता और आवृत कर्मण्यता को दर्शाया गया हैं। डॉ0

शिवप्रसाद सिंह ने 'मंजू' में कई प्रकार की चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी समस्यायें और उनका समाधान करने के तरीके बतायें गये हैं। मंजूशिमा 'मंजू' की जीवन संघर्ष गाथा हैं, "मंजू की केन्द्रीय स्मृतियाँ है और उनकी कई प्रकार समस्यायें, स्मृतियाँ और संस्मरण लेखक इन स्मृतियों में से एक का भी विस्मरण नहीं कर सका हैं, बहुत कुछ भुलाना चाहा हैं, सफलता नहीं मिलीं है घाव कभी भरता नहीं हैं, उस पर धूल चढ़ती जाती हैं जरा सा कुरेदने से टीस जम जाती हैं तथा कई प्रकार की जीवन की समस्याओं को भी 'मंजूशिमा' में दर्शाया गया हैं।"........[14]

डॉ0 सिंह ने वस्तुतः उसमें वेदना, मृत्यु, समस्या और समाधान के नैकट्य के जरियें मंजू को अपनी अन्तरात्मा के सन्निकट कर लिया है इसीलिए मंजू अपनी अनुपस्थितियों में भी उसके पास सदैव उपस्थित हो इस दृष्टि से 'मंजूशिमा' वेद–उपनिषद नहीं बल्कि 'मंजू' उपनिषद् हैं। उपनिषद् निकट बैठकर ही समझी जाती हैं, इसके द्वारा कई प्रकार के समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता हैं। मृत्यु का यह निष्कंप, सहज, स्वीकार, जो मृत्यु को भी मंजू बना देता हैं, 'मंजू' अपने स्थूल शरीर में अपने पिता के सामने उपस्थित नहीं हैं परन्तु वह कई प्रकार की समस्याओं का समाधान हैं जिसका चिन्तन करने से कई समस्याओं का समाधान हो जाता है। मंजू जीवन का एक उद्देश्य है जो मानवीय जीवन को सार्थक एवं उत्कृष्टता का पाठ सिखाती हैं।

"शैलूष" – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की बद्किस्मत जिन्दगी की गाथा हैं जिसमें कई प्रकार की जातीय, पारिवारिक और पारम्परिक समस्याओं को व्यक्त किया हैं। नटों को बनाफर भी कहा जाता है, इनकी अपनी व्यक्तिगत समस्याओं और सामाजिक कबीलाई जीवन की भीतरी दास्तान हैं। 'शैलूष' उपन्यास में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने विभिन्न पात्रों के बीच में जमीन सम्बन्धी समस्याओं को लेखक ने बताया हैं। "लोग आजकल चिल्ला रहे हैं, प्रदूषण रोको। नदियों को प्रदूषण से बचाओ"......[15]

जिसमें अनेक पात्र नौजादिक पाण्डे, परताप सिंह, सिलोचन सिंह, ननकू वासुदेव तथा सावित्री जैसे कई प्रकार की पारिवारिक और जमींन सम्बन्धी समस्याओं को लेखक ने दर्शायाहैं।

शैलूष में पुलिस कलैक्टर और कचहरी द्वारा भी कई प्रकार की समस्याओं को सुलझाया भी गया और उनका समाधान भी निकाला है। ''शैलूष'' में पुलिस प्रशासन की व्यवस्था, और उनके काम करने के तरीके को कई प्रकार की समस्याओं के समाधान के रास्ते को भी डॉ0 सिंह ने बताया है नटो की जिन्दगी खानाबदोश, जरायमपेशा और यायावार जीवन, अशिष्ट और क्लेश भरे जीवन को उन्होंने अपनी भाषा में इसको बांध दिया नटो को राजपूत से सबसे अधिक मोह है इन शब्दों ने इनके जीवन में कई प्रकार की समस्यायें खड़ी कर दी हैं तथा राजपूत शब्द उनको झकझोरता हैं।

नटों के जीवन का विकास रूक गया है इन्हें गोड़, कंदरवासी, पुरातन परिजनों की संन्ताने कहा गया हैं। शैलूष एक शिक्षाप्रद उपन्यास है जो जातीय बन्धनों को तोड़कर नई प्रकार की जातीय सोपानों और क्रमों को स्थापित करना चाहता है जिसके आधार पर विभिन्न प्रकार की जातीय समस्याओं का निराकरण किया जा सकें। शैलूष सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों एवं किवदन्तियों को समाप्त करने का उद्‌देश्य मानव–समाज को देता हैं।

''औरत'' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की प्रत्येक कृति अपने साथ एक सवाल लेकर उपस्थित होती हैं जो निरन्तर पाठक के मन को उत्तेजित करती हैं वास्तविकता यह हैं नारी आज भी उपेक्षित हैं समाज के कठोर बन्धनों से बँधी हैं, उसके साथ कई प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, पारम्परिक, आर्थिक और नैतिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक समस्यायें जुड़ी हुयी हैं, जो मानवीय जीवन और समाज

से कहीं न कहीं टकराती हैं। भारतीय 'औरत' व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु हैं औरत या नारी आज भी निजी है समाज में यौन शोषण सम्बन्धी समस्याएँ आज भी विद्यमान है जो समाज और राष्ट्र के लिए अभिशाप हैं जिसने कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक और चारित्रिक समस्यायें खड़ी कर दी हैं प्रत्येक पुरूष का उत्तरदायित्व है नारी की रक्षा करना और उसको भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनुसार सम्मान देना यह प्रथम मानव का कर्तव्य हैं और औरत कोई भोग–विलास की वस्तु नहीं है बल्कि यह एक नयी सभ्यता का शिरोमोर है।

रूपवा, राजी, चन्द्रा, रोशन, सुखिया, प्रतिभा, बंसल, किसी न किसी से सामन्ती सोच से ग्रस्त समाज के शोषण की शिकार है। फर्क इतना है कि चन्द्रा और प्रतिभा में अदम्य, साहस है। वे समाज के साथ टकराकर चूर–चूर हो सकती हैं, पर झुक न हीं सकती। रूपवा, राजी और सुखिया के साथ कई प्रकार की व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक समस्यायें है जिनका कि यह समाधान करने का रास्ता निकालती हैं।

''चन्द्रा को जायदाद लालची सम्बन्धियों के कारण वैधव्य झेलना पड़ा और प्रतिभा को प्रेमी केवल उसका साथ छोड़ देता है कि उसे घर से बाहर निकलकर काम करने वाली औरत चरित्रहीन नजर आती है''.....[16]

पुलिस अधीक्षक जैसे सम्मानित पद पर कार्यरत् प्रतिभा बंसल को सुदर्शन जैसे निकृष्ट व्यक्ति से ''राँड'' ''चरित्रहीन'' और ''दो कौड़ी की औरत'' जैसे अपशब्द सुनने पड़ते हैं जो प्रतिभा बंसल के जीवन में कई प्रकार की समस्यायें खडी करते है। परन्तु बसंल का पद उच्चकोटि का है इस कारण उसमें सहन करने का अदम्य साहस और क्षमता हैं वह न्याय का साथ देती हैं तो उसका तबादला कर दिया जाता हैं प्रतिभा बंसल के साथ कई प्रकार की प्रशासनिक समस्यायें हैं। ''औरत''

सामाजिकता और नैतिकता का पाठ सिखलाता हैं। जिसमें संघर्ष करने की अपार क्षमता एवं वीरता हैं।

नारी की दुर्दशा की कहानी न तो राजी, सुखिया, चन्द्रा, और सोनवाँ से शुरू होती हैं और न ही खत्म होती हैं। हजारों वर्षो का भारतीय इतिहास कहता हैं कि नारी कई रूपों में पायी जाती हैं जैसे उदाहरण के लिए अपाला, अश्वघोषा और गार्गी कहीं पर वीरांगना जैसी रानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती, रानी अहिल्याबाई तथा राजनीति में निपुण विजय लक्ष्मी पंडित, सरोजनी नायडू, इन्द्रिरा गाँधी तथा शास्त्रार्थ में निपुण विद्योत्तमा और भट्टामुंडन मिश्र की पत्नी इत्यादि नारी का स्थान अतीत से लेकर वर्तमान तक कई स्थानों पर श्रेष्ठता को सुशोभित करता हैं नारी रत्न हैं इन रत्नों को पाये बिना पुरूषों ने नारी उपलब्धि को बेकार समझा है बेशक कीमती होने की इस मानता ने नारी पर कब्जा करने की बेइन्तहा इच्छा को जन्म दिया है। हर युग में उसे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा चाहे वह रामायण कालीन समाज हो या महाभारत कालीन समाज हों। वर्तमान में भौतिकतावादी समाज नारी का सही मूल्यांकन नहीं कर पाया जिससे समाज में नारी सही प्रतिष्ठा एवं स्थान को अर्जित कर सकीं।

''गली आगे मुड़ती है'' – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास 'गली आगे मुड़ती हैं में कथावस्तु और शिल्प दोनों स्तर पर औपान्यासिक कला को नवीन मोड़ दिया गया हैं। उपन्यास आधुनिक काशी की संस्कृति, वहाँ के विभिन्न सम्प्रदायों, जातियों, वर्गो की विभिन्न सभ्यता, संस्कार समस्याओं और समाधान का जीवन्त दस्तावेज है काशी में सभी अलग–अलग होकर भी उसी प्रकार एक हैं, जैसे नुक्कड़ पर सभी गलियाँ देश भाषा, समस्या, जातिवाद, वैवाहिक प्रतिबन्ध और प्रान्तीयता की सीमा को तोड़कर बाबा विश्वनाथ की धर्म परायण नगरी में सबकों एक कर दिया हैं एक ओर वहाँ के निवासी, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी और बिहारियों के खान–पान, वेशभूषा, रहन–सहन, भाषा, सभ्यता, नृत्यगीत और संस्कार

है तो दूसरी ओर वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उछल–कूद करते दिखते है इन सभी की अपनी समस्यायें है जीवन में कही अकुलाहट है तो कही घबराहट हैं, तो कई समस्यायें भी है तो निवारण भी है जवानी के जोश में डूबता–तिरता युवा वर्ग है तो गाँवटी बांधे, चश्मा लगाये, गले में लाल और नीले रूमाल, गुण्डे और पण्डे हर गली में सांड की तरह घूमते फिरते हैं। साधु भी हर जगह के युवा नेता करते कुछ है परन्तु आड़ में कुछ और ही गुल खिलाते हैं यही हालात आज की फारवर्ड बनने वाली छात्राओं की भी हैं। समाज में कई प्रकार की विसंगतियाँ, कुरीतियाँ और समस्यायें है जिनके निवारण के रास्ते भी है यही काशी का समाज है जिनकी अपनी एक जीवन शैली हैं। काशी भारतवर्ष में ही नहीं सारे विश्व में एक जीवन को नया मोड़ देने वाली भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता का केन्द्र बिन्दु हैं। 'गली आगे मुड़ती है' नामक उपन्यास को आत्मकथात्मक शैली में लिखकर आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया हैं, जिसमें रामानन्द की वाक्पटुता और पॉडित्य हरिमंगल की पैनीदृष्टि, दृढ़निश्चय, यथार्थ दृष्टिकोण और सिद्धेश्वर भट्टाचार्य की सहज गम्भीरता और इन सभी पात्रों की विभिन्न समस्याओं को 'गली आगे मुड़ती है' में उजागर किया है। उपन्यास का मूल स्वरूप वर्णात्मक न होकर संवादात्मक हैं। 'गली आगे मुड़ती है' में उपन्यासकार कटु यथार्थ को सहज भाषा में पैनी दृष्टि के साथ प्रस्तुत करने में लेखक को सफलता मिली।

'युवा आक्रोश' जैसी ज्वलन्त एवं सबके लिए सिरदर्द समस्या को इस उपन्यास में सहज एवं निर्लिप्त होकर प्रस्तुत किया हैं। उपन्यास की चिर–परिचित लीक से हटकर डॉ0 सिंह ने समूचे विश्व में एक साथ धधकती ज्वाला के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को रखकर विभिन्न पहलुओं की तह तक जाकर पाठकों को निर्णायक स्थिति में पहुँचाकर मौन साध लिया है। छात्र आन्दोलन द्वारा पैदा की गयी समस्यायें एवं सुविधा परस्त जीवन बिताने की चाह एवं मन की अपरिपक्ता को डॉ0 सिंह ने चित्रण करके सीधे–सीधे तरीके से उनका समाधान भी निकाला हैं। पात्रों में नाम, गुण, और कर्म के अनुरूप उनकी अपनी व्यक्तिगत समस्यायें है जो

मानवीय जीवन में कहीं न कहीं किरणपुँज और ज्योतिपुंज के रूप में टकराती रहती हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का प्रत्येक उपन्यास प्रेरक तथा मानव को सही मार्गदर्शन का पाठ सिखाता हैं।

''दिल्ली दूर है'' – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 13वीं और 14वीं शताब्दी के संघर्ष पूर्व समस्याओं से ग्रसित भारतीय जीवन पर 'दिल्ली दूर है' यदि 'जुझौती खण्ड'' (बुन्देलखण्ड) और दिल्ली खण्ड को एक ही उपन्यास के दो खण्ड प्रस्तुत किये हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'चारूचन्द्र' लेख का समय 13वीं सदी है इस प्रकार दोनों ''प्रतिष्ठित रचनाकारों ने 13वीं सदी के सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष समस्याओं और पीड़ाओं को औपन्यासिक रूप प्रदान किया हैं।''.......[17] नयी पीढ़ी को प्राचीन परम्पराओं के साथ–साथ उद्देश्यात्मक बनाने का प्रसास किया। एक ओर दोनो उपन्यासकरों ने वर्तमान युग की चेतना और सन्दर्भ के साथ भारत के संघर्ष को पुनः सृजित किया हैं दूसरी ओर मानवीय उद्देश्य, मानवीय कर्तव्य उद्देश्य और समाधान के साथ स्वतंत्रय रूप से विभिन्न त्रासदियों को चित्रित कर हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों को गरिमा प्रदान की हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की रचना भूमि 13वीं सदी उत्तर और मध्य भारत की है तथापि दोनो के कथानक एक दूसरे से भिन्न है। दोना के नायक भिन्न हैं। डॉ0 सिंह कहते हैं जितनी भी समझ है और जितनी भी सदाशयता उसी का सम्बल लेकर मैने यह खण्ड की रचना की हैं। मैने इस्लाम धर्म को गहराई से समझने की कोशिश की हैं।

'दिल्ली दूर है' में जो उत्तर भारत की सारी राजनीतिक गतिविधियों और सांस्कृतिक संरचना को जीवन्तता के साथ प्रस्तुत कर देता है इस उपन्यास में दिल्ली सल्तनत की कथा ऐतिहासिक यथार्थ की रोमांचपूर्ण गाथा तथा सूफी फकीरों बाबा फरीद एवं

सादी मौला तथा नाथ योगी शबल पीर और ज्ञानेश्वर के द्वारा एक नई मानवीय संस्कृति के स्थापना समाधान और निवारण इस उपन्यास की प्रमुख देन हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की कृतियाँ विभिन्न उद्देश्यों से परिपूर्ण हैं। प्रत्येक कृति अपने आप में जीवन को रोचक एवं आलम्बन व सम्बल प्रदान करती हैं।

''वैश्वानर'' – डॉ0 सिंह का 'वैश्वानर' एक युगान्तकारी उपन्यास है जिसमें लेखक ने अपने आपको एक महान पुरुषार्थी के रूप में वाक्य संरचना का अनुशीलन एवं सांस्कृतिक जीवन को व्यक्त किया है डॉ0 सिंह ने 'वैश्वानर' में विभिन्न प्रकार की मानवीय मनोवृत्तियाँ तथा आधुनिक परिवेश, अस्तित्वाद का परिवेश और विचार बोध का यथार्थ प्रतिबिम्ब का चित्रण किया है, जो मानवीय गतिविधियों से और उसकी समस्याओं की एक नयी पहचान छोड़ता हैं। वैश्वानर के द्वारा विभिन्न प्रकार की जीवन की संघर्षपूर्ण और यथार्थपूर्ण समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। इसमें लेखक ने अपनी एक विशिष्ट छाप छोड़ी हैं तथा डॉ0 सिंह का व्यक्तित्व जीवन्तता की कड़ी था। काशी की मुख्य समस्या उस समय पूरा नगर कुत्सित, दुर्गन्धित पदार्थो से भाराक्रान्त हो गया हैं। संक्रामक रोग जनपदोध्वंसक तक्मा रोग से ग्रस्त काशी के मुण्डा और किरात आदिवासी पीड़ित हैं। उसी समय काशी में ऊँच–नीच का भेदभाव विद्यमान है। किरातों को अछूत समझा जाता था। मन्दिरों में प्रवेश भी निषिद्ध था धनवन्तरि ने स्वयं स्वीकार किया है, ''हम मुनि वशिष्ठ की परम्परा नहीं ढ़ोते। हम विधाता की सृष्टि में किसी को स्पृश्य, किसी को अस्पृश्य नहीं मानते। हमारी ऋषि–परम्परा दीर्धतमा की है, गृत्समद की है। सभी भगवान के रूप हैं।'' ......[18]

'वैश्वानर' का सामाजिक स्वरूप सरस्वती कंठ से पूरब उड़ीसा, दक्षिण शूपरिक, पश्चिम मृगुच्छा तथा उत्तर हिमालय तक फैली आर्य जाति के जीवन मूल्यों के ताने बाने से बना हैं और सामाजिक ढ़ाचे में सभी जातियों एवं मूल्यों का मिश्रण है।

'वैश्वानर' में जातीय संघर्ष के कई कारण है मुण्डा तथा किरात आर्यो की एक जाति है। जिनका शासन कभी था। मान्धता ने इनका राज्य छीनकर इन्हें जंगलों में भटकने के लिये विवश कर दिया है। पाणि डकैत है। ये सप्तसिन्धु से लेकर काशी तक फैले अराजक तत्व है। इनका जीवन लूटपाट पर आधारित है। यदुकुल की पांच तालजंद्य कही जाती हैं ये सभी संग्रह बनाकर यज्ञ संस्कृति तथा आर्य शासन व्यवस्था का विरोध करती है। काशी को समझने के लिए आर्य, मग निकष पर तमाम प्रवासी तत्वों को समझने की जरूरत है, क्योंकि काशी केवल मरने के बाद आने की जगह नहीं हैं, मरने के लिए भी अर्थात जीवन के लिए भी आने की जगह है।

''कुहरे में युद्ध'' डॉ0 सिंह का 'कुहरे में युद्ध' एक कलंकित उपन्यास है। इसमें मध्यकाल से लेकर आजादी पूर्व तक का भारतीय इतिहास उथल–पुथल युक्त रहा। जिसको अपने शब्दों में व्यक्त किया। महमूद गजनवीं के साथ आक्रमणों का जो क्रम आरम्भ हुआ उसने भारतीय संस्कृति को जिस प्रकार क्षति पहुंचाने का प्रयत्न किया, उससे पूर्व वैसा कभी नहीं हुआ था। उसने हमारे देश में कई प्रकार की समस्यायें खड़ी कर दी थीं। जो आज भी मानवता पर कुठाराघात करती हैं। अलक्षेन्द्र से लेकर शक और हूणों तक का उद्देश्य इस देश को लूटना मात्र था और भारत को पद्दलित करके यहाँ की संस्कृति, सभयता और अर्थव्यवस्था को बर्बाद करके कई प्रकार की नई समस्यायें खड़ी करना मात्र केवल इनका उद्देश्य था। सीमा पार से आने वाले आक्रमणकारियों का उद्देश्य इस देश को लूटना ही नहीं बल्कि अपने नये राज्य की स्थापना करने, आर्य और वैदिक परम्परा सभ्यता के समक्ष कुछ नयी समस्यायें और सिद्धान्तों को जन्म देना जिससे कि भारतीय लोगों में असंन्तोष बढ़े और कई प्रकार की विसंगतियों का जन्म हुआ। प्राचीन उद्देश्य को नष्ट करके नये इस्लामिक उद्देश्य को स्थापित करना यही मुस्लिम शासकों की इच्छा थीं।

मानव ने मानव के विनाश के लिए अस्त्र–शस्त्र के क्षेत्र में जितना विकास किया है उतना ही अगर मानव निःस्वार्थ प्रेम के लिए करता तो वह जगत स्वर्ग हो जाता है। प्रेम कोई सीधी–सादी वस्तु नहीं रहीं घृणा के कार्य को सम्पादित करके राजा–महाराजा, सुल्तान अमीर सब अपने–अपने निःस्वार्थ प्रेम को जनता तक पहुँचाने का पर्दा डाले, वतन, मजहब, अल्लाह या फिर मातृभूमि धर्म और ईश्वर को एक दूसरे को शत्रु मानकर नयी–नयी समस्याओं को खड़ा करना है। जिससे कि मानव जाति का पतन और ह्रास हुआ। हिन्दुस्तान में सुल्तान अल्तमश की छाया में निर्मित महान इस्लामी राज्य की मुसलमान अपने धर्म की जीत और विश्व के लिए वरदान बताते हैं। इन सभी कारणों से विश्व में आज कई प्रकार के जातीय–संघर्ष, जातीय–तनाव, जातीय–समस्यायें और मजहबी रूढ़िवादिता ने सारे विश्व के सामने नये कट्टरपंथी प्रतिमानों को स्थापित किया है। जिससे मानवीय आचरण में कई प्रकार की बुराइयाँ, प्रतिरोध और द्वेष की भावना पनप रही हैं। मानव धार्मिक एवं भौतिक उद्देश्य को भूल गया उसने जीवन में निकृष्ट एवं अहितकारी परम्पराओं को अपना लिया।

प्रत्येक उपन्यासकार ने विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उजागर किया हैं। ये समस्यायें मानव जाति के लिए चुनौती है। जिनसे मानव को कई बार जीवन में अस्तित्ववादी संघर्षवादी और मायावादी बनना पड़ता है, मनुष्य अपने आप में एक चुनौतियों से परिपूर्ण इस सृष्टि का अंश है। जिससे मानव जीवन में कई बार उतार चढ़ाव और जय पराजय का सम्मिश्रण मिलता हैं।

4. उद्देश्य की वर्तमान से संगति

साहित्य की जड़े जीवन में निहित हैं, और उसके बदले में साहित्य मानवीय उद्देश्यों की वर्तमान से संगति का पथ प्रशस्त करता चलता हैं हम लोग प्रायः कहा करते हैं कि साहित्य में जीवन का यथार्थ और वर्तमान की संगति या प्रभाव लाक्षणिक दृष्टि से सही हैं, किन्तु बारीकी में जाने पर वस्तुस्थिति कुछ और मिलती है। उपन्यास मानवीय जीवन को सही रास्ते बतलाते हैं और मानव को उद्देश्यात्मक बनाते हैं जिससे कि वह अपने जीवन को प्रयोगशील, व्यावहारिक और प्रयोगात्मक बना सकें।

"मनुष्य जीवन जीता है और उसकी अनुभूति को अपने व्यक्तित्व और संगति में नयी भंगिमा देकर समाज और साहित्य के रूप में परिणित करता हैं।''.......[19]

उपन्यास के जीवन को लें, उपन्यास के पात्र प्रायः जन्म ले चुके होते हैं, वे मर सकते है पर मरते कम हैं। वे सोते भी नहीं हैं। कभी सोते है तो उनका सोना साभिप्राय होता हैं। जीवन के प्रसंग या दृश्य को देखें तो प्रत्येक घटना उपन्यास से टकराती है। चाहे वह जीव की त्रासदी हो, वर्तमान की घुटन हो, या वैज्ञानिक अवधारणायें हो ये सब उद्देश्यात्मक होती है जो मानवीय जीवन को कई बार उद्देश्यात्मक बनाती है जिससे कि उपन्यास और जीवन आपस में निकटता, समीपता और विभिन्न प्रकार की संगति और कुसंगति कराते हैं।

प्रत्येक उपन्यास उद्देश्यात्मक होता है जैसे मुंशी प्रेमचन्द्र का गोदान, गबन, सेवा सदन, मनोरमा, रंगभूमि तथा कर्मभूमि या वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास हो जैसे – 'झाँसी की रानी' 'गढ़कुंडार' ' कचनार' या शिवप्रसाद सिंह के आंचलिक उपन्यास कालकिंत उपन्यास या फिर 'नीला–चाँद' जैसा महाकाव्यात्मक उपन्यास हो ये सब विभिन्न उद्देश्यों की वर्तमान संगति जोड़ते हैं। प्रत्येक उपन्यास की अपनी सार्थकता और कथानक, काव्य चेतना, नाट्यबोध तथा

मानव–चेतना के उर्ध्व स्वरों का साक्षात् कार्य भी संगति से टकराता हैं। उद्देश्य की वर्तमान संगति से आधुनिक परिवेश, अस्तित्ववाद, आधुनिकतावाद, वैज्ञानिक सोच तथा जनचेतना की नयी पहचान बनाती हैं। उद्देश्य हमेशा संगतिपूर्ण और प्रभावकारी हो जिसे मानव अपने जीवन में उतार कर अँधेरे को दूर कर उजाले की सही किरण अपनाने का प्रयास करता हैं।

पात्रों को उनके परिवेश, प्राकृतिक वातावरण और ऐतिहासिक परिवेश में खड़ा करना डॉ0 शिव प्रसाद सिंह को प्रिय रहा है।

आधुनिक दृष्टि केन्द्र के अन्तर्गत जब अतीत पुनः जीवित होता है तो इस प्रक्रिया में अतीत वर्तमान के लिए अधिक सार्थक और महत्वपूर्ण बन जाता है और दूसरी ओर समकालीन अनुभूति को काल की गहराई में उतार कर तीव्रता का एक सर्वथा नया आयाम पैदा होता है इस प्रकार हम अतीत को अपने वर्तमान से जुड़ा हुआ पाते है और उसे सर्वव्यापकता, सार्थकता के साथ देख पाते हैं।

उपन्यास में एक लम्बी कथा होती हैं, जिसमें समाज का चित्रण है और पात्रों का चरित्र है अतीत्, वर्तमान और भविष्य के रूपरेखाओं की अनुभूति और उदृदेश्य की पूर्ति होती है। डॉ0 सिंह का उद्देश्य अपनी घनीभूत भावनाओं को नहीं, अपितु साक्षात् जीवन के उद्देश्य की वर्तमान संगति को प्रस्तुत करना और उसे परिचित कराना है। पात्र जितने स्वतन्त्र और स्फूर्तिपूर्ण होते है उतने ही वे समाज, परिवार और राष्ट्र के लिए उद्देश्यात्मक, परिमात्मक, शिक्षात्मक और गुणात्मक होगे। उपन्यास की जीवन गाथा–काव्य की भांति प्रतीकात्मक नहीं बल्कि उद्देश्यात्म्क, यथार्थतात्मक और विस्तारात्मक होता है।

उपन्यासकार काल के तीन रूपों में जीता है। वह हमें भूत वर्तमान और भविष्य से परिचित करता है ये तीनों रूप हमारे जीवन के सापेक्ष अनुभूति है।

मनुष्य अपने जीवन भर जन्म से मृत्यु की ओर निरन्तर गतिशील रहता है और अनवरत क्षण–क्षण परिवर्तनीय होता है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन के आधार पर मानव जाति की परम्परागत जीवन गति का भी बोध ग्रहण करता हैं। जीवन यात्रा के वे अंश जिन्हें मनुष्य ने तथा मानव जाति ने तय कर लिये है उन्हें वह विगत की संज्ञा देता है। जिस क्षण में वह अतीत यात्रा से स्वयं को पृथक करके देख रहा है वह क्षण उसका वर्तमान और जिस काल वर्तमान में न रहकर अनगिनत बन जायेगा, वह परिवर्ती समय मनुष्य की कल्पना में उसका भविष्य है इस प्रकार मनुष्य ने काल प्रवाह का बोध और संगति से अपने को परिवर्तनशील स्थिति सें जोड़ लिया हैं। वर्तमान की संगति और परिवर्तन बोध पर हमारा काल बोध निर्भर हैं। जिस चिन्तन से मनुष्य तथा अपने वर्तमान में परिवर्तन सम्बन्धी मान्यता स्वीकार करता है वहाँ दृष्टा की सृष्टि में निहित किसी काल निरपेक्ष निश्चल मूर्ति के दर्शन होते हैं डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने आध्यात्मवादी जन जगत में पंचभूतों को मिथ्या ठहराकर आत्मतत्व को सर्वोपरि तत्व के रूप में ग्रहण करते है, आत्मा उनकी दृष्टि मे अजर–अमर है और अजन्मा है। वह परिवर्तनशील नही हैं आत्मा कालातीत हैं। आत्मबोध सूक्ष्म चिन्तन पर विषय है उसे अपनी वर्तमान संगति से जोड़कर प्रकाश और अन्धकार को विभाजित कर सकता हैं।

'अज्ञेय' के उपन्यास "पात्रों के द्वारा इस तत्व पर प्रकाश डाला गया है तथा सत्य से परिचित कराया कि मनुष्य का जीवन बोध को लेकर चलता है और काल बोधसूर्य के प्रकाश पर निर्भर है दूसरे शब्दों में मनुष्य के जीवन का आधार प्रकाश है। और प्रकाश का स्त्रोत सूर्य है।"......[20] चरित्र और संगति एक प्रकार से मानव व्यवहारों की संरचना है चरित्र इस संसार में वास्तविक व्यक्ति के रूप में रहते हैं किन्तु नाटकीय पात्रों की संगति अपनी विधा में संसार में ही बसतें और क्रियारत रहते हैं। कुछ लोग चरित्र संरचना और उद्देश्य की वर्तमान से संगति की गहराई में जाने की कोशिश नहीं करते हैं मानवीय व्यवहारों और जीवन का सक्रिय गुणनफल संगति के आधार पर उनका मूल्याकंन किया जा सकता है। इसलिए

संगति कोई स्थिर वस्तु नहीं है वस्तुतः मानवीय प्रकृति और उनके बीच की क्रिया व्यापार किसी भी चरित्र की अवधारणा के लिए अनिवार्य तत्व है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास का उद्देश्य चरित्र संरचना, जीवन बिम्ब और मानवीय व्यवहार विचार और भाव की भूमिका, भौतिक वस्तुओं से परे जाने की आवश्यकता, आत्मिक तथा भौतिक प्रेम, धन लिप्सा, सत्ता का लोभ, अहम्–मुक्ति, शान्ति और स्वतन्त्रता की कामना, ईष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, भय, पाप, त्रासदी आदि का वर्णन करना है। ये समस्त कारक मानव को संगति और कुसंगति से अवगत कराते हैं, जिससे मनुष्य चेतना और अवचेतना आन्तरिक प्रवृत्ति और बाह्म शक्ति की पारम्परिक सम्बन्धों को एवं नये सूत्रों को जन्म देती हैं। वर्तमान समय में जो लोग आधुनिकता को नगर और उसमें भी विशेष महानगरों तक केन्द्रित करना चाहते हैं, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह को उपन्यासों के द्वारा नगरीय महानगरीय ग्रामीण संस्कृति और संगति को तेजी से बदलती हुयी जिन्दगी पर नजर डाली उन्होंने ग्रामीण संस्कृति और संगति को उद्देश्यात्मक बनाया हैं, और उपन्यासकार की मूल दृष्टि रूमानी न होकर यथार्थ के अधिक निकट है। यह कहिये कि डॉ0 शिव प्रसाद सिंह एक बिन्दु पर स्वयं संघर्ष करते है और गांव की रूमानी जिन्दगी के बीच से यथार्थ दृश्यों को उठा लेते हैं जिनका सम्बन्ध वर्तमान समय की ग्रामीण संस्कृति और संगति और संस्कारों से जोड़कर उसको उद्देश्यात्मक बनाना चाहते है।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के ऐतिहासिक, आँचलिक और सामाजिक उपन्यासों का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि प्रत्येक उपन्यास वर्तमान समय की परिस्थितियों के अनुसार मानवीय जीवन से इसका सम्बन्ध हैं 'दिल्ली दूर है' और कुहरे में युद्ध' नामक उपन्यासों में ऐतिहासिक तत्वों से परिचित कराकर मानवीय उद्देश्य और संगति पर जोर डाला हैं। अतीत और वर्तमान की संगति पर जोर डाला हैं। अतीत और वर्तमान की संगति में काफी अंतर है। अतीत की संगति वर्तमान की संगति से अधिक चुनौतीपूर्ण थी। जिसमें मानव जाति को कई प्रकार के कष्ट भोगने पड़े संगति के द्वारा ही मानव की सोच को बदला जा सकता हैं।

विभिन्न साहित्यकारों ने संगति और कुसंगति को लेकर विभिन्न रचनायें की जिनके द्वारा मानवीय सभ्यता बनी और बिगड़ी। संगति के आधार पर मानवीय सोच बिम्ब, प्रतिबिम्ब, व्यवहार और पुरानी चेतना की बातों को बदला जा सकता है। वर्तमान के समय में उपन्यास एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा मानवीय विचारधारा को न्यायसंगत, धर्मसंगत एवं तर्कसंगत बनाया जा सकता हैं। मानवीय प्रतिमानों को सही आयाम देकर उसमें तनाव भरे द्वन्द्व को समाप्त कर कलात्मक जीवन बनाया जा सकता हैं।

ग्रामीण और शहरी जीवन की संगति में काफी अन्तर हैं। ग्रामीण संगति प्राचीन परम्पराओं, रीतिरिवाजों और तौर–तरीको पर आधारित है, परन्तु शहरी संस्कृति की संगति में आधुनिकता, भौतिकतावादी, बनावटीपन और विभिन्न प्रकार की दिखावापूर्ण जीवन के संकेत और प्रतीक स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। मानवीय सोंच में ग्रामीण और शहरी संगति में काफी फर्क है डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अलग–अलग वैतरणी में करैता गाँव की जमींदारी प्रथा वहाँ की लोक संस्कृति, लोक गाथा और लोक परम्पराओं से परिचित कराया है। अध्ययन, विश्लेषण के क्रम में यह निरंतर बात सामने आती गयी कि साहित्य मुख्यतः समाज पर निर्भर क्रिया या कला हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह शिल्पी कथाकार थे। उन्हें उनके विनोदी मित्र ने 'इमारती आदमी' कहा था। इमारती अर्थात ईंट पर ईंट रखने वाला। खिड़की दरवाजे, आँगन छत के साथ वास्तुशास्त्र की दृष्टि से घर को गृह बनाने का पाण्डित्य उनके रचनाशिल्प को कथा अर्थात रचना विन्यास अर्थात 'रचने' की दृष्टि से विश्लेषित करते समय जातीय प्रतीको, दन्तकथाओं को भी समझने का प्रयास किया गया है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों का "पैटर्न" या ढाँचा एकहरा नहीं है इसलिये उनके सभी उपन्यास बाह्य ढ़ाचों में उपन्यास की सारी कलाओं से सम्बन्धित है। लेकिन कथानक के चयन से लेकर उनकी सम्प्रेषण उर्जा को एक अर्थान्तर में भी

न्यस्त करते हैं। इसलिए उनकी अर्न्तवस्तु जटिल हैं। वास्तव में शिवप्रसाद जी कलावादी थे। कला को भी वे कौशल की ऊर्जा से रचते थें। इसलिए उनके उपन्यासों में कथ्य कथानक में ही अपना निहितार्थ नहीं प्राप्त करते, वे कथा के टुकड़ो का सम, विषम तैयार करते हैं। डॉ0 सिंह के उपन्यासों का ढाँचा मुंशी प्रेमचन्द्र की तरह सीधा नहीं, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह बहुअर्थी होता है डॉ0 सिंह अपने काल में बैठे कालातीत, इसी तरह अतीत में बैठे–बैठे उत्तर अतीत में बैंठ लेते हैं।

5. संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय शशिभूषण 'शीताशु' 'शिव प्रसाद सिंह' सृष्टा और सृष्टि पृ0 223, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
2. 'वैतरणी से ....वैश्वानर तक की यात्रा' आनन्द कुमार पाण्डेय पृ0 67 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
3. पाण्डेय शशिभूषण 'शीताशु' 'शिव प्रसाद सिंह' सृष्टा और सृष्टि पृ0 232–233, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
4. 'अलग–अलग वैतरणी' शिवप्रसाद पृ0 10।
5. पाण्डेय शशिभूषण 'शीताशु' 'शिव प्रसाद सिंह' सृष्टा और सृष्टि पृ0 61, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
6. 'अणुवृत्त' पत्रिका 1 जून 1989 अंक में छपा।
7. 'मंजूशिमा' शिवप्रसाद पृ0 41।
8. 'शैलूष' शिवप्रसाद पृ0 13
9. सारिका – 1 फरवरी 1980, पृ0 14।
10. गली आगे मुड़ती है–'नुक्कड़ सभा' (भूमिका) सें।
11. 'दिल्ली दूर है' डॉ0 शिवप्रसाद सिंह (भूमिका) से।
12. हिन्दी उपन्यासों के प्रतिमान, डॉ0 शशिभूषण सिंघल पृ0–28 कला मन्दिर प्रकाशन नई सड़क दिल्ली।
13. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' डॉ0 जय किशन प्रसाद पृ0 662 विनोद पुस्तक प्रकाशन मन्दिर आगरा।
14. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' डॉ0 जय किशन प्रसाद पृ0 365 विनोद पुस्तक प्रकाशन मन्दिर आगरा।
15. 'शैलूष' शिवप्रसाद सिंह पृ0 1 नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
16. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' डॉ0 जय किशन प्रसाद पृ0 288।
17. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' डॉ0 जय किशन प्रसाद पृ0 238।
18. नीला चाँद शिव प्रसाद सिंह पृ0 71।
19. 'हिन्दी उपन्यासों के प्रतिमान' डॉ0 शिव भूषण सिंघल पृ0 8।
20. 'हिन्दी उपन्यासों के प्रतिमान' डॉ0 शिव भूषण सिंघल पृ0 31।

अष्टम अध्याय

१. डॉ० सिंह के समस्त उपन्यासों की सारभूत आलोचना

  १. अलग-अलग वैतरणी

  २. नीला चाँद

  ३. मंजूशिमा

  ४. शैलूष

  ५. औरत

  ६. गली आगे मुड़ती है

  ७. दिल्ली दूर है

  ८. वैश्वानर

  ९. कुहरे में युद्ध

२. उपन्यासों का प्रदेय

३. उपन्यासकारों में शिव प्रसाद सिंह का स्थान

४. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अष्ठम अध्याय

अष्टम अध्याय

उपसंहार

1. डॉ0 सिंह के समस्त उपन्यासों की सारभूत आलोचना

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह हिन्दी नवलेखक और समकालीन लेखकों में अच्छे आलोचक और विचारक हैं। डॉ0 सिंह नवलेखक या समकालीन प्रेमचन्द्र, प्रसाद या रामचन्द्र शुक्ल भले ही हो जाये, पर वे महावीर प्रसाद द्विवेदी कभी नहीं हो सकते, उनमें सृजकों को स्थापित करनें और उभारने का प्रबल मोह था। उनकी धारणायें और मान्यतायें थी, जो उन्होंने अपने श्रम के द्वारा शाश्वत साधना अर्जित की।

डॉ0 सिंह को अपने लेखन की वास्तविक ख्याति अपने विभिन्न उपन्यासों से प्राप्त हुई। "आज कथाकार के रूप में विख्यात, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के लेखन की शुरूआत कविताओं से हुई थी"........[1] लेखक आत्मबल के धनी थे इसलिए उन्हें वर्ग बलएकुनावा बलएजाति बलए–सम्प्रदाय जैसे बलों की कोई आवश्यकता नहीं थीं। उनके उपन्यासों में मनुष्य की धरातलीय जिन्दगी झलकती है। वें अपने आप में एक निर्भीक उपन्यासकार थें।

"समकालीन उपन्यास भाषिक प्रयोग के नये स्वर में अपने चतुर्भुज आरोपों की गिरफ्त में बड़ी भोड़ा आलोचनात्मक तथ्य दिये वे वैतरणी की सबसे पहले अपने शीर्षक में पानी की जुगुत्सा भाव से प्रस्तुत करने वाला दूसरे मिट्टी के ही इर्द–गिर्द घूमने वाला तीसरें अनुभव और कल्पना की क्षमता को कुठिंत करने वाले और चौथे अधिकतर भीतरी भाषा से काम चलाने वाले उपन्यास मानते है।".....[2] चतुर्वेदी जी ने जहाँ डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की भाषा पर विभिन्न प्रकार के आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत किये वही अज्ञेय, जैनेन्द्र, देवराज तथा निर्मल वर्मा

इत्यादि को भाषा की अभिप्रसंशा भी की है फर्क इतना ही है कि जैनेन्द्र और अज्ञेय की भाषा से उनके सामने औपन्यासिक भाषा का होने में कई प्रकार के आलोचनात्मक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। "अलग–अलग वैतरणी" के विषय में कई प्रकार के तथ्य भी प्रस्तुत कियें है। जबकि आलोचक किसी लेखक की भाषा को सतह माटी भरी और भीतरी कहें तो उसें अपने दावें के लिए उदाहरण या प्रमाण देने चाहिए।

डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने आलोचनात्मक विचारों के द्वारा भाषा बिम्व प्रस्तुत कर अर्थ को शोषित करती है, एक संश्लिस्तता देती है। अनुभव संवेदन बनती है, उपमानों और उपमान मूलक बिम्बों के सहारे सांम्प्रदायिकता को पूरी दिशा देती हैं। स्पष्ट बोलने की अपेक्षा भंगिमा से कहती चलती हैं, अर्धवृत्त को पूर्णता करने के लिए कहीं प्राकृतिक परिवेश और कहीं प्रकृति परिवेश और कहीं सर्जन के रूप में गहराती हैं।

"अलग–अलग वैतरणी" जिसमें इन्होंने करैता गाँव को केन्द्र में रखकर स्वतंन्त्योत्तर भारत के ग्रामीण यथार्थ का एक मुकम्मल चित्र प्रस्तुत किया हैं। इस उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद वाले वर्षो में भारतीय ग्रामीण जीवन की बाहरी एवं भीतरी सतहों में उभारों एवं पड़ी दरारों का, उनके समाजार्थिक परिवर्तनों और मूल्यगत तथा मोहभंग, हताशा एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन का बड़ा ही सूक्ष्म, विश्वसनीय और आत्मीय चित्रण हुआ हैं।

"अलग–अलग वैतरणी" का करैता गाँव अपनी वैयक्तिक विशिष्टताओं के साथ–साथ स्वतंत्र्योत्तर भारत के सामान्य गाँव का उसी तरह प्रतीक बन जाता है जिस प्रकार 'गोदान' का बेलारी गाँव।"......[3]

स्वराज्य होने और जमींदारी टूटने के पश्चात गाँव में नयी विरादरी बनने और नये रिश्तें बनने के क्रम में पंचायती चुनाव के पैतरे पृष्ठभूमि का काम करते हैं। पार्टी–बन्दी होती है और नये उठते अनपढ़ बदमाशों की पार्टी बनती हैं।

"अलग–अलग वैतरणी" में कृषि सम्बन्धित सामाजिक शब्द और अवमूल्यन जैसे राजनैतिक शब्द, निर्यात भौगोलिक शब्द 'कटपीस' जैसे व्यापारिक शब्द और 'फोकस' जैसे भौतिक शब्दों को व्यक्त किया हैं। वैतरणी में शब्दों को जोड़कर अभिव्यक्ति की गई हैं, और इस मुद्दे पर व्यापक विचार विमर्श तक कराती हैं, जो माटी से कहीं अधिक पानी का विम्ब प्रस्तुत करती हैं।

डॉ0 बच्चन कहते हैं– "वैतरणी में प्रतीक है जो कथा को अर्थवान बनाने के साथ–साथ उसे दिशा निर्देश और आलोचनात्मक बनाते हैं।"......[4]

प्रतीक योजना का विम्ब तो सबसे पहले वैतरणी के शीर्षक में हीं हैं, जो पूरी तरह कथा को अच्छन्त किये हुयें हैं, साथ ही आलोचनात्मक तत्वों और तथ्यों का स्पष्टीकरण कराती हैं। जमींदारी–उन्मूलन के प्रतीक रूप में परिवर्ती स्थिति का चित्रण किया हैं तथा खानदानी प्रतिष्ठा को धीरे–धीरे परिहासात्मक और आलोचनात्मक स्वार्थ की व्यापकता का बोध कराती हैं।

लेखक इस नये किस्म की वैतरणी की ओर 'तटचर्चा' में सकेंत करता है–"जब शिवत्व तिरस्कृत होता हैं, व्यक्ति के हक छीने जाते हैं, सत्य और न्याय अवहेलित होतें हैं तब जन–मन के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल जाती हैं, नरक की नदी बन जातीं है।"......[05]

'अलग–अलग वैरतणी' की महत्वपूर्ण उपलब्धि है भाषा सम्बन्धी। जहाँ भाषा का स्वाभाविक राग नहीं वहाँ यह उपलब्धि कैसे सम्भव होगी? डॉ0 शिवप्रसाद सिंह में

इस राग की स्वाभाविक पकड़ हैं। उन्होंने किसान, बनिहार, हलवाहा, चमाइन, चमटोल के भाषागत प्राणतत्व को आत्मसात् किया हैं।

''कथाकार ने जीवन—यथार्थ और लोकरंग की व्यंजना में पर्वोत्सवों, लोकगीतों, लोक विश्वासों और मान्यताओं का पर्याप्त आश्रय लिया है।''........[6]

डॉ0 सिंह रामनवमीं का मेला, हलपर्वरी और मकर सक्रान्ति जैसे पर्व करैता के लोक जीवन की आस्थाओं, मान्यताओं, विश्वासों की ओर संकेत किया है।

''नीला चाँद'' कथाकार शिवप्रसाद सिंह का एक आलोचनात्मक और ऐतिहासिक उपन्यास है, इस महाकथा की पृष्ठभूमि काशी हैं। रचनात्मकता की दृष्टि में शिवप्रसाद सिंह लेखक की प्राथमिकता सच बतलाने में अति लोकप्रिय और सारभूत आलोचनात्मक उपन्यास 'धगद्—धगद् ज्वलम्' के भतीर नन्दीश्वर के ज्योतिलिंग ने विशाल स्तम्भ की तरह धरा और आकाश को जोड़ दिया हैं। काशी की जनता को इस उपन्यास के माध्यम से समाज की भयानकता से परिचय कराया और डॉ0 सिंह कहते है कि इससे ''सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की तह खुल रही हैं यह काशी हैं ईस्वी 1060 की।''.......[7]

डॉ0 सिंह अपने समकालीन जीवनानुभवों को पूरी तरह मथकर, भविष्य की ओर पूरी सन्नद्धता से देखते हुए अपने अपेक्षित, अर्थ की सिद्धि के लिए भविष्य की ओर जाते हैं। 'नीला चाँद' के बारे में डॉ0 चन्द्रकला त्रिपाठी लिखती है—

'' नीला चाँद एक विराट फलक पर घटने वाली कथा हैं। असंख्य चरित्र अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ इस कथा में उपस्थित हैं। वैसे देखा जाये, तो चरित्र बहुलता शिवप्रसाद सिंह को अधिक प्रिय हैं।''........[8]

'नीला चाँद' द्वारा शाही जीवन पद्धति पर परिहासात्मक, व्यंगात्मक और आलोचनात्मक तथ्यों को उजागर कर समाज की सही रचना का स्पष्टीकरण किया। सामन्तवाद के कारण श्रम जीवियों, बुद्धिजीवियों और सामान्य जनों का जीवन कठिन होता जा रहा हैं।

भगवान विश्वेश्वर के विराट मन्दिर के ठीक सामने आध्यात्मिक आस्था का किरण पुंज दिखलाई पड़ रहा था, परन्तु धार्मिक और आध्यात्मिक साधनाओं की प्रवृत्तियाँ विलासपूर्ण ढ़ंग से पनप रही थी। सामन्तों और साहूकारों का जीवन भोगप्रिय, कामुकता और वासनापूर्ण था। अनार्य आचरण के कारण इन लोगों में पैशाचिक प्रवृत्तियों का जन्म हो गया।

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के 'नीला चाँद' में प्रयोग किये गये, कई प्रकार के अलंकारों और लोकोक्तियों के द्वारा सामन्त शाही पद्धति को उजागर किया। परन्तु उस पद्धति को नकारात्मक दृष्टिकोण से देखा, न कि, सकारात्मक सामन्त जीवन में, पुण्यदेश, भारत मानवीय जीवन की कई प्रकार की समस्याओं से ग्रसित हैं। काशी का जीवन कई सदियों से आध्यात्मिक और धार्मिक विद्वता का केन्द्र रहा हैं। आज वहाँ के जन–जीवन में तनाव, सघर्ष और विभिन्न प्रकार की व्याधियों से पीड़ित हैं। काशी ने आदि काल से वर्तमान काल तक कई प्रकार के जीवन में उतार–चढ़ाव देखें जो आलोचकों के विभिन्न प्रकार के साहित्य के विषय बने हुये है। वर्तमान काशी का जीवन भोग–विलासिता, भौतिकवादिता, आधुनिकता के विम्ब और प्रतिबिम्ब को प्रस्तुत करता हैं। लेकिन काशी का जितना विस्तार है उतनी ही गहराई और चौड़ाई हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की काशी प्राचीन नगरी हैं। डॉ0 पाण्डेय कहते है–''नीला चाँद की रोशनी में शिव प्रसाद सिंह काशी के मध्यकालीन समाज को जितना देख सकते थे देखा हैं।''.....[9]

'मंजूशिमा' मंजू की जीवन संघर्ष गाथा है यह उसकी किडनी चिकित्सा का वृत्त है, क्योंकि यह सिर्फ लाइफ को प्रोलांग करने का तरीका हैं। 'मंजूशिमा' में केन्द्रीय स्मृति और केन्द्रीय पात्र मंजू को ही माना है। बचपन की मंजू से लेकर उसकी युवती तक स्मृति और बीमारी की गाथा हैं। मंजू के जीवन के उतार–चढ़ाव, पीड़ाये, वेदनायें और जीवन की व्यथायें जिन्होंने मंजू के जीवन को झकझोर दिया, परन्तु मंजू चट्टान की तरह अड़िग और अटल जीवन से संघर्ष करती रही हैं। उनके जीवन में एक टीस थीं, एक आह थी, एक पीड़ा थी, मंजू डॉ0 सिंह के लिये वेद तो नहीं थीं परन्तु उपनिषद् जरूर थीं। जिसमें शिवप्रसाद सिंह के जीवन में एक पिता–पुत्री के रिश्तों को आत्म शक्ति प्रदान की। मृत्यु सत्य हैं, मृत्यु आनन्द प्रदायिनी है, जो सभी कष्टों पीड़ाओं और वेदनाओं से मानव को छुटकारा दिलाती है स्त्री हो या पुरूष।

पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु के अनुसार – ''मंजूशिमा'' एक स्त्री पाठ (Woman text) हैं। यह ऐसी कृति है जो नारी को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है। 'हेलेन सिक्सॉस' ने वैसी कृति को स्त्री पाठ कहा है, जिसमें दमित नारी जाति का शक्तिपूर्ण, अतिकामी और आल्हादात्मक प्रत्यागमन निरूपित हो पाता हैं।''.....[10] स्त्रीवाद लेखक जो कि वर्तमान में अंग्रेजी महिला उपन्यासकारों द्वारा लिखा जा रहा है, जैसे अनीता देसाई, सन्नी देशपाण्डे, शोभा डे, कमला दास आदि स्त्रीवादी लेखक हैं। आज पाश्चात्य देशों में स्त्रीवादी का आन्दोलन जोर पर है पश्चिम तथा पूर्व में स्त्री को केन्द्र बिन्दु बनाकर रचनायें की जा रही हैं। स्त्रीवाद (Femenism) किसी भी पाठ में पुरूष आलोचकों से भिन्न नारी आलोचकों द्वारा ग्रहण की जाने वाली सभिप्रायता को रेखांकित करता है, ऐसी सभिप्रायता पुरूष आलोचकतों द्वारा कभी ग्रहण नहीं की जा सकती। यह स्त्रीवाद की मान्यता हैं।

हेलेन सिक्सॉक कहती है–

"It is impossible to define a Feminine practice of writing, and this is an impossible that will remain, for this practice will never be theorized, enclosed, encoded – which does not mean that it does not exist."

साहित्य में नारीत्व के प्रत्यागमन को अचछी तरह स्थापित प्रतिष्ठित किया हैं। डॉ० सिंह मंजूशिमा का आरम्भ ऋषि कथन से करते है–

"सम्भवे स्वजन दुःख कारिका सम्प्रदान समयेऽर्थहारिका
यौवनेऽपि बहुदोषकारिका वारिका ह्रदयविदारिका पितु"......[12]

जिसका अभिप्राय है कि "जन्म के समय अपने आत्मीय जनों को दुःख पहुँचाने वाली, वर को प्रदान करते समय अतुल धन का अपहरण करने वाली, युवती के रूप में उद्दाम वेग से विधि–निषेद की सारी सीमाएँ तोड़ देने वाली दारिका तो निश्तिच रूप में माता–पिता के ह्रदय की विदारिका होती हैं।"

'मंजूशिमा' कृति का लेखक पुरूष हैं, फिर भी उनकी यह कृति साहित्य में नारी के अस्तित्व और व्यक्तित्व को दमित, कुंठित और अस्वीकृत करनें की चली आती परम्परा के विपरीत आस्तित्व और व्यक्तित्व को सम्यक रूप में उपस्थित करनें वाली कृति हैं।

डॉ० सिंह ने नारी के सही स्वरूप और महत्व को 'औरत' नामक उपन्यास में निरूपित किया। मंजू के दिवंगत होने पर पिता (डॉ० सिंह) की अभिव्यक्ति–

"तुम पितरों से भी श्रेष्ठ थी"......[13]

मंजूशिमा में दर्शन, जीवन और शिल्पन–तीनों ही दृष्टियों से लेखक की बुद्धि की प्रतिभागिता और सक्रियता देखने को मिलती हैं। दर्शन के क्षेत्र में लेखक की बुद्धि तीन रूपों में सक्रिय हैं। अपनी एक मात्र सर्वातिप्रिय पुत्री मंजु की रूग्णता, उसकी आसन्न मृत्यु का संत्रास तथा अंततः उसके मरण से प्रभावित लेखक मंजूशिमा के पूरे लेखन में एक तनाव प्रक्रिया से उन्मथित दिखता हैं।

'शैलूष' कृति कथाकार और आलोचक डॉ0 शिव प्रसाद सिंह की विशिष्ट एवं चर्चित रचना हैं। 'शैलूष' लोक संस्कृति पृष्ठभूमि पर और यायावरी जीवन को प्रदर्शित करने वाला एक आलोचनात्मक औपन्यासिक कृति हैं। 'शैलूष' उपन्यास में बदकिस्मत जिन्दगी की गाथा को डॉ0 सिंह ने व्यक्त किया हैं। डॉ0 सिंह कहते हैं– "यायावर जीवन, जरायमपेशा, खानाबदोश नटों की जिन्दगी, मैं दस वर्ष की उम्र से न केवल देखता रहा, बल्कि दुःस्वप्न की तरह वह मेरी जिन्दगी पर छायी रही–इस अपढ़, अशिष्ट, कलौंस–भरी जिन्दगी को भाषा बाँध पाएगी? कोशिश हैं।"......[14] पाण्डये जी शैलूष के बारे में लिखते हैं– "कबीलाई जीवन पर यह पहला हिन्दी उपन्यास परिवर्तन की दहलीज पर कथाक्रम को ले जाता हैं। शैलूष की कथा–व्यथा की जड़े बहुत गहरे आपस में मिली हुई हैं। अर्थात देश का सांस्कृतिक धरातल एक सी संवेदना के साथ साँस ले रहा हैं।"........[15]

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने स्वतंत्र इतिहास को सूक्ष्मता और बारीकी से स्पष्ट किया हैं। उन्होंने कबिलाई संस्कृति उनकी समस्याओं और रीति–रिवाजों, तौर तरीके को उपन्यास के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाया हैं, जिसमें कि प्रत्येक आदमी उपन्यासकार की गरिमा और उसकी सम्प्रभुत्ता जान सकें।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी गहरे और गम्भीर उपन्यास में महाभारत के अर्जुन की तरह थे, जिन्होंने अपने जीवन में कई प्रकार के संघर्षो को झेला हैं। शैलूष एक

बदकिस्मत जिन्दगी की गाथा है जिसमें कि जीवन की सच्चाई है, जीवन की आलोचना है और जीवन की कसौटी और चुनौती हैं।

शिवप्रसाद सिंह ने स्वातंत्र्योत्तर इतिहास को सूक्ष्मता से छुआ हैं, जिसमें विषमता, गरीबी, भावुक आशावाद और उच्च वर्ग के लोगो की तिकड़म और चालाकियों को बयान किया हैं। जीवन्त पात्रों के इर्द–गिर्द लेखक ने वर्ण व्यवस्था, वर्ग भेद और आजादी के बाद पनपे चालाक लोगों के हाथों छले जा रहें मासूम कबीलाई और निचले तबके को वाणी दी हैं।

उपन्यासकार इनके विभिन्न पात्रों–मौसी सब्बो, रूपा, लालू नट, अमृत, मूँगा, माला देविका, जुवेदा, ताहिरा आदि पात्रों के साथ भावनात्मक रूप से पूर्णतः जुड़ा हैं। 'शैलूष' में नटों के बहाने पूरी निम्नवर्गीय संवेदना के रेशे–रेशे को अलग करके देखने की तकलीफदेह कोशिश हैं।

भाषा को लेकर शैलूष में लेखक ने स्वयं लिखा हैं–

"कभी लोगों ने मुझे 'भाषा का जादूगर' कहा था। अब वह जादूगरी विलाय गयीं। अब तो मैं भाषा का 'शैलूष' हूँ।"......[16] नग्न से नग्न यथार्थ को भी परिष्कृत भाषा में व्यक्त करना, भाषा की शक्ति तो है ही, साहित्य की उपादेयता भी हैं,

'शैलूष' में डॉ0 सिंह ने कमालपुर और रेवतीपुर गाँवों के समसामयिक जीवन यथार्थ को उजागर किया हैं। दलितों और उपेक्षितों को वाणी देने वाला यह अपने किस्म का जबरदस्त उपन्यास हैं। कथाकार समाज के उपेक्षित तथा निचले तबके के प्रति विशेष सहानुभूतिशील रखते हैं, नटों, बंजारो के जीवन में उनकी खास दिलचस्पी हैं।

'औरत' शीर्षक उपन्यास भी उसी श्रृंखला की एक नवीनतम कड़ी मानी जा सकती हैं। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाजशास्त्रियों और सरकारी संस्थाओं के विभिन्न तर्कों को खोखला सिद्ध किया हैं। डॉ0 सिंह कहते हैं–"भारतीय नारी अब अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई हैं। उसे समानाधिकार मिल गये हैं। वह पुरूष से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ हैं।"........[17] आज की नारी अपनी अस्मिता को पहचानने के काबिल हो गई हैं, इतना कुछ होने के बावजूद वास्तविकता यह है कि नारी आज भी उपेक्षित हैं। समाज के कठोर बन्धनों से बँधी हैं। उसका प्रगतिशील होना इस सामाजिक व्यवस्था को सहन नहीं हो पाता हैं, और उसे नीचा दिखाने के लिए सभी सम्भव प्रसास किये जाते हैं। भारतीय औरत की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केन्द्रबिन्दु हैं।

यह वह औरत हैं, जिसका चेहरा, जिसका व्यक्तित्व सरकारी आँकड़ों में दिखाई गई औरत से पूरी तरह भिन्न हैं। यह उपन्यास खुशफहमियों के अंधेरे में उजाले की सही किरण हैं। जिसके द्वारा समाज औरत के व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों को देख सकता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का यह उपन्यास मात्र औरत की कहानी नहीं हैं, अपितु औरत इस उपन्यास में अपने विभिन्न रूपों में अपने अस्तित्व हेतु समाज से जूझती हैं। इस उपन्यास में औरत के विभिन्न स्वरूप 'एडवर्टाइज' नहीं लगते, बल्कि यहाँ औरत अपने विज्ञापन को बुरी तरह तोड़कर सामाजिक कथ्य और औपन्यासिक शिल्प को ही विज्ञापित करती हैं।

'गली आगें मुड़ती हैं' उपन्यास को आत्मकथात्मक शैली में लिखकर डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने पाठकों चिन्तकों और समाजशास्त्रियों के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया हैं। आलोचक और कथा नायक रामानन्द तिवारी के शब्दों में ही अधिकांश उपन्यास लिखा गया हैं जहाँ दूसरे पात्रों की बात आयी हैं वहाँ बात

स्पष्ट हो गयी हैं फिर भी किसी एक पात्र को लेखकीय भावनाओं की प्रतिमूर्ति नहीं कहा जा सकता है। रामानन्द तिवारी की वाक्पटुता, पांडित्य पैनी दृष्टि, दृढ़ निश्चय यथार्थ दृष्टिकोण, गम्भीरता और अध्ययन की राजनीति भी आलोचनात्मक तथ्यों और तत्वों के स्वरूप प्रदान करती हैं। इसमें कथानक बोझिल और बनावटी नहीं हैं 'गली आगे मुड़ती है' का मूल स्वरूप संवादात्मक है ये आलोचना का विषय है जबकि उपन्यासों को वर्णात्मक होना चाहिए।

यह उपन्यास स्वतन्त्रता के बाद वाले वर्षो की एक अहम् राष्ट्रीय समस्या, युवा–आक्रोस, युवा–असंतोष, युवा–विद्रोह को समर्पित हैं। एक संवेदनशील समाज चेता कथाकार होने के नाते शिवप्रसाद सिंह ने इस उपन्यास में अपने समय की चुनौतियों से रूबरू होने का खतरा मोल लिया हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह लिखते है–''युवा आक्रोश पूरे समाज में फैली वस्तु है और उसकों ठीक से समझने के अभाव में न तो उसका सही निदान हो पा रहा है न उसे सही दिशा देने की कोशिश।''......[18]

कथाकार ने पूरे विश्व में एक साथ धधकती हुई इस ज्वाला के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण रखते हुए साफगोई ढ़ंग से उसे विभिन्न पहलुओं को न केवल सामने रखा है। अपितु पाठक वर्ग को निर्णायक स्थिति में ले जाकर स्वयं मौन हो गया हैं। छात्र आन्दोलन अपनी चरम स्थिति पर पहुँचकर छात्र नेताओं के नियन्त्रण से उसी प्रकार निकल जाता है जैसे अपनी सुविधा के जाल में फँसकर आदमी स्वयं गलत कार्य कर बैठता हैं।

विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करने में लेखक को अद्भुत सफलता मिली हैं। काशी में गुजराती, बंगाली, मराठी, राजस्थानी, सिंधी, मुस्लिम, बिहारी, नेपाली एवं विदेशी सभी की वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन, संगीत–नृत्य, गीत–साहित्य सबका न केवल विवचेन हुआ है अपितु उनके बीच तदात्म्य स्थापित किया गया हैं।

पात्रों के नाम भी गुण और कर्म के अनुरूप हैं। आरती वास्तव में आरती करने लायक हैं। मन में जो आया उसे बेहिचक कर डाला। काम करके दुःख होने पर कोई पछतावा नहीं हैं। डॉ0 पाण्डेय कहते हैं– ''काशी के युवा, और विद्यार्थी, पंडा गुंडा, साधु, मठ, विश्वविद्यालय, अध्यापक, मल्लाह तस्कर की शक्लें यहाँ बतायी गयी है। इनके क्रिया–कलाप गली में हैं।''.....[19]

वास्तव में यह एक राजनीतिक चेतना प्रधान उपन्यास है अर्थात स्वतंत्रता पूर्व की राजनीति गाँवों और सड़कों से होकर शहर की ओर अग्रसर थी परन्तु इसके विपरीत स्वतंत्र्योत्तर राजनीति पूँजीपति वर्ग और सत्ताधारी गुण्डों के हाथों में गिरवी होकर गलियों अर्थात संस्कार विहीन, निरूद्देश्य होकर बधुँआ, मजदूर के समान उनके हाथों का खिलौना होकर रह गयी हैं।

'दिल्ली दूर है' उपन्यास के द्वारा दो संस्कृतियों का उत्कर्ष और अपकर्ष रूप बताया हैं। लेखक ने इस उपन्यास में इस्लाम और हिन्दू संस्कृति का सामजस्य करके सुव्यवस्थित किया हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह हिन्दी के सजग उपन्यासकार, आलोचक और ललित निबन्धकार हैं। उन्होंने प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक वाक्य में मन–दर्पण से क्षत्रियों की मनः स्थिति को विम्बित किया हैं। इस उपन्यास के द्वारा लेखक ने तनाव, सघर्ष द्वन्द्व, युद्ध का चित्रण प्रस्तुत किया हैं।

उपन्यासकार ने 'दिल्ली दूर है' की भूमिका में लिखा हैं– ''मेरी बौद्धिक क्षमता में जितनी भी भाषिक शक्ति है, जितनी भी समझ है और जितनी भी सदाशयता, उसी का सम्बल लेकर मैने यह खंड भी रचा हैं। मैंने इस्लाम को गहराई से समझने की कोशिश की हैं।''.......[20]

इतिहास के अनुसंधान, चरित्र की योजना, मुस्लिम सियासत के भयानक रूप, सांस्कृतिक साधना तथा बिखरे हुए राष्ट्रीय संघर्ष के अंकन की दृष्टि से यह उपन्यास उच्चता के शिखर पर पहुँच रहा हैं।

''आनन्द वाशेक का संघर्ष'' सारी जिन्दगी दिल्ली में काटकर भी दिल्ली से नफरत करने वाला आनन्द वाशेक। विश्व मानवता के सतत् विकास में विश्वास रखने वालों, धर्म व मजहब को व्यक्तिगत आस्था की वस्तु मानने वालों की दिल्ली की तलाश थी आनन्द वाशेक को। वह दिल्ली तो आज के आनन्द वाशेकों के लिए भी दूर ही रह गई है।''......[21]

आनन्द वाशेक इस्लाम धर्म की कुरीतियों और विसंगतियों बारीकियों और सूक्ष्मताओं, विचार और भावनाओं से परिचत और विभाजक रेखा नहीं खींचता बल्कि उन दोनों सम्प्रदाओं को हिन्दू और मुसलमान के बीच की दूरी कम करता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 'दिल्ली दूर है' उपन्यास के वाशेक के माध्यम से मानवता के पक्षधर के रूप में उपस्थित होते रहते हैं – ''हमें अच्छी तरह याद रखना चाहिए मेरे भाई के अंग चाहे, दुर्बल के साथ, चाहे सबल के साथ, वह हमेशा इंसान को जोड़ती हैं सभ्यता।''.......[22]

'संलमान रसदी' द्वारा रचित उपन्यास ''द सेटेनिक बरसेज'' में भी साम्प्रदायिकता पर टीका टिप्पणी करते हुए लिखते है–''दिल्ली दूर है'' दिल्ली धोखेबाजों की दिल्ली कहा हैं, धोखेबाजी, मक्कारी, खुदा या ईश्वर के नाम की माला जपने वाले शायरों व कब्बालों की दिल्ली, पाक परवर दिगार की कसम खाकर अपने सगे सम्बन्धियों की आँखे फोड़कर उन्हें तड़फा–तड़फा कर मारने वाले दरिन्द्रो की दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ की रानी द्रोपती से लेकर रजिया जैसी औरतों की गन्दी गालियों से नबाजने वाली दिल्ली, रोज–रोज औरत का कौमार्यपन और पवित्रता हरण करने

वाली दिल्ली सारी दुनिया से विदेशियों को बुलाकर सुल्तानों को बसाने वाली दिल्ली, गुलामों की दिल्ली तथा गरीबों का खून चूसने वाली दिल्ली।''......[23] अतीत से लेकर वर्तमान तक दिल्ली ने बहुत से उतार–चढ़ाव देखें, वर्तमान समय में दिल्ली चकाचौंध पैदा करने वाली फैशन परस्त नगरी हैं, जहाँ पर आज भी साम्प्रदायिक दंगे होते रहतें हैं। महिलाओं के सतीत्व को लूटा जाता हैं, पुरूष अपने पुरूषार्थ का दिखावा करता हैं, अर्थात उसके जीवन में घुटन हैं, वह धर्म, अर्थ काम, मोक्ष का शाब्दिक अर्थ होता हैं। दिल्ली राजाओं, सुल्तानों और नेताओं के लिए अतीत से वर्तमान तक चुनौती का विषय रहीं हैं। दिल्ली भारत का हृदय हैं जहाँ लोकतन्त्रात्मक और प्रजातन्त्रिक निर्णय लिये जाते हैं, भारत और विश्व कल्याण के लिए। डॉ0 राजमणि शर्मा लिखते हैं– ''मै यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि 'दिल्ली दूर है' एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास है जो आज की समस्याओं का समाधान हैं जिसमें आज की चेतना जीवंत हैं।''......[24]

उपन्यासकार ने इतिहास के तथ्यों की भी जाँच की हैं। वह शिलालेखों, दस्तावेजों के सही और तटस्थ इस्तेमाल के पक्षधर है ताकि वस्तुपरक इतिहास की सर्जना संभव हो सकें। ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ में 'दिल्ली दूर है' की यही सार्थकता हैं। 'दिल्ली दूर है' अतीत यात्रा के कदमों की आहट और वर्तमान की चीख के कारगर ढ़ंग से मुखरित स्वर हैं।

'वैश्वानर' में शिवप्रसाद सिंह ने प्राचीन काल की काशी का वर्णन किया हैं। प्राचीन भारत के सभी तीर्थ नगरों में जैसे उज्जयिनी, प्रयाग, अयोध्या, मथुरा परन्तु सबसे प्राचीन काशी हैं। जो सबसे समृद्ध तथा प्रसिद्ध था, वाराणसी एक प्रमुख बन्दरगाह था यह वरूणा और अस्सी के बीच में स्थित हैं दोनों नदियों के दाहिने उत्तर और दक्षिण से घेरकर तीन से छः किलोमीटर लम्बी एक ऐसी चौड़ी कमान का रूप दे दिया है। काशी गंगा किनारे बसा हुआ है जिसका वर्णन वेदों, पुराणों और शास्त्रों में मिलता हैं। काशी धार्मिक और आस्था का केन्द्र रहा है, यहाँ रघुवंश के वंशज

राजा हरिश्चन्द्र का आधिपत्य था। गंगा के किनारे अनगिनत सीढ़ियों और चबूतरों का सिलसिला हैं, इन घाटों पर आदिकाल से सन्त, महात्मा, साहूकार और सामन्तों ने स्नान करके सनातनीय पुण्य को कमाया हैं। हरिश्चन्द्र घाट जहाँ आज भी दिन–रात चितायें जलती रहती हैं। घाटों पर नौकाओं के द्वारा मछुआरों और व्यापारियों के द्वारा वाणिज्य का आदान–प्रदान किया जाता हैं, ये घाट नदी संगम का कार्य करते है।, घाटों के किनारे–किनारे दुकानें और गोदाम श्रेणीबद्ध हैं। घाटों पर पितृपक्ष में बहुत से लोग पितरों को पिण्डदान, अन्नदान करके मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। भारतीय संस्कृति में सनातनीय जीवन में पिण्डदान करने से पूर्वजों को मोक्ष मिलता हैं। इस कर्म को बनारस के घाटों पर प्रत्यक्ष देख सकते है। "वैश्वानर की अपनी संस्कृति हैं। कृषक, राजपरिवार, सैनिक, ऋषि, गणिका, सबके वेश विन्यास अपने अपने ढंग के है।"......[25]

'वैश्वानर' पुराण–प्रसिद्ध पात्र हैं, जिसकी संख्या एकाधिक हैं, पहला वैश्वानर कश्यप और दनु के सौ पुत्रों में एक को माना गया है दूसरा वैश्वानर वह हैं जिसकी पुत्री शण्डिली को हिमालय की ओर ले जाने के प्रयत्न में गरूड़ के पंख जल गये थे। तीसरा वैश्वानर वह प्रसिद्ध योद्धा था, जिसने समुद्र–मंथन के पश्चात केतु के साथ युद्ध किया था। चौथा वैश्वानर के पर्याय–रूप में भी वैश्वानर को मान्यता प्राप्त है देखना यह है कि शिवप्रसाद सिंह का वैश्वानर कौन–सा वैश्वानर है यह आलोचनात्मक विषय हैं डा0 सिंह ने कौन सा वैश्वानर अपने उपन्यास में निरूपित किया है। डॉ0 पाण्डये लिखते हैं– "देव, पितर तथा वैश्वानर ये जीवात्मा के तीन ऊर्ध्वगामी मार्ग हैं।"....[26]

मध्यकाल से आजादी पूर्व तक का भारतीय इतिहास उथल–पुथल युक्त रहा। महमूद गजनवी के साथ आक्रमणों की जो शुरूआत हुई। उसने भारतीय संस्कृति, सभ्यता को क्षति पहुँचाने का प्रयत्न किया, जो हमेशा भारतीय विदो, शिक्षाविदो, इतिहासकारों, और आलोचकों का आलोचक पात्र रहेंगा। उसने आर्य सभ्यता को

धूल–धूसरित करने का प्रयास किया। उसने भारत को पद्दलित करके यहाँ की समृद्धि और सम्पन्नता को लूटकर ले जाना उसका मुख्य उद्देश्य था, जो हमेशा भारतीयों की नजर में आलोचना का पात्र रहा, इसके साथ–साथ महमूद गजनवी ने इस्लाम धर्म को फैलाना और धार्मिकता का प्रचार प्रसार करके सनातन संस्कृति को निर्वस्त्र करके इस्लामिक संस्कृति की स्थापना करना था। काशी को समझने के लिए आर्य मग निकष पर तमाम प्रवासी तत्वों को भी समझने की जरूरत है। क्योंकि काशी केवल मरने के बाद आने की जगह नहीं है। मरने के लिए भी अर्थात जीवन के लिए भी आने की जगह हैं।

'कुहरे में युद्ध' आज के सत्य को उद्भूत करता है।, क्योंकि आज भारतीय समाज शिक्षित और संस्कारित नहीं, उसमें के संस्कृति के अंश रह गये है जो भारतीय जन मानस के विकास में संबल का काम करती हैं। भले ही आज हम लोग आधुनिकता के परिवेश में जी रहें हैं, परन्तु इस्लामी संस्कृति और हिन्दू संस्कृति में विश्व–बन्धुत्व की भावना में पहले ही अपेक्षा काफी गिरावट आयी हैं। सदियों से ही मानव ने मानव के विनाश के लिए धार्मिक, सामाजिक, राजनीति और आर्थिक मुद्दों को अपना स्वार्थ बनाया और जिसका प्रयोग करके जातीय और साम्प्रदायिक सघर्षो को जन्म दिया हैं। राजा, महाराजाओं, सुल्तान और शंहशाह सामन्त और जमींदारों, अमीरों और साहूकारों तथा वर्तमान के नेताओं और राजनेताओं ने समाज को जहरीला बनाया जो आज एक दूसरे के चेहरे और मजहब से घृणा करने लगें। डॉ० रूपसिंह चंदेल लिखते है–

'कुहरे में युद्ध' आद्यन्त युद्ध की विभीषिका को वर्णित करता हैं और तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थितियों को जिस प्रकार चित्रित किया गया है वह लेखक द्वारा थोपा गया यथार्थ नहीं हैं, प्रत्युत वह इतना सहज हैं कि पाठक के लिए इतिहास के गर्भ में उद्भूत आज के वर्तमान का सत्य प्रतीत होता हैं।''.....[27]

डॉ0 सिंह ने युद्ध और युद्ध से गुजरते पाठकों को तत्कालीन काल के उन पक्षों के उन पक्षों से भी परिचित करवाया है जो उपन्यास की जीवन्तता और गतिशीलता के लिये आवश्यक थें।

आज के संदर्भ में 'कुहरे में युद्ध' के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता विशेषकर इसलिए कि हम जिस स्थिति में हैं उसमें अन्दर ही अन्दर उन्माद का जो लावा सुलग रहा है, उसे शांत करने के लिए किसी आनन्द वाशेक की आवश्यकता हैं। अपनी उपलब्धि के उपन्यास ताल स्ताय के युद्ध और शान्ति के निकट की कृतियाँ है जिन्हें पढ़ना अपने समयाछन्न अतीत से गुजरते हुए उज्जवल वर्तमान के लिए दिशा निर्देश प्राप्त करना हैं।

इतिहास के अनुसंधान, चरित्र की योजना, मुस्लिम सियासत के भयानक रूप, सांस्कृतिक साधना तथा बिखरे हुए राष्ट्रीय संघर्ष के अंकन की दृष्टि से यह उपन्यास उच्चता के शिखर पर पहुंच गया हैं, पर आनन्द का अति मानवीय चरित्र, संघर्ष का बिखरना और हताशा की त्रासदी मन को ऊपर उठाकर नीचे गिरा देती हैं। लेकिन उपन्यासकार अपने प्रसास में सफल हो गया हैं।

'कुहरे में युद्ध' के बारे में डॉ0 पाण्डेय लिखते हुये उजागर करते है कि उपन्यासकार कों कितनी सफलता मिली है–"लेखक का कर्तव्य इतिहास की उन महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहितय के माध्यम से पाठकों को एक विशेष दृष्टि देना होता है जो इतिहास को सन्दर्भित रखते हुए वर्तमान के लिए संदेश हों।"......[28]

2. डॉ0 सिंह के उपन्यासों का प्रदेय

प्रदेय का अर्थ प्रेरणा होता हैं, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के प्रत्येक उपन्यास प्रेरणादायक हैं। सभी उपन्यासों के पात्र और चरित्र मानव समाज को किसी न किसी रूप में प्रेरणा देते हैं। डॉ0 सिंह के उपन्यास सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और धार्मिक प्रेरणाओं से भरे हुए हैं। उन प्रेरणाओं को उपन्यासों से मानव को अपनानी चाहिए। जिससे जीवन सारगर्भित और संघर्ष मय बन सकें। सभी उपन्यासों से मानवीय जनमानस में विभिन्न प्रकार की सद् प्रवृत्तियों का जन्म भी होता हैं।

प्रत्येक उपन्यास का शीर्षक प्रेरणात्मक और चिन्तनीय है जिसे मनुष्य अपने व्यवहारिक और प्रयोगात्मक जीवन में उनकों यथार्थ के रूप में देखे। डॉ0 पाण्डेय लिखते है–"शिव प्रसाद जी कलावादी थे। कला को भी वे कौशल की ऊर्जा से रचते थे।"[29]

लेखक का कर्तव्य इतिहास और वर्तमान की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को खोजकर जो समाज के हित में है उनको अपनी लेखनी के माध्यम से समाजहित मे उजागर करना चाहिए, जो कथाकार डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने किया हैं।

काशी को सबसे प्राचीन नगरी माना जाता है जिसका अपना एक इतिहास है और हिन्दू धर्म में सबसे प्राचीन धार्मिक नगरी हैं। जिसके बारे में डॉ0 पाण्डेय कहते हैं–"काशी केवल मरने के बाद आने की जगह नहीं है। मरने के लिए भी अर्थात जीवन के लिए भी आने की जगह हैं।"

'अलग–अलग वैतरणी' नामक उपन्यास में विभिन्न पात्रों का चरित्र, उनकी कार्य प्रणाली तथा उनकी प्रकायत्मिक गतिविधियों और ग्रामीण परिवेश की बोलचाल की भाषा वहाँ की संस्कृति और सभ्यता प्रेरणात्मक हैं। उपन्यास में शिक्षा के प्रति

जागरूकता पैदा करते हुये मास्टर शशिकान्त कहते है–"मैं तुम लोगों को एक नयी दुनिया में ले चलना चाहता हूँ।"......30

हमारे समाज की प्रत्येक पारिवारिक इकाई एक वैतरणी है। प्रत्येक परिवार एक वैतरणी की तरह है जो मनुष्य को जीवन जीने की प्रेरणा देता हैं। वैतरणी शब्द भारतीय सनातक धर्म ग्रन्थों में भी मिलता हैं। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र ने भी 'गोदान' उपन्यास में 'वैतरणी' शब्द का प्रयोग किया है। जो एक प्रेरणास्पद हैं।

'वैतरणी' का शाब्दिक अर्थ है कि जीवन को जीकर मृत्यु के द्वारा मोक्ष प्राप्त करना परन्तु प्रत्येक नर और नारी की वैतरणी का निर्माण कर्मो के अनुसार होता है। रामचरित मानस में भी कर्म पर जोर दिया गया हैं जो जन मानस में अपना स्थान बनाए हुए हैं। प्रत्येक मानव की वैतरणी उसके जीवन में पायी जाने वाली उपलब्धियों धर्म और कर्म का विभाजन तथा श्रम और पुरूषार्थ उसके जीवन में विकास के चरण ही वैतरणी कहलाते हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी' उन्यास से प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा लेनी चाहिए। जिससे उसका जीवन व्यक्तित्व और कृतित्व पूर्ण बन सकें। यह उपन्यास मनुष्य जाति के लिए ज्योति पुंज हैं जिससे निकलने वाली ज्योति किरण जीवन को ज्यार्तिमय बनाती हैं।

'नीला चाँद' के द्वारा चांदनी और नीलिमा का आपस में समस्तता को दर्शाया गया हैं। इस उपन्यास के माध्यम से राजनायकों और राजनेताओं को राजनीति करने के लिए सुझावात्मक प्रेरणा दी हैं। उपन्यास के माध्यम से राजनीतिक पैतरेबाजी और जय पराजय के सम्बन्ध में तथ्यात्मक ज्ञान का अर्जन होता है। जो एक प्रकार से राजनीति में राजनेताओं के लिए दर्शन हैं जिससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परपेक्षता का उदबोध होता हैं। 'नीला चाँद' एक शोध परक अध्ययन व नूतन

उद्भावना का प्रतिभाशाली उपन्यास है जो राजनीतिक दृष्टि से जीवन को आचार–विचार प्रदान करने वाली एक साहित्यिक कृति हैं। जिससे मनुष्य अपने जीवन के अस्तित्व की पहचान कर सकता हैं। डॉ0 सिंह भोलेनाथ की स्तुति करते हुए लिखते हैं–

> "माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः
> वाँधवाः शिवभक्तश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।"......[31]

उपन्यास पढ़ते हुए एवं चिन्तन करते हुए पाठकों एवं शोधार्थियों को व्यावहारिक प्रदेयात्मकता की भावना जाग्रत होती हैं और जो मानवीय एकांकीपन को दूर करती है। विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को अनंतव्य तक पहुँचाने के लिए गतिशीलता से प्रयास करती हैं। 'नीला चाँद' में सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थितियों का स्पष्टीकरण किया हैं इसमें काशी के अलावा महोबा, और खजुराहों का भी वर्णन हैं। इस उपन्यास के माध्यम से ग्वालों, गौणो आदि के खान–पान, रहन–सहन, सोच–विचार, स्वभाव और नाज–गाना आदि का स्पष्टरूप से चित्रण हुआ हैं। जो समाज के लिए प्रेरणादायक हैं।

शंकराचार्य जैसे विख्यात दार्शनिक को भी काशी में आकर महाकाल की महिमा का पता चलता हैं, यहाँ शिव को चाण्डाल के रूप में देखा हैं। इस बुनियादी विशेषता के साथ डॉ0 सिंह ने काशी की महिमा को सूक्ष्म दृष्टि से प्रस्तुत किया है जो प्रदेयात्मक हैं। काशी के दो रूप हैं एक धर्म रूपी आडम्बर और दूसरा आध्यात्म के द्वारा ज्ञानी योगी बनना। "काशी के नरेश महा विश्वेश्वर विश्वनाथ तथा राजमाता अन्नपूर्णा है तथा नगर के कोटपाल काल–भैरव है। इन तीनों देवताओं की आराधना करने से भारतीय धर्मग्रन्थ के बारे में असीम ज्ञान की प्राप्ति होती है।"......[32] पार्वती कुण्डलिनी शक्ति है और काल भैरव योगक्षेम का वहन करने वाले महाभैरव हैं, परन्तु जातवर्मन और अम्तत्य जैसे विलासी कामुकों के लिए काशी मोक्ष भूमि न हो भोग भूमि हैं। काशी कर्म भूमि है जो अध्यात्मक को उन्मुक्त कराती है।

कहा जाता है कि काशी शिव के त्रिशूल पर स्थित है यह मध्यकालीन मान्यता नहीं हो सकती है। यहाँ शंकराचार्य जैसे विख्यात दार्शिनिक भी मानते हैं। डॉ0 सिंह ने सारी अदृश्य शक्तियों को लेकर एक बार फिर अंतिम रूप से दृढ अविश्वास का खुलासा किया हैं। 'नीला चाँद' नाम को भी अमोद्य इच्छाशक्ति के साथ जोड़कर व्याख्यायित किया हैं। डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं– "बेटे, जैसे हर व्यक्ति के अन्दर एक आँगन होता हैं, एक तुलसी चौरा होता है, वैसे ही सबके छोटे–छोटे आकाश में एक नीला चाँद भी होता हैं।"......[33]

'मंजूशिमा' में दो प्रति क्रियात्मकवाद विवाद और प्रदेयात्मकता के विषय हैं, मंजूशिमा एक शोक कृति हैं। अब तक जितने रचनाकार, साहित्यकार, आलोचक हुये हैं, इन सबका अन्तरण और प्रदेय करने वाली मंजूशिमा एक गद्य अनोखी कृति हैं। निराला की 'सरोज स्मृति' कविता के बाद गद्य में शोक रचना एक नयी रचना मानी जाती है।

'मंजूशिमा' एक प्रदेयात्मक उपन्यास है जो उर्जा और शक्ति सामर्थ्य के प्रतीक हैं इस उपन्यास के द्वारा पाठकों और शोधार्थियों की एक अनोखी दिशा हैं।

मंशूशिमा कृति का अध्ययन करने से पता चलता हैं कि एक पिता के हृदय में पुत्री के लिए उत्तरदायितव और दया की भावना निहित है। उपन्यास के माध्यम से डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने मृत्यु को विखण्डित कर डाला हैं। जिन्होंने पिता के स्नेह और आशीर्वाद का उद्धेलन किया हैं, और मृत्यु के बीच जीवन के प्रति राग की जिजीविषा को व्यक्त किया हैं। उपन्यास के माध्यम से पिता और पुत्री के बीच आँख मिचौनी को व्यक्त किया हैं, जिससे संयतवाद और अस्तित्ववाद झलकता हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह मंजूशिमा की भूमिका में लिखते है–कि "शांति की प्रत्येक व्यक्ति को तलाश रहती है–अब बूढ़ा हुआ तो लगता है कि शांति आखिरी मंजिल

होनी चाहिए। आजकल उसी शांति को खोज रहा हूँ। इस खोज की डगर बहुत बड़ी कठिनाइयों से भरी हैं।''.....34

'शैलूष' बद्किस्मत जिन्दगी का एक विशिष्ट और चर्चित उपन्यास हैं। ये उपन्यास खानाबदोश जिन्दगी के सम्बन्ध में बताता है। उपन्यास प्रेरणात्मक है, इस उपन्यास से मानव जाति को प्रेरणा मिलती हैं, कि ऊँच–नीच में भेदभाव नहीं करना चाहिए। वैमनुष्यता से मानवीय और नैतिक मूल्यों का हनन होता हैं तथा सारे समाज के बीच में बगावत फैल जाती हैं। इसका मुख्य कारण ऊँच–नीच की भावनाओं को हृदय में रखना अर्थात सारे समाज की संस्कृति एक होना चाहिए, एक विचार होना चाहिए फिर एक दुनिया में विभिन्नता कैसी? शैलूष मानव जाति के कल्याण हेतु लिखी गई कृति हैं। मानवीय इच्छाशक्ति में निम्नवर्ग और कबीलाई जीवन का स्थान हों।

'शैलूष' एक उपनिषद की तरह मनुष्य को जातीय वैमनुष्यता खत्म करने की प्रेरणा देता हैं। जिससे मानव जाति के बीच में साहित्यक और सांस्कृतिक विकास हो, और पूरा समाज एक सहृदयता की खूँटी से बँध जाये। गरीबी हट जाये और लोगों में समता पनपे तथा बेसहारों को सहारा मिले सारे समाज में मानवता का सानिध्य हो। सभी लोग जीवन के कालखण्डों को समझे क्योंकि प्रत्येक कालखण्ड प्रदेयात्मक और प्रेरणात्मक हैं।

आनन्द कुमार पाण्डेय लिखते है– ''वर्ण व्यवस्था, वर्ग भेद और आजादी के बाद पनपे चालाक लोगों के हाथों छले जा रहे मासूम कबीलाई और निचले तबके को वाणी दी हैं।''.....35

'औरत' उपन्यास में नायक और नायिका समाजवाद और अस्तित्ववाद की मानवता की प्रेरणा देते हैं। जिससे नारी में जाग्रति पैदा हों और वह जीवन में अपने

अधिकारों की रक्षा कर सकें, नैतिकता और अनैतिकता का ज्ञान हो तथा सत्यमार्गी बने और अच्छे कर्म करके समाज में प्रतिष्ठा को अर्जित करें।

'औरत' उपन्यास से समसत विश्व की नारियों को प्रेरणा मिलती है कि वह स्वभिमान से जिये और अपी कमजोरियों को स्पष्टीकरण होने से पहले समाप्त करें।

अतीत से लेकर वर्तमान काल में किसी न किसी रूप में नारी का शोषण हुआ हैं। शोषण समाज में आदिकाल से व्याप्त हैं तथा जब नारी किसी अच्छे पद को सुशोभित करती है तब समाज के निकृष्ट लोक उसके व्यक्तित्व और कृतित्व पर टीका टिप्पणी करतें हैं। जिसमें नारी को मानसिक पीड़ा और कष्ट होता हैं। दुनिया के प्रत्येक परिवार में नारी किसी ने किसी रूप में अवतरण हुई हैं अर्थात वह एक सामाजिक चेतना पैदा करने वाली एक निरीह और कमजोर प्राणी हैं। नारी वास्तव में प्रकाश का श्रोत हैं, ओज का श्रोत हैं, वह मनुष्य को सामाजिकता का पाठ पढ़ाती हैं। औरत को चरित्रहीन व सचरित्र बनाने में पुरूष वर्ग का हाथ होता हैं। औरत के चरित्रहीन होने परवह भी विभिन्न के परिवारो को प्रेरणा देकर, उनकी दूषित प्रवृत्ति को समाप्त कर रमणीय विचारधारा की प्रेरणा दें सकती हैं।

नारी एक उपनिषद् और शास्त्र भीं है, वह अपनी प्रतिभा और अभिव्यक्ति के माध्यम से समस्त बुराईयों को दूर कर सकती हैं। उसके जीवन में हमेशा हर समय विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ रहती हैं, किन्तु व अपने साहस और कर्तव्य के द्वारा पुरूष के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर ख्याति आर्जित करती हैं।

दया नारी का मूल मन्त्र है और वास्तव में अपनी प्रेरणात्मक अवधाराणओं और प्रवृत्तियों के माध्यम से समस्त अवगुणों का हनन करके समाज को एक चेतना प्रदान करती हैं। वास्तव में औरत त्याग और बलिदान का प्रतीक हैं, जिसने हमेशा समाज, परिवार और राष्ट्र को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी हैं।

औरत में नरैन कहता हैं कि – "पुरूष नारी सुख के लिए क्या–क्या नहीं करता पर नारी छुपा कर करती हैं।"....36

'औरत' उपन्यास में उपन्यासकार ने समाज में बनती–बिगड़ती राजनीति को भी भी कथ्य के बीच उठाया हैं। जातिवाद का बोलबाला दिखाया है तो दूसरी तरफ उपन्यास के नायक को नीची जाति के घरों में भोजन करते दिखाया हैं। इससे छुआछूत की भावना कम होगीं और समाज इस बीमारी से स्वस्थ्य होगा।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की कृति 'गली आगे मुड़ती है' एक शिक्षाप्रद और प्रेणात्मक उपन्यास हैं। जो मनुष्य को मानवता का पाठ सिखाकर, यथार्थता की सही जानकारी देता हैं। वर्तमान का युवा अपने मूलभूत सिद्धान्तों से भटक गया हैं, प्रत्येक जगह के युवा नेता कहते कुछ और है परन्तु छिपकर कुछ और गुल खिलाते है।

डॉ0 सिंह ने वर्तमान के युवाओं में धधकती ज्वाला को स्पष्ट किया है कि आज के युवा को आवश्यकता है कि सही रास्ता अपनाकर अपने भविष्य को उज्जवल करें। उसे किसी न किसी तरह अपनी दुष्प्रवृत्तियों को बदलकर मूल सिद्धान्तों की पहचान करनी पड़ेगी।

'गली आगे मुड़ती है' युवा जीवन पर आधारित उपन्यास हैं। जो इस कृति से मनुष्य अपनी गुमराह मनोवृत्तियों को सामान्य और व्यवहारिक कर सकता हैं। उपन्यास में युवा जीवन की मूल कथा को दर्शाया गया हैं।

डॉ0 सिंह ने 'गली आगे मुड़ती है' में बताया है कि मानव को आत्मरेजक और आत्म विश्लेषक होना चाहिए, जिससे वह वास्तव में अपने सही जीवन को रेखांकित

और चित्रित कर सकता हैं। उपन्यासकार ने मानव की आत्मा को शुद्धीकृत करने के लिए इस कृति की कथा से कई प्रेरणाएँ दी हैं। डॉ0 सिंह के अनुसार–"प्रत्येक युवा को अपने गुणों और अवगुणों को समय–समय पर मूल्यांकन करना चाहिए, जिससे वह आने वाले जीवन के मोड़ो का सामना कर सकें।"......[37] 'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास आदर्शता और यथार्थता का प्रेरणामयी श्रोत हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह कृति 'दिल्ली दूर है' तेरहवी और चौदहवी शताब्दी की संघर्षपूर्ण जीवन की रचना हैं। 'दिल्ली दूर है' राजनीतिक व सांस्कृतिक संघर्ष की आख्या हैं, जिससे वर्तमान की राजनीति को भी कूटनीति और राजनैतिक पैतरेंबाजी का स्थान मिला हैं। तेरहवीं सदी के भारत के मुस्लिम संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ जिसके कारण से मानवता के मूल्यों का ह्रास हुआ, मुस्लिम संस्कृति ने सनातनीय हिन्दू संस्कृति पर प्रहार किया।

यह उपन्यास मध्यकालीन स्वतंत्रता संघर्ष की भीषणता और त्रासदी को दिखा रहा हैं तथा ये त्रासदीं वर्तमान पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा का श्रोत है। आज की पीढ़ी को जरूरत है नई सांस्कृतिक, प्रेरणात्मक अवधारणाओं की जिससे कि आधुनिक मूल्यों के कसमकस से घबराकर लोग ऐसे चरित्रों को ढूढ़ रहें है। जो अतीत में हुआ करते थे और मनुष्य को आदर्शवाद का पाठ पढ़ाते थें।

अतीत का परिणाम की वर्तमान है। प्रत्येक युवा वर्तमान का मूल्यांकन करें उसे प्रदेयात्मक बनाये, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य आपने जीवन के मूल्यों को समझें।

'दिल्ली दूर है' एक ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इतिहास हमेशा संस्कृति और सभ्यता की त्रासदियों को दोहराता हैं। जिससे बहुत सी ऐतिहासिक घटनायें मानव जाति को प्रेरणात्मक संदेश देती हैं। ऐतिहासिक तत्वों से सारे समाज और राष्ट्र मे अमूल चूक परिवर्तन होता हैं, ये परिवर्तन पूरी मानव जाति को झकझोर देती हैं। हिन्दू

और मुस्लिम संस्कृति का परिचय मिलता है उपन्यास एक आइना है जो अच्छाइयों और बुराईयों को परिलक्षित करता हैं।

'वैश्वानर' काशी की संस्कृति और सभ्यता पर लिखित उपन्यास हैं। काशी आदिकाल से मोक्ष देने वाली प्राचीन नगरी हैं। इस नगर का वर्णन हिन्दुओं के समस्त ग्रन्थों में मिलता हैं। काशी प्रदेयात्मक और प्रेरणात्म्क धर्म के प्रति आस्था का केन्द्र है। काशी नगरी भगवान विश्वनाथ के त्रिशूल की नोंक पर बसा हुआ शहर हैं। तुलसी जैसे महान साधु ने यहाँ साधना और तप करके अपने लक्ष्य को प्राप्त किया हैं।

'वैश्वानर' प्रेरणामयी उपन्यास है। महाकाल की नगरी, संस्कृति साहित्य, धर्म और आस्था का केन्द्र बिन्दु हैं, जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन की असीम उपलब्धियों को प्राप्त कर लक्ष्य की ओर गमन करता हैं। धर्म का अर्थ पूजा पाठ नहीं और न ही मन्दिर, मस्जिदों और गिरजाघरों में जाना, बल्कि धर्म का अर्थ है–एक दूसरे का सहयोग करना और नैतिकता के मूल्यों का प्रचार–प्रसार करना। यही सच्चा धर्म हैं, यही काशी का प्रदेय और यही बाबा विश्वनाथ की प्रेरणा हैं।

साम्प्रदायिकता, कट्टरपंथी और रूढ़िवादिता जैसी विचारधाराओं ने काशी और बाबा विश्वनाथ के प्रदेय और प्रेरणा को दूषित किया हैं वैश्वानर अर्थात बाबा भोलेनाथ काशी में ही नहीं बल्कि सारे विश्व के लोगों को मानवता और भाईचारे का संदेश देते हैं। काशी स्वंय अपने में एक महाकाव्य और उपनिषद् है। काशी दूर–दूर तक किरण और ज्योतिपुंज के माध्यम से विश्व बन्धुत्व की भावना की प्रेरणा दे रही हैं। 'वैश्वानर' एक रोचक धार्मिक और सांस्कृतिक उपन्यास हैं जो वर्तमान पीढ़ी को एक सूत्र में बांधने के लिए प्रेरणा देता है और विश्व बन्धुत्व भावना की व्याख्या करता है।

'वैश्वानर' में कर्म और विचारों की शुद्धता को परिलक्षित किया है, न कि पाखण्डवाद और आड़म्बरवाद को। ये उपन्यास जीवन का पाठ्य अर्थात प्रत्येक मनुष्य को प्रेरणा देता हैं कि जीवन में सदा संघर्ष करना चाहिए।

'कुहरे में युद्ध' कालांकित उपन्यास है उपन्यास पूर्ण रूप से प्रदेयात्मक हैं। मुस्लिम शासक महमूद गजनवी हिन्दुस्तान में अक्रान्ता और आततायी बन कर आया था। जिसने राज्य स्थापित किया और इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार किया। धर्म परिवर्तन की क्रिया को हिन्दुस्तान में फैलाया, भारतीयों पर कई प्रकार के जुल्म किये, महिलाओं पर अत्याचार किये, और बहुत सी महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया, हजारों जवानों और महिलाओं को गुलाम बनाकर रखा, अर्थात मानवीय नैतिकता पूर्ण रूप से ध्वस्त हो चुकी थी। इस उपन्यास में लेखक ने इतिहास के गर्भ से उद्‌भूत आज के वर्तमान सत्य को उजागर किया हैं।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं को जो प्रदेयात्मक है उन्हें **उजागर किया हैं और जो** मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों को **प्रेरणा दी है।**

मानव ने मानव के विकास के लिए अस्त्र और शस्त्र का निर्माण किया है जो विकास के साधन नहीं थे वे आज हमारे विनाश के साधन हैं। विकास और विनाश एक साथ समान्तर रूप से चलते हैं। विकास दिव्यता हैं विनाश एक त्रासदीं है। डॉ० आनन्द लिखते है–

"लेखक का कर्तव्य इतिहास की उन घटनाओं को खोजकर मानवीय हित में अपने साहित्य के माध्यम से समाज को एक दृष्टि देना होता हैं।".....[38]

3. उपन्यासकारों में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह का स्थान

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह जातीयवाद, सम्प्रदायवाद कुनवापरस्ती, भाई–भतीजावाद से विमुख मानव धर्म और मानवीयता के संघर्ष गाथा के पक्षधर का नाम हैं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अतः डॉ0 सिंह की सारी सृष्टि उनकी सारी चिन्ता–विचिंता इस बात का साक्ष्य हैं कि शिव प्रसाद सिंह हिन्दी में आज अकेले एक ऐसे व्यक्ति हैं जिसने अपने आपकों सदैव निर्भीकों से मुक्त रखने का सफल प्रयास किया हैं। वह हमेंशा मानव जाति के संघर्ष गाथा के बारे में सोचते और लिखते हैं, किस प्रकार से मानव जाति का उत्थान हो सकें।

उपन्यासकारों में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का स्थान कथाकार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा आलोचक के रूप में हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को दो शिष्य विद्वानों में डॉ0 नामवर सिंह और डॉ0 शिवप्रसाद सिंह विरासत में प्राप्त हुए थें। दोनों शिष्यों ने अपने आचार्य की कीर्ति पताका को आगे बढ़ाया हैं। डॉ0 देवराज लिखते है–''डॉ0 शिवप्रसाद सिंह सबसे रचनात्मक सदस्य रहे हैं परन्तु उनके व्यक्तित्व और स्वरूप को सम्यक् समझने के लिए नामवर सिंह के साथ तुलना उपेक्षित हैं।''...
..39

'नामवर सिंह' के गुणों का विकास और व्यक्तिगत कला, डॉ0 सिंह के उपन्यासों में देखने को मिलती हैं। डॉ0 सिंह का सारा विलाप, साहित्य में झलकता हैं। डॉ0 सिंह जीवन जगत की यथार्थता के प्रति सजग दृष्टि अपनाते हैं।

डॉ0 सिंह की पाठ सर्जना में अवगुणी कभी ऊपर नहीं उठता और गुणी सानिच्चुत नहीं होता हैं। उन्होंने अपने जीवन भर सच्चाई को प्रस्तुत करने का प्रयास किया, उन्होनें समाज के नातो रिश्तों का खोखलापन उजागर किया हैं।

हम उपन्यासकारों की मोटे तौर पर अध्ययन की सुविधा से तीन प्रमुख कोटियों में विभाजित कर सकते हैं पहली कोटि है वरिष्ठ पीढ़ी के उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार जो प्रेम और काम के सम्बन्धों को खोजतें हैं। 'करवट' में अमृतलाल नागर अग्रेंजों के सम्पर्क में आने के बाद भारतीय जीवन की सोच में आये परिवर्तन का चित्रण करते हैं। गिरिराज किशोर ने अपनी कृति के माध्यम से मोहनदास करमचन्द्र गाँधी का त्याग और विकास और संगठन तो लगनशीलता को व्यक्त करते हैं।

कमलाकान्त त्रिपाठी की कृति 'बेदखल' में स्वाधीनता संघर्ष और जनक्रान्ति की कथाओं को उद्धेलित करती हैं तथा विद्यासागर 'भूमि अकेली पड़ी' उपन्यास में मानवीय जीवन की व्यथाओं को उद्धेलित करती हैं परन्तु इसी क्रम में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह की वरिष्ठ पीढ़ी के उपन्यासकार है उनके उपन्यासों में ओज और जीवन दर्शन निहित हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का स्थान भी वरिष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में आता है, इनकी उपन्यासिक कला, विषय और शैली तत्व अन्य उपन्यासकारों से भिन्न हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी का उपन्यास 'तेरी कसम' पंजाब के लोक जीवन पर लिखा गया है इस कड़ी का अन्तिम उपन्यास हैं, इनकी कथा में बिखराव हैं। विष्णु प्रभाकर का 'अर्द्धनारीश्वर' साहित्य अकादमी द्वारा पुरूस्कृत और बहुचर्चित उपन्यास हैं, इसकी नायिका बलात्कार से पीड़ित विभिन्न वर्गो की समदुखी स्त्रियों की मानसिकता पर गहराई से शोध करती हैं। उपन्यास चिन्तन और बौद्धिकता प्रधान है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के 'औरत' नामक उपन्यास में नारी की दुर्दशा का वर्णन हैं उसे कई बार चरित्रहीन द्वारा सम्बोधित किया गया हैं। विष्णु प्रभाकर और डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने नारी उत्पीड़न और उसकी समस्याओं को बड़े सुन्दर ढ़ग से चित्रित किया हैं, परन्तु उपन्यासकारों में डॉ0 सिंह के उपन्यास देवेन्द्र सत्यार्थी और विष्णु प्रभाकर की अपेक्षा उच्च हैं, क्योंकि डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों की शैली

तत्व और भाषा ग्रामीण जीवन से जुड़ी है जिसे आम आदमी चिन्तन करके अपने जीवन में उतार सकता है। डॉ0 आनन्द कुमार पाण्डेय कहते हैं–"शिवप्रसाद जी शिल्पी कथाकार हैं। उन्हें उनके एक विनोदी मित्र ने 'इमारती आदमी' कहा था।"[40] भीष्म साहनी की कृति 'भैय्यादास की भाड़ी' 19 वीं शदी के उत्तरार्द्ध के पंजाब की स्त्री का बदलता चेहरा चित्रित हुआ है। निर्मल वर्मा, 'अन्तिम आरण्य' में मृत्यु से सीधे साक्षात्कार की मार्मिक कथा का वर्णन हुआ है। उन्होनें अपने उपन्यास के माध्यम से मृत्यु का महत्व और गरिमा के विभिन्न सोपान व्यक्त किए हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के मंजूशिमा नामक उपन्यास में अपनी प्रिय बेटी मंजू जो मृत्यु शैय्या पर लेटी हुई है और मृत्यु से लड़ रही है, इस आत्मबोध का वर्णन किया हुआ हैं। इस उपन्यास के द्वारा डॉ0 सिंह ने समाज को एक पिता और बेटी के रिश्तों का सन्देश दिया हैं।

डॉ0 निर्मल वर्मा एक कम्युनिष्ठ मानसिकता के उपन्यासकार है परन्तु डॉ0 शिवप्रसाद सिंह सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासकार है, उन्होनें ग्रामीण परिवेश को बड़ी बारीकी और सूक्ष्मता के साथ काशी के आस–पास के जीवन का वर्णन हैं।

रामदरश मिश्र का 'दूसरा घर' और विवेकीराय 'सोना माटी' में ग्रामीण जीवन का गाढ़ा रस दर्शाया गया हैं। राजेन्द्र झा का 'मंगल भवन' में ग्रामीणता की परम्पराओं के द्वारा मानव जीवन को कई प्रकार के संदेश दिये हैं। नेपाल की सीमा पर स्थित अपने गाँव को बारीकी से चित्रित कर उल्लेखनीय बना दिया हैं। इसी तरह डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के 'अलग–अलग वैतरणी' में काशी अंचल के करैता गाँव का सुन्दर वर्णन किया हैं। इस उपन्यास में करैता गाँव के हर घर से वैतरणी बहती हैं प्रत्येक घर विभिन्न प्रकार की परेशानियों से और उलझनों से जूझ रहा है।

जमींदारों द्वारा किया गया शोषण और वहाँ की मानसिकता को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी लिखते है–"संख्या में ये गिने–चुने ही होते हैं, पर कई–कई गाँवों पर इनका दबदबा होता है। ये सवर्ण जाति के लोग होते हैं– अक्सर ठाकुर या पण्डित।".....[41]

'शैलेश मटियानी' के 'बावन नदियों का संगम' में वैश्यायी नरक की मार्मिक कथा है, इन्हीं के मुठभेड़ में एक पत्रकार और पुलिस अधिकारी के आँखों देखी सरकारी तन्त्र की सच्ची तस्वीर खींची गयी है तथा याद्वेन्द्र शर्मा के 'चन्द्र के गुलाबड़ी' में राजस्थानी परिवेश में नायिका कुम्हारन के आत्म सम्मान और संघर्षरत जीवन की मार्मिक कथा का वर्णन किया गया हैं। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के शैलूष में याद्वेन्द्र शर्मा के उपन्यासों की नायिका की तरह सावित्री नामक नायिका का त्याग और आत्मसम्मान को समाज के सामने उसके पद और गरिमा का चित्रण हैं।

"हिमांशु जोशी 'सुराज' में बूढ़े काका पुराने स्वतन्तत्रता सेनानी है वे इस समय से पीड़ित है कि आज देश में कुराज क्यों इसी पीड़ा को लिए चल बसते हैं। गोविन्द मिश्र के 'पांच आंगनो वाला घर' हो संयुक्त परिवार के अनुभव और 'तुम्हारी रोशनी में' प्रेम की अनुभूमि की तीव्रता है।

शिवप्रसाद सिंह का स्थान हिमांशु जोशी और गोविन्द मिश्र की तुलना में एक नवलेखन कलाकार के रूप में जाने जाते हैं, उनकी सहजता और सहृदयता कुछ अन्य उपन्यासकारों से अलग हैं। शिवप्रसाद सिंह ने 'रचना और सामाजिक दायित्व को' उच्च कोटि के रूप में केन्द्रित किया है लेखक ने जगह–जगह उपन्यासों में हिन्दी शब्दों के लिए कोष्टक में अंग्रेजी पर्याय भी दिये उन्होंने भारतीय हिन्दी नवलेखन में सम्पादकीय और विकासात्मक पक्षों को भी उजागर किया। शिवप्रसाद सिंह दिव्य सत्ता को बिन्दु–बिन्दु कर अक्रान्तिक स्थान को प्राप्त किया उनके व्यक्तित्व में सम्पूर्ण रूप से साधना की कला झलकती है। वह जन्म से ही बौद्धिक

स्तर का विकास करने में लगे रहें, यह सत्य की जलती अग्नि को हमेशा तलाशते रहें। उन्होंने अपने जीवन में रोम्या रोड़ा की कृति, रामकृष्ण और विवेकानन्द जैसे महान व्यक्तियों को शिवप्रसाद सिंह जी ने अपनी जीवन में उतारा।

शिवप्रसाद सिंह जी ने 'उत्तरयोगी' में अपने व्यक्तिगत और कृतित्व को परम वांछनीय मानवीय दुर्बलता को व्यक्त किया, उन्होंने 'टी0एस0इलियट' तथा पी0वी0 जैसे महान कवियों की रचनाओं को पढ़ा और उनके प्रतिमानों को जीवन में उतारा जिससे कि उनकी व्यक्तिगत रूपरेखा और अन्तर प्रकृति का संकेत देती है। जो सारी बाते उत्तर योगी में पायी जाती है वे सारी ही रोम्या रोड़ा की तकनीकी की याद दिलाती है। अंग्रेजी उपन्यासकार वॉल्टर स्कॉट का जो स्थान ऐतिहासिक कार के लिए जाना जाता है वही स्थान शिवप्रसाद सिंह का 'कुहरे में युद्ध' और दिल्ली दूर है, वैश्वानार के लिए जाना जाता है तथा सामाजिक उपन्यास कार के रूप में जो 'चार्ल्स डिकीन्स' का है वहीं स्थान शिवप्रसाद सिंह का है। शिवप्रसाद सिंह के विषय और कथानक चार्ल्स डिकीन्स की विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों और आन्तिरिक शक्तियों का उद्‌बोध किया हैं।

उपन्यासकार मानव जीवन परम्परा के स्पष्टीकरण के लिए सहायक होता है। शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यासों में विगत और वर्तमान की पारम्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया को परिलक्षित किया है उनका अध्ययन निरन्तर गतिशील रहा। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने मनुष्य की भौतिक उपलब्धियों के साथ उसके सांस्कृतिक विकास को भी साक्षी माना है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने समाज और राष्ट्र का अध्ययन किया जिससे उनका स्थान साहित्य में एक साहित्यकार के साथ साथ इतिहास विद्, समाजशास्त्री और राष्ट्रप्रेमी भी है। व्यक्ति जब सामाजिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है तो साहित्यकार के साथ साथ उसे समाजशास्त्री मान लिया जाता है, उन्होंने मानवीय सत्य का रूप देने का प्रयत्न किया तथा सामाजिक और सांस्कृति तथ्यों का अध्ययन उनकी कला को सप्राण बनाता है। उन्होंने प्रचलित अप्रचलित

तथ्यों का अन्तरदर्शन कर उन्हें नित नूतन प्रयोगों से मंडित करना उन्हें सर्वाधिक प्रिय था।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों की विशेषताओं के अनुरूप उनका विशिष्ट शिल्प होता है। डॉ0 सिंह की शिल्प विधि अन्य उपन्यासकारों की अपेक्षा चिन्तनीय, अनुकरणीय एवं तर्कपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन के विषय प्रखरता और मानवीय संवेदना को प्रखरता दी, जिस कारण से उनका स्थान 18वीं, 19वीं और 20वीं सदियों के उपन्यासकारों से भिन्न हैं। उन्होंने मनुष्य की आन्तरिक और बाह्य गतिविधियों का चित्रण किया है। इनके उपन्यास कौतूहल वर्धक, अलंकृत प्रधान अथवा नीति प्रधान हैं। इन्होंने उपन्यासों को तीन प्रकार बांटा हैं 1. ऐतिहासिक 2. आंचलिक 3. मनौवैज्ञानिक तथा शिवप्रसाद सिंह को प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी उपन्यास की श्रेणी में रखा जाता है।

'गिरधर गोपाल के चांदनी के खंडर' केशव चन्द्र वर्मा का 'काठ का उल्लू और कबूतर' में विभिन्न प्रकार के मानवीय परिवर्तनों को बताया है तथा कबूतर उल्लू की बात का खंडन करके आदमी की असलियत पर बल देता हैं इसमें आत्मिक समाज पर व्यंग किया है।, जैसे कि शिवप्रदसाद सिंह ने शैलूष, औरत नामक उपन्यास से विभिन्न प्रकार के आधुनिक और भौतिक समाज में कई प्रकार की टीका टिप्पणी की है और सामाजिक दुर्बलताओं का खंडन करके आधुनिक समाज को बेनकाव किया हैं।

शिवप्रसाद सिंह ने काल्पनिक और यथार्थ प्रसंगो का प्रचुर प्रयोग किया, उनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। डॉ0 सिंह ने अपने उपन्यासों की भूमिकाओं में विपुल ऐतिहासिक और सामाजिक सामग्री का उल्लेख किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं हैं कि डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों की रूपरेखा इतिहास से

अवश्य ली गयी है।, किन्तु प्राण तथ्यों की प्रतिष्ठा काल्पनिक प्रसंगों से ही है। "शिवप्रसाद सिंह की भाषा और शैली तत्व अंग्रेजी तत्वों की समानता, 'टी0एस0इलियट' जैसे महान पाश्चातय आलोचक और कवि से मिलती जुलती हैं। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार उनके उपन्यासों में क्रिया व्यापार और सामाजिकता का उत्कर्ष रूप दिखलाई पड़ता हैं। शिवप्रसाद सिंह का स्थान उपन्यासों में बंगला के 'मधुसूदन दत्त घोष' और 'टी0एल0राय' जैसे महान व्याक्तियों से समानता रखती है, जबकि तीनो लेखक नाटकार है और शिवप्रसाद सिंह उपन्यासकार है किन्तु आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद पुस्तक के डॉ0 सिंह ने अस्तित्ववादी चिन्तन परम्परा के मूर्धन्य, विचाराकों, दार्शनिकों, कीर्केगार्द, नीथे दॉस्टोव्स्की, यास्पर्स, हेडेगर, मार्सल, सार्त्र, काफ्का, कामू, वार्दिएफ पर विचार किया हैं। डॉ0 सिंह ने इस लेखकों के विषय की नब्ज को पकड़ा जिससे सामान्य जीवन के प्रसंगो को आत्मसात् करते हुये अपने उपन्यास के विषयों को ढ़ग से निरूपित किया है।"......[42]

"डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने बौद्धिक जगत को अपनी क्षमता के अनुसार सर्वाधिक प्रभावित किया जिससे कि उनका स्थान में एक उपन्यासकार के रूप में नहीं बल्कि एक समाजशास्त्री चिन्तक और एक समीक्षक के रूप में उन्होंने मिथ्यावाद और आडम्बर को भी बेनकाब किया। डॉ0 सिंह को औपन्यासिक अवधारणा में आत्म-विषलेषण और चिन्तक दोनों का ही साक्ष्य और साधन है। उन्होंने कीके गार्दे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान लिया और नीत्से आत्मश्चेन उन दोनों मान्यताओं से टकराव था उसे भी डॉ0 सिंह ने स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया है। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का उपन्यासकारों के बीच में स्थान हिन्दुस्तानी 'नीत्से' की तरह है उनमें गुण दोष समीक्षा करने की उतनी ही योग्यता थी जितनी कि नीत्से में, कुछ भारतीय उपन्यासकार डॉ0 सिंह को नीत्शे के समकक्ष मानते हैं। नीत्से ने जो ख्याति प्राप्त

की थी, पाश्चात्य देशों में उसी प्रकार डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने भी एशिया के कई हिन्दी भाषी देशों में ख्याति अर्जित की।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह किसी पूर्वागह से ग्रसित नहीं थे उन्होंने हमेशा नीतार्थ और न्यायार्थ में अपने जीवन की कसौटी को कसा जिससे कि मानवीय जीवन में अर्थ और अनर्थ का रेखांकन किया जा सकें। 'नीला चाँद' उपन्यास के लिखने के बाद जब वह पाठकों के बीच में आया तो डॉ0 शिवप्रसाद सिंह को स्थान वहीं दिया जो प्रेमचन्द्र की परम्परा में 'मील का पत्थर' में समान है। उन्होंने चैतन्य शक्ति जन साधारण के बीच एक ख्याति अर्जित की, जो ख्याति उनके जीवन में नीत्शे, कामू, काफ्ता, एडवर्ग को पाश्चात्य देश में मिली थी। उन्होंने लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस चीज को महसूस किया कि राष्ट्रीय चेतना का ह्रास हो रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था जो प्रतिदिन जर्जर और खण्डहर होती जा रही है उसे उन्होंने साहित्य और अपने परिश्रम के द्वारा उसे चिन्तनीय बनाया। आज वर्तमान समय में नैतिकता और धर्म का अभाव आधुनिक परिवेश के जीवन से गायब होता जा रहा है ये चिन्ता का विषय हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए आर्य सभ्यता और संस्कृति को अपनाने का सुझाव दिया। संस्कृति और कुछ नहीं हमारे अतीत का वह अंश है जो अच्छा हैं, जो आज के सन्दर्भो के जनोपयोगी हैं, जो हमें हैवान से मानव बनाता है, अर्थात जिसमें एक दीपक की लौ हैं, प्रकाशपुंज हैं, ज्योतिपुंज है, उसमें जीवन शक्ति हैं, उसमें पुरूषार्थ और पुरूषत्व हैं, जिसमें मानवीय मूल्य छिपे हुये हैं। यही शिवप्रसाद सिंह का सन्देश था कि समाज में जो कुपात्र है, वह सुपात्र बने उन्होंने जीवनयापन करने के तरीके को बताया और कहा कि प्रत्येक को जागरूक एवं जन प्रेमी होना चाहिए। डॉ0 सिंह ने अपने सन्देश में नारी को माँ के रूप में देखा, वह केवल भोग्या ही नहीं अपितु वह समाज उसके प्रमुख सतम्भ

पुरूष की शक्तिपुंज भी हैं। वह आराध्य ही नहीं बल्कि प्रेरणादायिनी भी है। नारी दीक्षा और संस्कार की जननी है। नारी स्वयं धर्म का प्रतिस्तम्भ है क्योंकि उसके द्वारा हमारा समाज, संस्कृति और सभ्यता में गति पैदा होती है। उन्होंने हमेशा नारी को एक माँ का स्थान दिया। इसी तरह से डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का स्थान एक भारतीय संस्कृति को बचाने के रूप में, धर्म और नैतिकता के रूप में जाना जाता है। उन्हें केवल उपन्यासकार का ही स्थान नहीं मिला वह एक भारतीय संस्कृति के रक्षक भी है, उनमें करूणा और शक्ति दोनो ही थीं।

निर्मल वर्मा, फणीश्वर नाथ रेणु एवमं डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का हिन्दी क्षेत्र के उपन्याकारों में इन तीनो के स्थान में एक पारस्परिक बोधगम्यता की अद्वितीय व्यापकता और वास्तविकता पायी जाती है। जिस तरह से फणीश्वर नाथ रेणु की ख्याति 'मैला आंचल' के द्वारा हुई और उनकों एक विशिष्ट स्थान दिया गया, आंचलिक उपन्यासकार के रूप में ख्याति मिली उसी प्रकार डॉ0 शिवप्रसाद सिंह को 'नीला चाँद' 'मंजूशिमा' से समस्त भारतवासियों के ह्रदय में उन्होंने स्थान बनाया और उनको राष्ट्रीय स्तर की ख्याति मिली तथा एक अच्छे उपन्यासकार के रूप में उनको स्थान दिया।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का स्थान एक पारिवारिक व्यक्ति की तरह समाज में था उनके ऐसे कई जीवन के संस्मरण थे, जिनमें उनको एक सही सलाहकार के रूप में मित्र के रूप में और सहयोगी के रूप में देखा, उनकी नीतियाँ और विचारधाराएं तथ्यात्मक और संतुलित थी। उन्होंने हमेशा कोशिश की कि किस तरह से भारत के जन मानस को शुद्धीकृत किया जाये, और समाज को निरासक्त और निरपेक्ष बनाया जायें। डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास आत्मीय और विचारपरक हैं, उनके उपन्यासों में मानव को कठिन रचना कर्म करने की प्रेरणा मिलती हैं, जिससे कि मनुष्य में नयी सामंजस्य करने की शक्ति का जन्म हो जीवन के विभिन्न रूपों में उसे वैचारिकता मिलें

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने रचना माध्यमों के द्वारा मानव को विन्यास और विकास के दो रास्ते बताये उनका स्थान समाज के मसीहा के रूप में है, उन्होनें हिन्दी गद्य अर्थात उपन्यासों के माध्यम से मानीवय जीवन को रूचिकर और उपयोगी बनाने का प्रयास किया।

डॉ0 सिंह ने दुर्लभ सामग्री विभिन्न उपन्यासों में संजोई है जो हर स्तर के अध्येता, पाठकों शोध छात्र और छात्राओं के लिए रूचिकर और उपयोगी अर्थात डॉ0 सिंह के समस्त उपन्यास आधुनिक जीवन के परिव्यास हैं, उन्होंने उप्नयास शैली का विकास तथा समाज के जटिल रिश्तों को आसानी से समझाया, समाज के विभिन्न प्रतिमानों को अपने उपन्यासों के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया। डॉ0 सिंह का स्थान वरिष्ठ उपन्यासकार के रूप में हिन्दी साहित्य में उनको सभी लोग एक उपन्यासकार के स्थान के साथ एक अच्छे विचारक, चिन्तक और समाज शास्त्रीय रूप में है उन्होंने समाज को हर रिश्ते से जोड़ा और उन्होंने एक आदर्श उपन्यासकार के रूप में स्थान अर्जित किया।

4. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चतुर्दिक–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0 201
2. 'कल्पना' लेख सितम्बर 69 – डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. वैतरणी से ....वैश्वानर तक की यात्रा, आनन्द कुमार पाण्डेय पृ0 39–विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
4. 'सेतु की गोष्ठी' 'निबन्ध संग्रह'–डॉ0 बच्चन सिंह पृ0 50
5. शिवप्रसाद सिंह, 'अलग–अलग वैतरणी', तटचर्चा
6. वैतरणी से ....वैश्वानर तक की यात्रा – आनन्द कुमार पाण्डेय, पृ0 114
7. डॉ0 शिवप्रसाद सिंह – 'नीला चाँद' भूमिका–पृ0 6
8. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' लेख–'नीला चाँद' : रोमानी कवियों और शायरों से अलग–डॉ0 चन्द्रकाला त्रिपाठी पृ0 216
9. वैतरणी से ....वैश्वानर तक की यात्रा – आनन्द कुमार पाण्डेय, पृ0 93
10. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' पृ0 368
11. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' पृ0 368
12. मंजूशिमा – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 01
13. मंजूशिमा – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 179
14. शैलूष– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह (भूमिका से)
15. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' पृ0 224
16. शैलूष– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 16
17. औरत – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह (भूमिका से)

18. गली आगे मुड़ती है– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 10

19. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 46

20. दिल्ली दूर है – डॉ0 शिवप्रसाद सिंह (भूमिका VII)

21. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' पृ0 249

22. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' पृ0 503

23. 'द सेटेनिक बरसेज' – 'सलमान रसदी' (भूमिका लेख से उद्घत)

24. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' लेख–दिल्ली दूर है : अतीत की पृष्ठभूमि पर वर्तमान की सार्थक संस्कृति डॉ0 राजमणि शर्मा पृ0 263

25. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 106 विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी

26. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 104

27. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' लेख–कुहरे में युद्ध : कालांकित उपन्यास डॉ0 रूपसिंह चन्देल पृ0 234

28. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 130

29. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 189

30. अलग–अलग वैतरणी–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 138

31. नीला चाँद–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 247

32. नीला चाँद–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 414

33. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य–डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी, पृ0 242

34. मंजूशिमा–डॉ0 शिवप्रसाद सिंह (भूमिका से) पृ0 11

35. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 53

36. औरत—डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 93

37. गली आगे मुड़ती है—डॉ0 शिवप्रसाद सिंह पृ0 148

38. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 61

39. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' लेख— सृष्टा, जिसमें मै। जानता और सृष्टि जिसे मैं पहचानता हूँ। पृ0 461

40. वैतरणी से .... वैश्वानर तक की यात्रा, 'आनन्द कुमार पाण्डेय' पृ0 189

41. शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य—डॉ0 सत्यदेव त्रिपाठी, पृ0 79

42. शिवप्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि सम्पादक 'पाण्डेय शशिभूषन शीतांशु' पृ0 442 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली—11002

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ० शिव प्रसाद सिंह

(क) डॉ0 शिव प्रसाद सिंह के मौलिक उपन्यास

(ख) सहायक ग्रन्थ

(ग) कोश साहित्य

(घ) पत्र एवं पत्रिकाएं

(क) आधार ग्रन्थ सूची

1. अलग अलग वैतरणी
2. नीला चाँद
3. मंजूशिमा
4. शैलूष
5. औरत
6. गली आगे मुड़ती है
7. दिल्ली दूर है
8. वैश्वानर
9. कुहरे में युद्ध

(ख) संदर्भ ग्रन्थ

10. हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त : नरेन्द्र कोहली
11. उपन्यास स्वरूप और संवदेना : राजेन्द्र यादव
12. शिव प्रसाद सिंह : सृष्टा और सृष्टि : शशिभूषण शीताशुं
13. शैली और शैली विश्लेषण : शशिभूषण शीताशुं
14. भाषा विज्ञान : डॉ० भोलानाथ तिवारी
15. हिन्दी उपन्यास : डॉ० सुरेश सिन्हा
16. शिव प्रसाद सिंह का कथा साहित्य : सत्य देवी त्रिपाठी
17. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० बच्चन सिंह
18. समकालीन हिन्दी उपन्यास : डॉ० विवेकी राय
19. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास : डॉ० अमर जायसवाल
20. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना : डॉ० पीताम्बर सरोदे
21. हिन्दी उपन्यासों में असमान्य चरित्र : डॉ० सुजाता
22. उपन्यासों की समीक्षा के नये प्रतिमान : दंगल झाल्टे
23. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य : डॉ० मोहनी शर्मा
24. हिन्दी उपन्यासों के विकास : डॉ० सरदार सिंह सूर्यवंशी
25. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में शिल्पविधि का विकास : डॉ० तहसीलदार दुबे
26. प्रेम चन्द्रात्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना : डॉ० अमर सिंह
27. हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना : डॉ० सुषमा गुप्ता
28. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व : डॉ० मंजुला गुप्ता
29. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ० पारूकान्त देसाई
30. हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह : डॉ० मनमोहन सहगल

31. हिन्दी उपन्यास वार्षिकी 1975 : सूर्यकान्त गुप्ता

32. हिन्दी उपन्यास वार्षिकी 1976 : सूर्यकान्त गुप्ता

33. साठोत्तरीय हिन्दी उपन्यासों में राजनीति चेतना : कृष्ण कुमार विस्सा

34. हिन्दी उपन्यास 1950 के बाद : सं0 निर्मला जैन

35. शैली तात्विक प्राविधियां : डॉ0 चन्द्रकान्ता रावत

36. हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ : डॉ0 ज्ञान अस्थाना

37. आधुनिक उपन्यास विविध आयाम : डॉ0 विवेकी राय

38. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और वर्ग संघर्ष : डॉ0 केशव देव शर्मा

39. हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना : डॉ0 एन0के0 जोजफ

40. आधुनिक परिवेश और अस्तित्व वाद : डॉ0 शिव प्रसाद सिंह

41. वैतरणी से वैश्वानर तक की यात्रा : आनन्द कुमार पाण्डेय

42. हिन्दी उपन्यास सृजन और प्रक्रिया : डॉ0 शिव बहादुर सिंह

43. शिव प्रसाद सिंह : सं0 अरूणेश नीरन

44. उपन्यास सिद्धान्त और संरचना : रवीन्द्र कुमार जैन

45. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और आलोचना : चन्द्रकान्त वादिवडेकर

46. आधुनिक गद्य साहित्य : डॉ0 रामचन्द्र तिवारी

47. गद्य काव्य मीमांसा : अंविकादत्त व्यास

48. मेरे साक्षात्कार : डॉ0 शिव प्रसाद सिंह

49. शिखरों का सेतु : डॉ0 शिव प्रसाद सिंह

50. कस्तूरी मृग : डॉ0 शिव प्रसाद सिंह

51. हिन्दी उपन्यास:युग चेतना और पाठकीय संवेदना : डॉ0 मुकुन्द द्विवेदी

52. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डॉ0 त्रिभुवन सिंह

53. हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान : डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा

54. हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण : महेन्द्र चतुर्वेदी

55. हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरन : डॉ0 राजमल बोरा

56. शैली : करुणापति त्रिपाठी

57. साहित्य की शैली : डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त
58. हिंसा का इतिहास : डॉ0 नगेन्द्र
59. हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास : डॉ0 ओम शुक्ल
60. हिन्दी उपन्यास का अध्ययन : डॉ0 गणेशन

(ग) कोश साहित्य

1. आप्टे वामन शिवराम–
दि प्रैक्टिकल संस्कृत इँगलिश डिक्सनरी सम्पादक पी0के0 गोडे एवं सी0जी0 कर्णे, पूना से 1957–59 में प्रकाशित।

2. प्रमाणिक हिन्दी कोश–
आचार्य रामचन्द्र वर्मा लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद

3. वर्मा डॉ0 धीरेन्द्र–
हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मंडल प्रकाशन लि0 वाराणसी से प्रकाशित

(घ) पत्र – पत्रिकाएं

1. कल्याण – गीता प्रेस गोरखपुर
2. वेतबा वाणी – बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, झाँसी
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका – काशी, वाराणसी
4. साप्ताहिक हिन्दुस्तान – हिन्दुस्तार टाइम्स प्रकाशन, दिल्ली